इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDLA-138
हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ

खंड 1	**हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ**	**5**
इकाई 1	कहानी : पूस की रात (प्रेमचंद)	7
इकाई 2	व्यंग्य निबंध : वैष्णव की फिसलन (हरिशंकर परसाई)	35
इकाई 3	एकांकी : 'बहुत बड़ा सवाल' (मोहन राकेश)	57
इकाई 4	निबंध : जीने की कला (महोदवी वर्मा)	105
इकाई 5	आत्मकथा : जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि)	132
इकाई 6	कविताएँ	161
खंड 2	**हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ**	**195**
इकाई 7	डायरी	197
इकाई 8	पत्र-साहित्य	213
इकाई 9	रिपोर्ताज	232
इकाई 10	यात्रा-वृत्तांत	257
इकाई 11	जीवनी	283
इकाई 12	संस्मरण	307

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. वी.रा जगन्नाथन
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं निदेशक
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. टी.वी. कट्टीमनी
कुलपति
केंद्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
विजयनगरम, आंध्रप्रदेश

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
पूर्व प्रतिकुलपति
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र)

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर
केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ.प्र.)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हैदराबाद
केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रो. आलोक गुप्ता
प्रोफेसर
हिंदी भाषा और साहित्य केंद्र
गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय
गांधीनगर (गुजरात)

संकाय सदस्य

प्रो. सत्याकम
(पाठ्यक्रम संयोजक)

प्रो. शत्रुघ्न कुमार

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी

प्रो. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

प्रो. सत्यकाम
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक

डॉ. ओमप्रकाश

डॉ. देवेन्द्र नौटियाल

डॉ. लल्लन राय

डॉ. रामबक्ष

डॉ. रामविनय शर्मा

डॉ. मधुरेश

संपादन सहयोग

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय
परामर्शदाता, हिंदी
मानविकी विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुल सचिव (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2021

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

पाठ्यक्रम परिचय

अब आप बी.ए. सी.बी.सी.एस. के आधुनिक भारतीय भाषा पाठ्यक्रम के अंतर्गत 'हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ' का अध्ययन करने जा रहे हैं। 6 क्रेडिट के इस पाठ्यक्रम में कुल 12 इकाइयाँ हैं जिन्हें दो खंडों में विभाजित किया गया है। दोनों खंडों में क्रमशः छह-छह इकाइयाँ हैं। साहित्य की प्रत्येक विधा दूसरी विधाओं से भाषा-शिल्प संरचना और विषय-वस्तु के धरातल पर कुछ अलग और वैशिष्ट्य युक्त होती है। इसी आधार पर उस साहित्य रूप को एक स्वतंत्र विधा का स्थान भी प्राप्त होता है। प्रस्तुत पाठ्यक्रम साहित्य की विविध विधाओं के विधागत वैशिष्ट्य और अन्य विधाओं से उनके अंतर को स्पष्ट करते हुए भाषिक प्रयोग की विशेषताएँ बताता है।

खंड 1 के अंतर्गत कहानी, व्यंग्य, एकांकी, निबंध, आत्मकथा और कविता की साहित्यिक एवं शिल्पगत विशेषताएँ समझायी गई हैं। प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' को आधार बनाकर कहानी के तत्वों का विवेचन किया गया है। व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'वैष्णव की फिसलन' का विश्लेषण किया गया है। एकांकी विधा के तहत मोहन राकेश के एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' के कथ्य, चरित्र-विधान, परिवेश, रंगमंचीयता और संवाद योजना इत्यादि को समझाया गया है। निबंध विधा की विशेषताएँ बताने के लिए महादेवी वर्मा के निबंध 'जीने की कला' का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। ओमप्रकाश वालमीकि की आत्मकथा 'जूठन' पर विचार करते हुए 'आत्मकथा' के विविध तत्वों का परिचय दिया गया है। कविता आदि साहित्य रूप है। कविता के स्वरूप और विकास यात्रा को समझाने के लिए पाठ्यक्रम के अंतर्गत हम भक्तिकालीन कवि सूरदास और तुलसीदास के साथ आधुनिक काल के मैथिलीशरण गुप्त सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा की कविताएं वाचन के लिए दे रहे हैं जिनके माध्यम से आप सहजता से 'कविता' विधा के स्वरूप को समझ सकेंगे।

खंड 2 डायरी, पत्र-साहित्य, रिपोर्ताज, यात्रा-वृत्तांत, जीवनी और संस्मरण विधा पर केंद्रित है। डायरी विधा को समझाने के लिए हमने मोहन राकेश की डायरी अंश का चयन किया है और एक विधा के रूप में डायरी का आत्मकथा, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत से अंतर भी स्पष्ट किया है। एक विधा के रूप में पत्र का भी बहुत महत्व है। इन पत्रों के माध्यम से हम जिसको पत्र लिखा गया है और जिसने पत्र लिखा है, दोनों के आपसी संबंध और सामाजिक–राजनीतिक सरोकारों को समझने के सूत्र प्राप्त करते हैं। नेमिचन्द्र जैन के नाम मुक्तिबोध के दो पत्रों को हमने पाठ्यक्रम में शामिल किया है। किसी रिपोर्ट का कलात्मक और साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज है। पाठ्यक्रम में हमने 'एकलव्य के नोट्स' शीर्षक रिपोर्ताज के माध्यम से रिपोर्ताज विधा की विशेषताएँ स्पष्ट की हैं। यात्रा-वृत्तांत को समझाने के लिए राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांत अंश का वाचन दिया गया है जिसको पढ़ते हुए आप यात्रा-वृत्तांत के तत्वों को समझ सकेंगे। 'जीवनी' विधा के अंतर्गत रामविलास शर्मा द्वारा लिखी गयी सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की जीवनी 'निराला की साहित्य साधना' रखी गई है। संस्मरण विधा में महादेवी वर्मा का संस्मरण 'पथ के साथी' का सुभद्राकुमारी चौहान पर लिखा गया अंश दिया गया है। इस अंश के अध्ययन के उपरांत आप संस्मरण विधा को भी समझ सकेंगे।

उपर्युक्त विधाओं के अंतर्गत पठन हेतु दिए गए अंशों का अध्ययन कर आप इन विधाओं के तत्वों और उनकी विशेषताओं को समझ सकेंगे। इन साहित्य रूपों को और पढ़ने तथा समझने के लिए हमने विभिन्न इकाइयों के अंत में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी है। जिनका अध्ययन कर आप अपने ज्ञान को और विस्तार दे सकते हैं। पाठ के अंतर्गत दिए गए प्रश्नों का उत्तर देकर आप अपनी प्रगति और अपने विषय बोध को परख सकते हैं। यदि पाठों को समझने में किसी प्रकार की समस्या आए तो परामर्श सत्रों के दौरान आप उन पर चर्चा कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ!

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन–जन की विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDLA-138
हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ

खंड

1

हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ

इकाई 1
कहानी : पूस की रात (प्रेमचंद) 7

इकाई 2
व्यंग्य निबंध : वैष्णव की फिसलन (हरिशंकर परसाई) 35

इकाई 3
एकांकी : 'बहुत बड़ा सवाल' (मोहन राकेश) 57

इकाई 4
निबंध : जीने की कला (महोदवी वर्मा) 105

इकाई 5
आत्मकथा : जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि) 132

इकाई 6
कविताएँ 161

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 1 का परिचय

'हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ' पाठ्यक्रम के इस पहले खंड में हमारा लक्ष्य आपको साहित्य की विभिन्न विधाओं से परिचित कराना है ताकि आप साहित्य का आस्वादन कर सकें। साहित्य में भाषा का सृजनात्मक रूप व्यक्त होता है। साहित्य की भिन्न–भिन्न विधाओं में भाषा के भिन्न–भिन्न रूप दिखायी देते हैं। आपको इस खंड में विविध साहित्य–विधाओं के माध्यम से सृजनात्मक भाषा के भिन्न–भिन्न रूपों का परिचय मिलेगा, जिससे आपको हिंदी भाषा की प्रकृति समझने में और मदद मिलेगी।

इस खंड में हम कुल छह इकाइयाँ दे रहे हैं। इकाई 1 में प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' वाचन के लिए दी जा रही है। इकाई 2 में हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित एक व्यंग्य–निबंध 'वैष्णव की फिसलन' दिया गया है। इकाई 3 में मोहन राकेश का 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक एकांकी वाचन के लिए दिया गया है। इकाई 4 में 'जीने की कला' शीर्षक महादेवी वर्मा का एक नारी समस्या से संबंधित निबंध दिया गया है। इकाई 5 में 'जूठन' शीर्षक ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा का एक अंश दिया गया है।

खंड की अंतिम इकाई में सूरदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा का काव्य, वाचन के लिए दिया गया है। इस प्रकार इन इकाइयों में आप कहानी, व्यंग्य, एकांकी निबंध, आत्मकथा और कविता नामक विधाओं का अध्ययन करेंगे। वाचन के अतिरिक्त इनमें इन विधाओं की विशेषताएँ बतायी गयी हैं। विधाओं की विशिष्टताओं के आधार पर उनका विश्लेषण भी किया गया है। हम यहाँ निबंध और आत्मकथा के 'अंश' वाचन के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं क्योंकि इन इकाइयों में पूरी रचना को प्रस्तुत करना संभव नहीं है, जिनसे आपको पठित साहित्यिक रचनाओं की विशिष्टता समझने में मदद मिलेगी।

इन इकाइयों में दिये गये प्रश्नों के आप द्वारा लिखे उत्तर, इकाई में दिये गये उत्तरों से हूबहू मिलना ज़रूरी नहीं है। आप इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से अपने उत्तर को मिला लीजिए। अगर आप अपने उत्तर से संतुष्ट हैं, तो ठीक, अन्यथा इकाई को पुनः पढ़िए।

खंड के अंत में पारिभाषिक और कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं, आप उनकी सहायता ले सकते हैं।

प्रत्येक इकाई के बाद आगे के अध्ययन के लिए कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं। आप उनका भी अध्ययन करें। ये पुस्तकें आपकी विषयगत समझ को और विस्तार देने में उपयोगी होंगी।

इकाई 1 कहानी : पूस की रात (प्रेमचंद)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कहानी : पूस की रात

1.3 कहानी का सार

1.4 संदर्भ सहित व्याख्या

1.5 कथावस्तु

1.6 चरित्र-चित्रण

1.7 परिवेश

1.8 संरचना शिल्प

1.9 प्रतिपाद्य

1.10 सारांश

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप कहानी के विभिन्न पक्षों की विशेषताएँ जानेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कहानी का सार बता सकेंगे तथा कहानी के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- कहानी की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कहानी के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कर सकेंगे;
- कहानी के परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- कहानी की शैली, भाषा और संवाद की विशेषताएँ बता सकेंगे और
- उपर्युक्त विश्लेषण के माध्यम से कहानी के महत्व की पहचान कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में आप साहित्य की विभिन्न विधाओं का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत इकाई में प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' दी जा रही है। इस कहानी की गणना प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में की जाती है।

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी के पास लमही गाँव में सन् 1880 में हुआ था। उन्होंने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। आरंभ में उन्होंने उर्दू में लेखन किया, बाद में वे हिंदी में भी लिखने लगे। लेखन के अतिरिक्त, प्रेमचंद शिक्षा विभाग में निरीक्षक रहे और 'हंस'

पत्रिका का संपादन किया। उनका देहावसान 1936 में हुआ। हिंदी कहानी परंपरा में प्रेमचंद का युगांतरकारी महत्व है। उन्होंने हिंदी कहानी को नया मोड़ दिया था। उन्होंने कहानी को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा और उसे सोद्देश्यता प्रदान की। उन्होंने अपनी कहानियों में उत्पीड़ित और शोषित जनता के दुःख–दर्द को वाणी दी, उनकी संवेदना और संघर्ष को नया अर्थ दिया। आरंभ में उन पर आदर्शवाद का प्रभाव था, लेकिन धीरे–धीरे उनका आदर्शवाद से मोहभंग होने लगा और वे शोषक वर्गों की अमानवीयता के कटु आलोचक बन गये। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में जीवन के प्रत्येक पक्ष पर लिखा लेकिन किसानों और महिलाओं के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। 'मानसरोवर' के आठ भागों में उनकी सभी प्राप्त कहानियाँ संकलित हैं। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं: 'कफन', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति' आदि। उनके प्रख्यात उपन्यासों में 'गोदान', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'सेवासदन' की चर्चा की जाती है। 'गोदान' को किसान–जीवन का महाकाव्य कहा गया है।

'पूस की रात' कहानी का कथ्य किसान–जीवन से संबंधित है। प्रेमचंद ने इस कहानी के माध्यम से बताया है कि किस तरह कठोर परिश्रम के बावजूद किसान हमेशा अभावों से घिरा रहता है और कर्ज से मुक्त नहीं हो पाता। लगातार शोषण से उत्पीड़ित किसान की आस्था किसानी से डगमगा जाती है। कहानी के इसी कथ्य का विश्लेषण इस इकाई में विस्तार से किया गया है। इकाई में दिये गये बोध प्रश्न और अभ्यास से आप यह जान सकेंगे कि आपने कहानी को कितना समझा है।

1.2 कहानी : पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा – सहना आया है। लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली – तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा? माघ–पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के बिना हार में रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी, यह सोचता हुआ वह अपना भारी भरकम डील लिये हुए (जो उसके नाम को झूठा सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला – ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आँखें तरेरती हुई बोली – कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात में दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी – न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला – तो क्या गाली खाऊँ?
मुन्नी ने तड़पकर कहा – 'गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?'

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गईं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये। फिर बोली 'तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस।'

हल्कू ने रुपये लिये और इस तरह बाहर चला, मानो अपना हृदय निकाल कर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक–एक पैसा काट–काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक–एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

पूस की अँधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ–कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गरदन में चिपकाते हुए कहा – क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे। अब खाओ ठंड, मैं क्या करूँ। जानते थे, मैं यहाँ हलुवा–पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े–दौड़े आगे–आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े–पड़े दुम हिलायी और अपनी कूँ–कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान–बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, 'स्वामी को मेरी कूँ–कूँ से नींद नहीं आ रही है।'

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा –'कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड़ पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिये आ रही है। उठूँ फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक–एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गरमी से घबड़ाकर भागे। मोटे–मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्मल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!'

हल्कू उठा गड्ढे में से जरा सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा, पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ जरा, मन बदल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू – आज और जाड़ा खा ले कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूंगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिये और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी। चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और

निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसे दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद में चिमटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक–एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़–दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्त्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

बोध प्रश्न

आपने कहानी का उपर्युक्त अंश ध्यान से पढ़ा होगा। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का सही उत्तर कोष्ठक में उपसंख्या लिखकर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1) हल्कू की पत्नी मुन्नी ने कर्ज चुकाने का विरोध क्यों किया?
   क) हल्कू को कंबल की जरूरत थी।
   ख) उनके पास पैसे नहीं थे।
   ग) उन्होंने पहले ही कर्ज चुका दिया था।
   घ) पत्नी ने कर्ज चुकाने का विरोध नहीं किया। ( )

2) 'न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती।' यह वाक्य किसने किससे कहा?
   क) हल्कू ने सहना से
   ख) मुन्नी ने सहना से
   ग) हल्कू ने मुन्नी से
   घ) मुन्नी ने हल्कू से ( )

3) 'मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!' इस वाक्य का तात्पर्य क्या है?
   क) मजदूरी करने में मजा नहीं है।
   ख) एक की मेहनत का दूसरे द्वारा लाभ उठाया जाना।
   ग) किसानों की मेहनत से सरकार मजा लूटती है।
   घ) मजदूरी करने वाले मजे नहीं लूटते। ( )

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायेंगे तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेतों से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग मे पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे, कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिये और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा, पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा – अब तो नहीं रहा जाता जबरू! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँठे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूँ–कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूंदें टपटप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिये हुए आया।

हल्कू ने कहा – कैसी अच्छी महक आई जबरू! तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगंध आ रही है? जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे चिचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपरवाले वृक्ष की पत्तियों को छू–छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हों। अंधकार के उस आनंद सागर से यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली, दोनों पाँव फैला दिये, मानो ठंड को ललकार रहा हो, 'तेरे जी में जो आए सो कर।' ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय–गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा – क्यों जबरा, अब ठंड नहीं लग रही है?

जबरा ने कूँ–कूँ करके मानो कहा – अब क्या ठंड लगती ही रहेगी?

'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।'

जबरा ने पूँछ हिलायी।

'अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चू, तो मैं दवा न करूँगा।'

जबरा ने उस अग्नि–राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा!

'मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया! पैरों में जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा – चलो–चलो, इसकी सही नहीं! ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया!

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ–कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी, पर ज्यों–ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था। जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर गया। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने–दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर–चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा – नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगायी – जबरा, जबरा।

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी 'जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े–पाले में खेतों में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी – लिहो! लिहो! लिहो!

जबरा फिर भूंक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभनेवाला, बिच्छू के डंक का–सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू । गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी – क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा – क्या तू खेत से होकर आ रही है?

'मुन्नी बोली – हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला, ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मँड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया – मैं मरते–मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ!

दोनों फिर खेत के डाँड़ पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मँड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हो।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा – अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा – रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

शब्दावली–चौपट हो गया : नष्ट हो गया, मँड़ैया : झोपड़ी, डाँड़ : खेत की सीमा, किनारा, मालगुजारी : जमीन पर कर

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर कोष्ठक में उपसंख्या लिखकर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

4) हल्कू ने खेत पर ठंड से बचने के लिए क्या किया?

   क) उसने कंबल ओढ़ लिया।

   ख) वह घर चला गया।

   ग) उसने अलाव जलाया।

   घ) वही सर्दी में ठिठुरता रहा। ( )

5) 'जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी।' इस वाक्य में किसके जगने की ओर संकेत किया गया है?

   क) मुन्नी

   ख) ठंड

   ग) नींद

घ) आग ( )

6) हल्कू के खेत की खड़ी फसल को किसने नष्ट किया?

क) आग ने

ख) कुत्ते ने

ग) नीलगायों ने

घ) बाढ़ ने ( )

1.3 कहानी का सार

आपने कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। आप समझ गये होंगे कि प्रेमचंद ने कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहा है। कहानी पर विस्तृत विचार करने से पहले आइए, हम कथा का सार जान लें।

'पूस की रात' कहानी ग्रामीण जीवन से संबंधित है। इस कहानी का नायक हल्कू मामूली किसान है। उसके पास थोड़ी–सी जमीन है, जिस पर खेती करके वह गुजारा करता है लेकिन खेती से जो आय होती है, वह ऋण चुकाने में निकल जाती है। सर्दियों में कंबल खरीदने के लिए उसने मजूरी करके बड़ी मुश्किल से तीन रुपये इकट्ठे किये हैं। लेकिन वह तीन रुपये भी महाजन ले जाता है। उसकी पत्नी मुन्नी इसका बहुत विरोध करती है, किंतु वह भी अंत में लाचार हो जाती है।

हल्कू अपनी फसल की देखभाल के लिए खेत पर जाता है, उसके साथ उसका पालतू कुत्ता जबरा है। वही अंधकार और अकेलेपन में उसका साथी है। पौष का महीना है। ठंडी हवा बह रही है। हल्कू के पास चादर के अलावा ओढ़ने को कुछ नहीं है। वह कुत्ते के साथ मन बहलाने की कोशिश करता है, किंतु ठंड से मुक्ति नहीं मिलती। तब वह पास के आम के बगीचे से पत्तियाँ इकट्ठी कर अलाव जलाता है। अलाव की आग से उसका शरीर गरमा जाता है, और उसे राहत मिलती है। आग बुझ जाने पर भी शरीर की गरमाहट से वह चादर ओढ़े बैठा रहता है।

उधर खेत में नीलगायें घुस जाती हैं। जबरा उनकी आहट से सावधान हो जाता है। वह उन पर भूँकता है। हल्कू को भी लगता है कि खेत में नीलगायें घुस आई हैं लेकिन वह बैठा रहता है। नीलगायें खेत को चरने लगती हैं, तब भी हल्कू नहीं उठता। एक बार उठता भी है तो ठंड के झोंके से पुनः बैठ जाता है और अंत में चादर तानकर सो जाता है।

सुबह उसकी पत्नी उसे जगाती है और बताती है कि सारी फसल नष्ट हो गयी। वह चिंतित होकर यह भी कहती है कि 'अब मजदूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी। 'इस पर हल्कू प्रसन्न होकर कहता है कि रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा!' इसी के साथ कहानी समाप्त हो जाती है।

1.4 संदर्भ सहित व्याख्या

यहाँ हम कहानी के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं, इससे आपको कहानी समझने में और मदद मिलेगी।

उद्धरणः 1

जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता है। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक–एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

संदर्भः यह उद्धरण प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' से लिया गया है। इस कहानी में हल्कू (किसान) अपने खेत की रखवाली कर रहा है और उसके साथ उसका कुत्ता जबरा है। हल्कू ठंड से बचने के लिए जबरे को अपनी गोद में चिपटा लेता है। कुत्ते में से दुर्गंध आ रही है।

व्याख्याः जबरा को अपनी देह से चिपटाए हल्कू को सुख का अनुभव हो रहा था। यह सुख वस्तुतः उस अकेलेपन, अंधकार और ठंड की रात में जबरा के साथ से हल्कू के मन में पैदा हुआ था। हल्कू में ऊँच–नीच का ही नहीं मनुष्य और पशु का भी भेद मिट गया था। वह कुत्ते को उतना ही आत्मीय समझ रहा था, जितना वह अपने किसी रिश्तेदार और मित्र को समझता। हल्कू गरीब था, हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद, उसकी जिंदगी अभावों से ग्रस्त थी, लेकिन गरीबी ने उसकी आत्मा की पवित्रता को कुचला नहीं था। इसीलिए वह एक जानवर के साथ भी बराबरी और आत्मीयता का व्यवहार कर सका था, उसे अपना मित्र बना सका था। जबरे के साथ मित्रता ने उसके हृदय को और उदार बना दिया था, उसकी आत्मा में जिन भावों का संचार हो रहा था, उसने उसके व्यक्तित्व को आलोकित कर दिया था। जबरा के प्रति हल्कू की इस भावना का असर जबरा पर भी पड़ा था, और वह भी हल्कू के प्रति अधिक वफादार हो गया था, जो कहानी के आगे के घटना विकास में व्यक्त होता है।

विशेषः

1) हल्कू गरीबी और ऋण से पूरी तरह दबा हुआ है। अपने खेत की रखवाली करते हुए अपने पालतू कुत्ते के साथ उसका व्यवहार किसान के हृदय की उच्चता और उदारता को उजागर करता है।

2) हल्कू और जबरा के बीच के संबंध को प्रेमचंद ने अत्यंत भावप्रवण रूप में व्यक्त किया है, जो उनके भाषिक–कौशल को भी बताता है। इसके लिए प्रेमचंद ने प्रसाद–गुण से युक्त भाषा का प्रयोग किया है अर्थात् भाषा भावों को व्यक्त करने में पूरी तरह सक्षम है।

उद्धरणः 2

मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

संदर्भः यह उक्ति प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' से ली गयी है। कंबल के लिए बचाए गए तीन रुपये सहना (महाजन) को चुकाने के बाद पूस की ठंडी रात में, केवल चादर के सहारे हल्कू को खेत की रखवाली करनी है। खेत पर बैठे–बैठे हल्कू के मन में कई विचार उठते हैं।

व्याख्याः यह छोटी–सी उक्ति किसान के जीवन की विडंबना को पूरी तीव्रता से व्यक्त कर देती है। किसान और मजदूर रात–दिन मेहनत करते हैं। उन्हीं की मेहनत से

समाज की जरूरतें पूरी होती हैं। लेकिन अपनी मेहनत का वह लाभ नहीं उठा पाता। जो कुछ भी मेहनत–मजूरी से हासिल करता है, वह कर्ज चुकाने में निकल जाता है। जिनके पास रुपया है और जो गरीबों को ब्याज पर पैसे देते हैं, वे बिना कोई मेहनत किये ब्याज के रूप में गरीबों की मेहनत की कमाई लूटते रहते हैं। ब्याज बढ़ता रहता है और किसान कभी कर्ज नहीं चुका पाता। इस तरह वह गरीबी और अभावों में ही फँसा रहता है जबकि उनकी मेहनत की कमाई को लूटने वाले, जो किसी तरह की मेहनत भी नहीं करते, मेहनत करने वालों से कहीं ज्यादा आराम से रहते हैं।

विशेष:

1) यह छोटी–सी उक्ति हमारे समाज के मुख्य अंतर्विरोधों को बहुत ही तीखे रूप में व्यक्त कर देती है।

2) प्रेमचंद ने इतनी महत्वपूर्ण बात को बहुत ही सहज रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

अभ्यास

1) नीचे दिये उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये।

संदर्भ:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

व्याख्या :

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

विशेष:

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 कथावस्तु

कहानी में कथावस्तु का निर्माण घटनाओं तथा पात्रों के पारस्परिक संयोग से होता है। कुछ कथानक ऐसे होते हैं जिनकी बुनावट में परिवेश की भी बहुत बड़ी हिस्सेदारी होती है। कथ्य के अनुसार ही कथावस्तु का स्वरूप बनता है, उसी के अनुसार कभी घटनाएँ प्रधान हो जाती हैं, कभी चरित्र, कभी परिवेश या वातावरण। इस कहानी में घटनाएँ बहुत अधिक नहीं हैं, न ही परिवेश का विस्तृत चित्रण किया गया है। पात्र भी बहुत कम हैं। इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमें घटना विकास, पात्रों का चरित्र और परिवेश तीनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

कहानी का आरंभ: 'पूस की रात' प्रेमचंद की श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है। इस कहानी में कथा का अधिक विस्तार नहीं है। न घटनाक्रम तेजी से बदलते हैं। कथा का आरंभ हल्कू के घर से होता है। कहानीकार हल्कू के घर का उतना ही वर्णन करता है, जितने का उस कहानी से संबंध है। हल्कू ने कर्ज ले रखा है, सहना, जिससे कर्ज लिया है वह अपना रुपया माँगने हल्कू के यहाँ आता है। हल्कू अपनी पत्नी मुन्नी से रुपये माँगता है। मुन्नी के पास तीन रुपये हैं जो हल्कू ने मजूरी में से बड़ी मुश्किल से बचाए हैं ताकि एक कंबल खरीदा जा सके। बिना कंबल के जाड़ों की रात खेतों पर गुजारना कठिन होगा, इसीलिए मुन्नी रुपये देने का विरोध करती है। इस समय पति–पत्नी में जो बातचीत होती है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। मुन्नी कहती है **'न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती।'** मुन्नी के इस कथन में एक बड़ी सच्चाई को प्रेमचंद ने उजागर किया है। किसान मजबूर होकर महाजन से ऋण लेता है, किंतु उसके बाद वह उससे मुक्त नहीं हो पाता। ब्याज–दर के जाल में वह ऐसा उलझ जाता है कि उसकी सारी मेहनत–मजूरी उसे चुकाने में ही चुक जाती है।

मुन्नी किसानों के जीवन की इस व्यवस्था को और उजागर करते हुए कहती है, **'मर मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है।** 'स्पष्ट ही ऋण चुकाते रहने की विडंबना से परेशान किसान के मन में यह सवाल जरूर पैदा होता है कि क्या उसका जन्म केवल ऋण चुकाने के लिए ही हुआ है क्या उसकी मेहनत इसी तरह दूसरे हड़पते रहेंगे। और अपना पेट भरने के लिए उसे मजूरी करनी पड़ेगी। अगर अपना पेट भरने के लिए मजूरी ही करनी है तो फिर खेती से चिपके रहने का क्या मतलब इसी भावना से प्रेरित होकर मुन्नी हल्कू से कहती है, **'तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी**

खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस।' बहरहाल, हल्कू वह तीन रुपये सहना को दे देता है। यह कहानी का पहला भाग है।

इस भाग को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि हल्कू जैसे गरीब किसान के लिए खेती कितनी मुश्किल होती जा रही थी। यहाँ तक कि वे यह भी सोचने लगते हैं कि क्यों न किसानी छोड़ कर मजूरी की जाए? कहानी का शेष अंश किसान की इसी मनोदशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण करता है।

कहानी का विकास: कहानी का दूसरा भाग हल्कू के अपने खेत पर आरंभ होता है। पूस की अंधेरी रात है। हल्कू के साथ सिर्फ उसका पालतू कुत्ता जबरा है। ठंडी हवा चल रही है। हल्कू के पास सर्दी से बचने के लिए एक चादर भर है, लेकिन वह चादर उस ठंड से उसकी रक्षा नहीं कर पाती। हल्कू की मनोभावनाएँ प्रेमचंद ने यहाँ जबरा के साथ हल्कू की बातचीत से व्यक्त की है। यद्यपि कुत्ता होने के कारण जबरा हल्कू की किसी बात को न समझ सकता है, न जवाब दे सकता है, लेकिन जबरा के प्रति हल्कू की आत्मीयता उसकी हृदयगत ऊँचाइयों को व्यक्त करती है।

खेत में हल्कू की सबसे बड़ी चिंता ठंड से बचाव की है। वह जबरा को संबोधित कर कहता है कि इतनी सर्दी में तुम मेरे साथ क्यों आए। फिर इसी तरह की बात करते हुए वह अपनी स्थिति की तुलना उन 'भागवान' लोगों के साथ करने लगता है **'जिनके पास जाड़ा जाए तो गरमी से घबराकर भागे। मोटे–मोटे गद्दे, लिहाफ, कंबल। मजाल है, जाड़े की गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।'** यहाँ हल्कू की बातों के माध्यम से प्रेमचंद समाज के एक बहुत बड़े अंतर्विरोध को उजागर करते हैं। वह एक तरह से यह प्रश्न उठाते हैं कि ऐसा क्यों है कि मेहनत करने वाला किसान तो भूखा सोता है और उसकी मेहनत का फल भोगने वाले मजे करते हैं? जाहिर है, हल्कू के पास इस सवाल का जवाब नहीं है। वह तो इसे 'तकदीर की खूबी' ही मान रहा है। हल्कू की इस मानसिकता की तुलना अगर कहानी के आरंभ में मुन्नी की बातों से करें तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि दोनों एक–सी ही बात सोच रहे हैं। अगर हमारी मेहनत दूसरों के पास ही जानी है तो खेती से जुड़े रहने का क्या लाभ?

कहानी का आगे का हिस्सा हल्कू की जाड़े से बचाव की कोशिश के रूप में सामने आता है। पहले वह चिलम पीता है, फिर चादर ओढ़कर सोता है, तब भी सर्दी से बचाव नहीं होता, तो वह कुत्ते को अपनी गोद में सुला देता है। कुत्ता हल्कू की इस आत्मीयता को महसूस भी करता है। इसीलिए जब किसी जानवर की आहट आती है तो वह चौकन्ना होकर भौंकने लगता है।

आखिर जब सर्दी से किसी तरीके से बचाव नहीं होता तो हल्कू अलाव जलाता है। अलाव से उसको काफी राहत मिलती है। उसका शरीर गरमा जाता है। एक नया उत्साह उसके मन में पैदा होता है और वह जबरा के साथ अलाव पर से कूदने की प्रतियोगिता भी करने लगता है।

धीरे–धीरे अलाव भी बुझ जाता है, लेकिन शरीर की गरमाहट हल्कू को काफी अच्छी लगती है, वह गीत गुनगुनाने लगता है। लेकिन बढ़ती सर्दी उसके अंदर आलस्य बढ़ाने लगती है। यहाँ कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ आता है।

कहानी की परिणति: हल्कू के खेत में नीलगायों का झुंड घुस आता है, जिनकी आहट पर जबरा भौंकता हुआ खेत की ओर भागता है। हल्कू को भी लगता है कि जानवरों का झुंड खेत में घुस आया है। फिर उनके कूदने–दौड़ने की आवाजें भी आने लगती हैं, और फिर खेत के चरने की भी। लेकिन हल्कू नहीं उठता। वह अपने मन को झूठा दिलासा देते हुए सोचता है कि 'जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता।' जबरा लगातार भौंकता रहता है, लेकिन हल्कू को आलस्य घेरे रहता है। एक बार वह उठता भी है, दो–तीन कदम चलता है, लेकिन ठंड के तेज झोंके के कारण वह फिर अलाव के पास आके बैठ जाता है। आखिरकार, नीलगायें पूरे खेत को नष्ट कर जाती हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है कि हल्कू अपनी फसल को बचाने की कोशिश क्यों नहीं करता? क्या वह आलसी है? क्या वह ठंड के मारे इतना परेशान था कि अपनी फसल का नष्ट होना भी वह सर्दी के मुकाबले बर्दाश्त कर सकता था। स्पष्ट ही कारण ये नहीं है? कारण जैसा कि कहानी से साफ है हल्कू की वह मानसिकता है, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। आखिर वह अपनी फसल की रक्षा किसके लिए करे? क्या सिर्फ महाजनों को लुटाने के लिए? अगर उसकी मेहनत सूदखोरों और जमींदारों के पास ही जानी है तो फिर नीलगायें चर लें तो क्या? वस्तुतः लगातार शोषण ने हल्कू को अपनी ही मेहनत से उपजायी फसल से उदासीन बना दिया है, इसीलिए उसकी मुख्य चिंता सर्दी से बचने की हो जाती है, फसल को बचाने की नहीं। यही कारण है कि वह अपनी पत्नी के यह कहने पर कि अब मजूरी करके मालगुजारी चुकानी पड़ेगी तो वह कहता है 'रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।'

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

7) मुन्नी की वह कौन–सी बात है जो कहानी की परिणति में व्यक्त हुई है।

   क) "महाजन गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?"

   ख) "बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है।"

   ग) "तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी तो मिलेगी।"

   घ) "न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती।"

8) हल्कू खेत को बचाने के लिए क्यों नहीं उठा?

   क) उसे ठंड लग रही थी।

   ख) लगातार शोषण ने उसे अपनी उपज के प्रति उदासीन बना दिया था।

   ग) उसे जबरा पर विश्वास था कि उसके रहते जानवर नहीं घुस सकते।

   घ) उसके पेट में बड़े जोरों से दर्द उठ रहा था।

9) हल्कू को खेती छोड़ने की सलाह देते हुए मुन्नी कौन से विचार प्रस्तुत करती है? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10) खेत नष्ट हो जाने पर भी हल्कू "प्रसन्नता" व्यक्त करता है? आप उन दो कारणों को बताइए जो हल्कू की "प्रसन्नता" में व्यक्त हो रहे हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 चरित्र चित्रण

इस कहानी में कुल चार पात्र आते हैं। हल्कू किसान, उसकी पत्नी मुन्नी, सहना जो कर्ज वसूलने आता है और हल्कू का पालतू कुत्ता जबरा। सहना का जिक्र सिर्फ कहानी के आरंभ में है, उसका कहानी में प्रत्यक्ष प्रवेश नहीं होता। मुन्नी कहानी के पहले और अंतिम भाग में आती है। पहले भाग में वह हल्कू को तीन रुपये सहना को देने से रोकती है। उस समय उसके माध्यम से प्रेमचंद कहानी की कथावस्तु पर प्रकाश डालने वाली कई बाते कहलाते हैं। उन बातों से और बात करने के अंदाज से उसके दृढ़ व्यक्तित्व का पता चलता है। इसके बाद अंतिम भाग में वह पुनः आती है, जब खेत नष्ट हो जाने के बाद वह सवेरे अपने पति के पास पहुँचती है और उसे जगाती है। यहाँ उसका दूसरा रूप सामने आता है। खेत नष्ट हो जाने से यहां वह चिंतित नजर आती है। लेकिन प्रेमचंद ने इस चरित्र का अधिक विस्तार नहीं किया है। जबरा खेत पर हल्कू के साथ रहता है, उसकी स्वामिभक्ति, खेत नष्ट होते देखकर अपने स्वामी को सावधान करने की कोशिश, भौंक–भौंक कर जानवरों को भगाने की कोशिश और अंत में असफल हो जाने पर पस्त होकर लेट जाना, उसको काफी जीवंत पात्र बना देते हैं, लेकिन कहानी में विस्तार से हल्कू के चरित्र की ही अभिव्यक्ति हुई है।

हल्कू : हल्कू 'पूस की रात' का केंद्रीय चरित्र है। वह गरीब किसान है। उसके पास कुछ खेती लायक जमीन है। जमीन कितनी है, इसका विवरण प्रेमचंद ने नहीं दिया है, लेकिन हल्कू की आर्थिक स्थिति से अनुमान लगा सकते हैं वह बहुत मामूली हैसियत का किसान है और खेती योग्य जमीन भी बहुत कम होगी। जमीन पर जो उपज होती है, वह घर–परिवार के लिए पर्याप्त नहीं है, इसलिए उसे कर्ज लेना पड़ता है। उसकी सारी उपज कर्ज चुकाने में चली जाती है, फिर भी वह ऋण से मुक्त नहीं हो पाता। इसलिए उसे मजदूरी करनी पड़ती है, यद्यपि "मजूरी" से बचाए पैसे भी उसे महाजन को देने पड़ते हैं।

आर्थिक दीनता ने हल्कू के मन को दीन नहीं बनाया है लगातार शोषण ने उसे धीरे–धीरे किसानी के प्रति उदासीन अवश्य बना दिया है। हल्कू के स्वभाव का परिचय हमें कहानी की शुरुआत से ही लग जाता है। जब सहना कर्ज माँगने आता है, तब उसकी पत्नी "मजूरी" से बचाए तीन रुपये देने को तैयार नहीं होती। जबकि हल्कू का दृष्टिकोण ज्यादा व्यावहारिक है। वह जानता है कि इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। अगर अभी वह रुपया नहीं देगा तो उसे गालियाँ और घुड़कियाँ सहनी पड़ेंगी। जब वह यही बात मुन्नी को कहता है तो मुन्नी कहती है "गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है" मुन्नी सूदखोर महाजनों और जमींदारों की ताकत को भले न जानती हो, हल्कू जानता है। वह जानता है कि इनसे बचने का कोई रास्ता नहीं है।

हल्कू एक समझदार किसान है। वह समाज के अंतर्विरोध को बखूबी समझता है। वह जानता है कि समाज में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास हर तरह की सुख–सुविधाओं के साधन मौजूद हैं। लेकिन ये साधन उन लोगों के पास हैं जो स्वयं मेहनत नहीं करते, जो किसानों की मेहनत का लाभ उठाते हैं। लेकिन हल्कू इसके सही कारण को पहचानने में असमर्थ है। वह उसे 'तकदीर की खूबी' समझता है। यानी कि जो दूसरों की मेहनत पर मजे कर रहे हैं, वे भाग्यशाली हैं और हम जो मेहनत करके भी भूखे मर रहे हैं, हमारा भाग्य ही खराब है शोषण को भाग्य का खेल समझने के कारण हल्कू के पास शोषण से बचने का कोई अन्य रास्ता नहीं है। इसीलिए वह सोचता है कि अगर खेती में भी शोषण होना है तो ऐसी खेती से चिपके रहने का क्या लाभ? दूसरे, वह यह भी सोचता है कि जब लोग मेहनत न करके भी सुखी हैं, तो फिर मेहनत करते रहने का क्या मतलब? इस तरह लगातार शोषण उसकी चेतना को कृषि और श्रम दोनों से उदासीन बना देता है। हल्कू की यही मानसिकता खेत पर उसके सारे व्यवहार में व्यक्त होती है।

खेत पर वह अपने उपज की देखभाल करने के लिए आया है। उसके साथ उसका कुत्ता है, जिसके साथ उसका व्यवहार उसके हृदय की मानवीयता और पवित्रता को व्यक्त करता है। जैसा कि प्रेमचंद ने स्वयं कहानी में लिखा है, **'गरीबी ने हल्कू की आत्मा को आहत नहीं किया है'**। इसलिए वह अपने को सर्दी से बचाने के लिए जितना चिंतित है, उतनी ही चिंता जबरा को लेकर भी है। हल्कू के खेत में जब नीलगायें आ जाती हैं, तब हल्कू उठकर नहीं जाता। पहले वह सोचता है कि जबरा के रहते कोई जानवर खेत में जा ही नहीं सकता। फिर वह उठता भी है तो दो–तीन कदम चलकर ठंड के बहाने से पुनः बैठ जाता है। यह जानते हुए कि नीलगायें खेत चर रही हैं, वह चादर ओढ़कर सो जाता है। उसका यह व्यवहार निश्चय ही उसके पहले के व्यवहार से भिन्न है, लेकिन अगर हम कहानी के पहले भाग पर गौर करें तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि इस व्यवहार का क्या कारण है? वस्तुतः हल्कू लगातार शोषण से परेशान होकर जिस मानसिकता से गुजर रहा है, उसी का नतीजा है कि वह अपनी ही मेहनत से उपजाई फसल को बचाने की कोशिश नहीं करता। निश्चय ही हल्कू स्वयं इस व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं है। परिस्थितियों ने उसे ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है। वे परिस्थितियाँ हैं, किसान का लगातार शोषण। वह अशिक्षित है, धार्मिक आतंक और अंधविश्वास के कारण भाग्यवादी है, गरीब है, इसलिए वह कथित उच्चवर्गीय महाजनों और जमींदारों के चंगुल में फँसा हुआ है। शोषण के चक्र से वह कैसे मुक्त हो, यह नहीं जानता, इसलिए वह किसानी करने की लाचारी से ही मुक्त होने की सोचता है। स्पष्ट ही उसकी मानसिकता किसान के भयावह शोषण को ही उजागर करती है, और इस अर्थ में हल्कू की यह मानसिकता केवल हल्कू की

मानसिकता नहीं रहती, गरीब मेहनतकश की मानसिकता बन जाती है। हल्कू का चरित्र इसी अर्थ में एक वर्गीय चरित्र बन जाता है।

अभ्यास

2) नीचे दिये गये उदाहरणों के आधार पर हल्कू के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।

क) मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा, बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सर से टल जाएगी।

.....

.....

.....

.....

ख) और एक–एक भागवान ऐसे पड़े हैं जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबड़ा कर भागे। मोटे–मोटे गद्दे–लिहाफ, कम्मल। मजाल है जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।

.....

.....

.....

.....

ग) आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

.....

.....

.....

.....

घ) हल्कू ने बहाना किया – मैं मरते–मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है! पेट में ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 परिवेश

कहानी की रचना में देश–काल का बड़ा महत्व होता है। देश–काल से तात्पर्य है वह परिवेश जिसमें कहानी का पूरा घटनाचक्र घटित हुआ है। कहानी का यह कथ्य जिस परिवेश में घटित होता है, वह भी कथ्य को निर्धारित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूसरे कहानी का कथ्य जिस देश–काल से संबंधित होता है, उसके द्वारा हम उस युग की स्थितियों की अधिक यथार्थपरक पहचान भी करते हैं।

'पूस की रात' की रचना प्रेमचंद ने 1930 में की थी। उस समय भारत में अंग्रेजों का राज था। अंग्रेजी राज में भारत के किसानों की दशा अत्यंत दयनीय थी। जमींदारी प्रथा के कारण आम किसानों का भयंकर शोषण होता था। उनकी उपज का बड़ा हिस्सा जमींदार मालगुजारी के रूप में वसूल कर लेते थे। इससे उनको अपने जीवनयापन के लिए महाजन से कर्ज़ा लेना पड़ता था। लेकिन महाजन भी किसान की मजबूरी और उसकी अशिक्षा तथा पिछड़ेपन का लाभ उठाते थे। परिणाम यह होता था कि एक बार ऋण के चक्र में फँसने के बाद किसान की आसानी से मुक्ति नहीं होती थी। प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में ग्रामीण जीवन के इसी यथार्थ को चित्रित किया है।

इस कहानी में ग्राम्य जीवन का विस्तृत चित्रण नहीं है, लेकिन ग्रामीण जीवन की सारी विशेषताएँ इसमें अत्यंत जीवंत रूप में चित्रित हुई हैं। प्रेमचंद ग्राम्य वातावरण की सृष्टि करने के लिए सबसे पहले भाषा के स्तर पर परिवर्तन करते थे। ग्राम्य वातावरण से जुड़ी हुई कहानियों में तद्भव और देशज शब्दों का अधिक प्रयोग होता है जैसे – कम्मल, डील, पूस, उपज, आले, धौंस आदि। प्रेमचंद ग्रामीण वातावरण को यथार्थपरक बनाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। जैसे – बाज आना, ठंडे हो जाना, चौपट होना आदि। प्रेमचंद को ग्राम्य जीवन की सूक्ष्म पहचान थी। इस कहानी में उन्होंने अंधेरी रात में खेत पर हल्कू और जबरा के क्रियाकलापों का जो चित्रण किया है, उसमें उस वातावरण को प्रेमचंद ने अत्यंत सजीव बना दिया। पूस की अंधेरी रात में खेत का दृश्य देखिए:

''पूस की अंधेरी रात। आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था।''

इस दृश्य में आप पायेंगे कि प्रेमचंद ने खेत के वातावरण के सारे पक्षों को समेट लिया है। पूस की अंधेरी रात है। पौष के महीने में पड़ने वाली ठंड को व्यक्त करने के लिए वह अगला वाक्य लिखते हैं "आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे।" यह वाक्य ठंड की तल्खी को व्यक्त करता है और ठंड का कहानी के विकास से गहरा संबंध है। इससे अगले वाक्य में उस स्थान का वर्णन है जहाँ उसे जाड़े की रात गुजारनी है। लेकिन यहाँ भी "पुरानी गाढ़े की चादर" का जिक्र महत्वपूर्ण है जिसे लपेटे वह बांस के खटोले पर बैठा कांप रहा है। इसी "चादर" की जगह वह कंबल खरीदना चाहता था। इसीलिए "पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े" काँपना हल्कू की आगे की क्रियाओं का आधार बन जाता है। प्रेमचंद केवल बाह्य परिवेश के चित्रण में ही सफल नहीं हैं वरन् पात्रों की मनोदशा के चित्रण में भी अत्यंत कुशल हैं।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसे हृदय में कंपन होने लगा। कभी इस करवट लेटता कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

ठंड के मारे हल्कू परेशान है। चादर सर्दी रोकने में असमर्थ है। तब वह चिलम पीता है, लेकिन चिलम भी उसकी कोई सहायता नहीं करती। उसके बाद की उसकी मनःस्थिति और बाह्य परिस्थिति के द्वंद्व का उपर्युक्त पंक्तियों में चित्रण किया है। हल्कू चिलम पीकर निश्चय करता है कि अब वह लेट जाए, लेकिन सर्दी से वह काँपने लगता है। तब वह इधर-उधर करवट बदलता है लेकिन उससे भी उसे आराम नहीं मिलता। ऐसे में प्रेमचंद सर्दी की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए एक स्थिति का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं "जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।" यहाँ पिशाच द्वारा छाती को दबाना जिस स्थिति को व्यक्त करता है उससे ठंड की तीव्रता पाठक के सामने सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

प्रेमचंद ने केवल हल्कू की क्रियाओं का ही नहीं जबरा की क्रियाओं का भी अत्यंत सजीव और यथार्थ चित्रण किया है।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी के बाहर आकर भूंकने लगा। हल्कू ने कई बार उसे चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़–भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्त्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

यहाँ सिर्फ कुत्ते की क्रियाओं का ही वर्णन नहीं है, वरन् उसकी हल्कू के प्रति कर्त्तव्य–भावना का भी चित्रण किया गया है और दोनों चीजें उपर्युक्त अंश में इतने आत्मीय रूप में व्यक्त हुई हैं कि कुत्ता, कुत्ता नहीं वरन् कहानी का जीवंत पात्र बन कर सामने आया है।

1.8 संरचना शिल्प

कहानी की रचना भाषा में होती है और भाषा का कलात्मक उपयोग कहानी के कथ्य और प्रतिपाद्य को संप्रेष्य बनाता है। इसलिए कहानी रचना के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि कहानी का कथ्य और प्रतिपाद्य उत्कृष्ट हो वरन् यह भी जरूरी है कि वह उत्कृष्टता कहानी में अभिव्यक्त भी हो। यह अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही होती है। कहानी का कथ्य अलग–अलग शैलियों को संभव बनाता है। इस प्रकार शैली और भाषा कहानी की संरचना के मुख्य अंग हैं।

शैली : 'पूस की रात' प्रेमचंद की अत्यंत प्रौढ़ रचना मानी जाती है। यह कहानी जितनी कथ्य और प्रतिपाद्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उतनी ही भाषा और शैली की दृष्टि से भी। यह कहानी ग्राम्य जीवन पर आधारित है। लेकिन प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों में जिस तरह का आदर्शवाद दिखाई देता था, वह इस कहानी में नहीं है। इसका प्रभाव कहानी की शैली पर भी दिखाई देता है। प्रेमचंद ने इस कहानी में अपने कथ्य को यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया है इसलिए उनकी शैली भी यथार्थवादी है। यथार्थवादी शैली की विशेषता यह होती है कि रचनाकार जीवन यथार्थ को उसी रूप में प्रस्तुत करता है जिस रूप में वे होती हैं, लेकिन ऐसा करते हुए भी उसकी

दृष्टि सिर्फ तथ्यों तक सीमित नहीं होती। इसके विपरीत वह जीवन की वास्तविकताओं को यथार्थ रूप में इसलिए प्रस्तुत करता है ताकि उसके बदले जाने की आवश्यकता को पाठक स्वयं महसूस करे। दूसरे, यथार्थवादी रचनाकार यथार्थ के उद्घाटन द्वारा पाठकों को, समस्या का हल नहीं देता पर उन्हें प्रेरित करता है कि वह स्वयं स्थितियों को बदलने की आवश्यकता महसूस करे और उसके लिए उचित मार्ग खोजे। इस कहानी में प्रेमचंद की दृष्टि यथार्थ के उद्घाटन पर टिकी है। वे न तो हल्कू को नायक बनाते हैं न खलनायक। वे इस समस्या का कोई हल भी प्रस्तुत नहीं करते। कहानी की रचना वे इस तरह करते हैं कि जिससे कहानी में प्रस्तुत की गई समस्या अपनी पूरी तार्किकता के साथ उभरे।

'पूस की रात' का अगर हम विश्लेषण करें तो इस बात को आसानी से समझ सकते हैं। कहानी का आरंभ एक छोटी–सी घटना से होता है। हल्कू के यहाँ महाजन कर्ज माँगने आया है। हल्कू तीन रुपए उसको दे देता है जो उसने केवल कंबल खरीदने के लिए जोड़े हैं। इसके बाद कहानी इस प्रसंग से कट जाती है। दूसरे भाग से कहानी में एक नया प्रसंग आरंभ होता है। पूस का महीना है। अंधेरी रात है। अपने खेत के पास बनी मंड़ैया में वह चादर लपेटे बैठा है और ठंड से काँप रहा है। सर्दी में ठंड से काँपना पहले प्रसंग से कहानी को जोड़ देता है जब हल्कू को मजबूरन तीन रुपये देने पड़े थे। यहाँ पहले प्रसंग में उठाया गया सवाल भी उभरता है कि ऐसी खेती से क्या लाभ, जिससे किसान की बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं होती? यानी लगातार शोषण और उससे मुक्ति की संभावना का अभाव अंततः किसान को ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँचा सकता है जहाँ कहानी के अंत में हल्कू पहँच जाता है। कहानी के अंत में नीलगायों द्वारा खेत नष्ट होते देखकर भी हल्कू अगर नहीं उठता तो इसका कारण केवल ठंड नहीं है। यहाँ हल्कू में अपनी उपज को बचाने की इच्छा ही खत्म हो चुकी है। इस तरह समस्या की भयावहता का चित्रण करता हुआ कहानीकार कहानी को समाप्त कर देता है। 'पूस की रात' की शैली की यही विशेषता है और इसी यथार्थवादी शैली ने उनकी इस रचना को श्रेष्ठ बनाया है।

भाषा : प्रेमचंद की कहानियों की भाषा बोलचाल की सहज भाषा के नजदीक है। उनके यहाँ संस्कृत, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के उन शब्दों का इस्तेमाल हुआ है जो बोलचाल की हिंदी के अंग बन चुके हैं। प्रायः वे तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे कहानी के परिवेश के अनुसार शब्दों का चयन करते हैं, जैसे ग्राम्य जीवन से संबंधित कहानियों में देशज शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग होता है। वाक्य रचना भी सहज होती है। लंबे और जटिल वाक्य बहुत कम होते हैं। प्रायः छोटे और सुलझे हुए वाक्य होते हैं ताकि पाठकों तक सहज रूप से संप्रेषित हो सकें।

'पूस की रात' कहानी ग्रामीण जीवन से संबंधित है। इसलिए इस कहानी में देशज और तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। जैसे; **तद्भव शब्दः** कम्मल, पूस, उपज, जनम, ऊख।

देशज : हार, डील, आले, धौंस, खटोले, पुआल, टप्पे, उपजा, अलाव, दोहर। तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग से कहानी के ग्रामीण वातावरण को जीवंत बनाने में काफी मदद मिलती है। लेकिन प्रेमचंद ने उर्दू और संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उर्दू के प्रायः ऐसे शब्द जो हिंदी में काफी प्रचलित हैं, ही प्रयोग किए गए हैं। जैसे, खुशामद, तकदीर, मजा, अरमान, खुशबू, गिर्द, दिन, साफ, दर्द, मालगुजारी आदि। उर्दू के ये शब्द भी उन्हीं रूपों में प्रयुक्त हुए हैं, जिन रूपों में वे बोलचाल की भाषा में

प्रचलित हैं जैसे दर्द को दरद, मजदूरी को मजूरी आदि। इस कहानी में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त हुआ है, लेकिन वे भी ज्यादातर हिंदी में प्रचलित हैं और कठिन नहीं माने जाते। जैसे, हृदय, पवित्र, आत्मा, आत्मीयता, पिशाच, दीनता, मैत्री आदि। श्वान, अकर्मण्यता अणु जैसे अपेक्षाकृत कम प्रचलित तत्सम शब्द भी हैं, लेकिन वे कहानी में खटकते नहीं। तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रायः ऐसी ही जगह हुआ है, जहाँ कथाकार ने किसी भावप्रवण स्थिति का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अंश को देखिए:

''जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी–मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक–एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।"

उपर्युक्त वाक्यों में आप देखेंगे कि एक भावात्मक स्थिति का चित्रण किया गया है। इन तत्सम शब्दों में जो कोमलता है वह इस आत्मीय पूर्ण स्थिति को जीवंत बनाने में सहायक है। लेकिन प्रेमचंद ने यह ध्यान रखा है कि उन्हीं तत्सम शब्दों का प्रयोग करें जो हिंदी भाषा की स्वाभाविकता के अनुकूल हो। प्रेमचंद की रचनाओं में शब्दों का प्रयोग अत्यंत सतर्कता के साथ होता है। कोई भी शब्द फालतू नहीं होता तथा उनमें अर्थ की अधिकतम संभावनाएँ व्यक्त होती हैं। जैसे निम्नलिखित वाक्यों को देखिए:

मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।

उपर्युक्त वाक्य में **"मजूरी"** और **"मज़ा"** शब्द शोषण की पूरी प्रक्रिया को व्यक्त करने में समर्थ हैं। विशेष बात यह है कि इस तरह के गहरे अर्थ वाले वाक्यों में भी ऐसी सहजता होती है कि उसे कोई भी आसानी से समझ सके। प्रेमचंद की भाषा जटिल भावना, विचारों या स्थितियों को व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें:

हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भांति उसे घूर रहा था।

कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट पर, जाड़ा किसी पिशाच की भांति उसकी छाती को दबाए हुए था।

कर्त्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

ऊपर के तीन उद्धरणों में मोटे अक्षरों वाले वाक्यों से पूर्व के वाक्यांशों में व्यक्त किए गए भावों की तीव्रता या अर्थवत्ता अधिक स्पष्ट रूप से और प्रभावशाली ढंग से उजागर हुई है। इससे भाषा में जीवंतता भी आती है।

संवाद : प्रेमचंद की कहानियों में संवाद की भाषा उनके कथ्य की तरह यथार्थ परक होती है। संवादों की भाषा का निर्धारण पात्रों के परिवेश और उनकी मनःस्थिति से तय होता है। इस कहानी में अधिकांश संवाद हल्कू के हैं, कुछ उसकी पत्नी मुन्नी के हल्कू के संवादों में भी स्वकथन वाले संवाद या ऐसे संवाद जो जबरा (कुत्ते) को संबोधित हैं, अधिक हैं। हल्कू और मुन्नी गरीब किसान हैं। इसीलिए उनकी भाषा भी उसी परिवेश के अनुकूल ग्राम्यता लिए हुए हैं।

हल्कू और मुन्नी की बातचीत का अंश देखिए : हल्कू ने आकर स्त्री से कहा – सहना आया है। लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे। मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिर कर बोली– तीन ही तो रुपए हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा। माघ–पूस की रात हार में कैसे कटेगी उससे कह दो, फसल पर दे देंगे अभी नहीं। ये कहानी के आरंभिक संवाद हैं। इनमें आप पायेंगे कि दोनों व्यक्तियों की भाषा बहुत ही सरल है इनमें एक भी कथन जटिल नहीं है। कम्मल, पूस, हार जैसे शब्द उनके ग्राम्य पृष्ठभूमि को व्यक्त करते हैं। गला तो छूटे, मुहावरा वाक्य को और अधिक स्वाभाविक बनाता है, साथ ही कहने वाले की मानसिक स्थिति का संकेत भी करता है। वाक्य बहुत छोटे–छोटे हैं, उनमें भी छोटे-छोटे उपवाक्यों का प्रयोग किया गया है।

"लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे" इस वाक्य में कहीं उलझाव नहीं है। छोटे–छोटे उपवाक्यों के कारण पूरी बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है। प्रेमचंद ने पात्रों की मनःस्थिति का विशेष रूप से ध्यान रखा है। हार पर हल्कू के संवादों में उदारता, सरलता, समझदारी, चतुराई सभी झलकती है और भावनाओं के सूक्ष्म अंतर के अनुकूल भाषा में भी अंतर आता गया है।

इस तरह शैली, भाषा और संवाद तीनों दृष्टियों से प्रेमचंद की यह कहानी उत्कृष्ट है।

बोध प्रश्न

11) 'पूस की रात' कहानी में से ऐसे छह शब्द चुनिए जिनसे ग्राम्य वातावरण बनाने में मदद मिली हो।

क) ..... ख) ..... ग) .....

घ) ..... ड.) ..... च) .....

12) कहानी में मुन्नी के गुस्से को व्यक्त करने वाला संवाद लिखिए। संवाद के लिए कहानी देख सकते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

13) "बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदे टपटप नीचे टपक रही थीं।'' उपर्युक्त वाक्यों में तीन–तीन तत्सम और तद्भव शब्द चुनकर लिखिए:

तत्सम शब्द :..... ....

तद्भव शब्द : ....

अभ्यास

3) नीचे दिए गए उद्धरण की तीन भाषागत विशेषताएँ बताइए।

"थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू–छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम

होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हो। अंधकार के उस आनंद सागर से यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।"

क) .....

.....

.....

ख) .....

.....

.....

ग) .....

.....

.....

.....

4) 'पूस की रात' कहानी को यथार्थवादी शैली की कहानी कहा गया है। इस शैली की दृष्टि से इस कहानी की तीन विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.9 प्रतिपाद्य

रचना लेखक किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही करता है। जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर रचनाकार रचना करता है, कहानी का वही प्रतिपाद्य कहलाता है। 'पूस की रात' कहानी को आपने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। आपने अब तक कहानी का जो विश्लेषण पढ़ा है, उससे यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि प्रेमचंद कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहते हैं। हम उन्हीं बातों को पुनः यहाँ प्रस्तुत करेंगे। यह कहानी चौथे दशक के दौरान लिखी गई है। उस समय भारत पराधीन था और यहाँ की जनता स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रही थी। इस संघर्ष में किसान और मजदूर जनता भी शामिल थी। किसान सिर्फ देश की स्वतंत्रता के लिए ही संघर्ष नहीं कर रहे थे वरन् अपने अधिकारों के लिए भी संघर्ष कर रहे थे।

उस जमाने में जमींदारी प्रथा थी। किसानों को अपनी उपज का बड़ा भाग लगान और मालगुजारी में चुकाना पड़ता था। इस कारण उन्हें अपना जीवनयापन करने के लिए महाजनों और जमींदारों से ऋण लेना पड़ता था। चूँकि अधिकांश किसान जनता अशिक्षित थी, इसलिए जमींदार और महाजन कर्ज पर मनमाना ब्याज वसूलते थे। एक बार जब कोई किसान कर्ज के चक्कर में फँस जाता था तो फिर वह आसानी से छूट

नहीं पाता था। हल्कू की भी यही स्थिति है। प्रेमचंद ने कहानी में किसानों की इस अवस्था का चित्रण नहीं किया है, बल्कि यह यथार्थ तो कहानी की पृष्ठभूमि में मौजूद रहता है। लेकिन असली सवाल इसके बाद पैदा होता है। शोषण चक्र में फँसा हुआ किसान क्या करे? कहानी का विषय यही है। हल्कू भी शोषण के उसी चक्र में फँसा हुआ है। यहाँ तक की अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए हल्कू को मजदूरी भी करनी पड़ती है। लेकिन मजदूरी से मिले पैसे में से अगर घर-परिवार की जरूरत के लिए कुछ पैसे भी बचाता है (सिर्फ तीन रुपए) तो वह भी महाजन ले लेता है। ऐसे में किसान क्या करे। आखिर वह किसानी से क्यों चिपका रहे?

व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की आशा में ही कष्ट सहता है। उसे भरोसा रहता है कि आज नहीं तो कल वह जरूर इन दुखों से मुक्त होगा। हल्कू के जीवन में वह आशा नहीं रही है। वह सोचता है कि ऐसा क्यों है कि मेहनत करने वाले भूखे मरते हैं और उनकी मेहनत को छीनने वाले मौज करते हैं? उसके पास इसका बना–बनाया जवाब भी है – यह सब भाग्य का खेल है। जिस स्थिति में वह जी रहा है, उसमें वह इससे अधिक दूर तक सोच भी नहीं सकता। लेकिन भाग्य का खेल मानने से शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकती है। हाँ, यह अवश्य है कि व्यक्ति नकारात्मक दिशा में सोचना शुरू कर दे, जैसा कि हल्कू सोचता है और जो मुन्नी की बातों में व्यक्त हुआ है।

हल्कू का किसानी पर से विश्वास उठ जाता है। वह अपनी ही आँखों के सामने अपने खेत की उपज को नीलगायों के द्वारा नष्ट होते हुए देखता है और चादर ओढ़े लेटा रहता है। उसे खेत के नष्ट हो जाने का दुःख नहीं बल्कि इस बात की प्रसन्नता है कि अब उसे ठंडी रातों में खेत पर सोना नहीं पड़ेगा। यह शोषण से उत्पीड़ित किसान की वह मानसिकता है, जहाँ उसमें उज्ज्वल भविष्य की आशा बिल्कुल समाप्त हो गयी है। भाग्यवाद ने उसे और अधिक निष्क्रिय बना दिया है। ऐसे में यह कहानी एक चेतावनी की तरह हमारे सामने आती है कि क्या शोषण का चक्र यूँ ही चलता रहेगा? क्या हल्कू जैसे किसान अपनी उपज की कमाई स्वयं नहीं भोग सकेगा वे ऐसे ही दरिद्र और अशिक्षित बने रहेंगे और शोषण तथा भाग्यवाद के नीचे पिसते रहेंगे?

प्रेमचंद इनका कोई उत्तर नहीं देते। संभवतः उत्तर की आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि इन प्रश्नों की गंभीरता में ही इनका उत्तर निहित है। हाँ, यहाँ एक विकल्प की ओर संकेत अवश्य हुआ है। वह है, किसान से मजदूर बनने का विकल्प। यह विकल्प भी विवशता के कारण सामने आता है, जोकि प्रेमचंद का आदर्श न होकर सामाजिक यथार्थ का ही एक ढंग है। पूर्ण रूप से मजदूर बनकर भी हल्कू शोषण उत्पीड़न से मुक्त हो जाएगा, ऐसी गलतफहमी प्रेमचंद को नहीं है।

प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन पर कई उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। प्रेमचंद को किसान जीवन का महान चितेरा कहा जाता है। उन्होंने किसानों के जीवन के प्रत्येक पक्ष को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। इन रचनाओं में उनकी सहानुभूति गरीब और मेहनतकश किसानों के साथ है। किंतु वे किसानों के जीवन में व्यापक नकारात्मक पक्षों को भी उजागर करते हैं। आरंभ में प्रेमचंद अपनी रचनाओं में कोई–न–काई आदर्शवादी हल पेश करते थे, लेकिन बाद में उनका इस तरह के आदर्शवाद पर से विश्वास उठ गया था। आदर्शवाद का स्थान यथार्थवाद ने ले लिया। वे मानने लगे थे कि किसी समस्या का कोई कृत्रिम हल पेश करने के बजाय उसे पूरी तीव्रता और ईमानदारी से प्रस्तुत करना ही रचनाकार के लिए पर्याप्त है। यह कहानी इसी दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है।

शीर्षक की उपयुक्तता : कहानी का शीर्षक कहानी के मूल प्रतिपाद्य को, कथ्य को, चरित्र को व्यक्त करने वाला होता है। इस कहानी के कथ्य का मुख्य भाग पौष की एक रात्रि में घटित होता है। कहानी का आरंभ उस कंबल की चर्चा से होता है, जिसे खरीदने के लिए हल्कू ने बड़ी मुश्किल से तीन रुपये बचाये हैं किंतु वे रुपये भी उसे महाजन को देने पड़ते हैं। कंबल न खरीद पाने के कारण पूस की रात में पुरानी चादर ओढ़े उसे खेत पर जाना पड़ता है। शेष कहानी खेत पर उसी रात में घटित होती है।

पूस की यह रात ठंडी है। यह रात प्रतीकात्मक भी है। किसान के जीवन के अंधेरे की तरह यह भी अंधेरी रात है। आशा का अलाव कब का बुझ चुका है लेकिन सक्रियता की आँच भी नहीं बची है। परिणामतः खेत (जीवन) की फसल नीलगायें (शोषक) खा जाती हैं लेकिन वह भाग्य के चक्र में बँधा हुआ बैठा रहता है। पूस की रात निराशा और अंधकार की ऐसी ही रात है, जिसे यह शीर्षक पूरी तरह व्यक्त करता है।

बोध प्रश्न

14) 'पूस की रात' कहानी की मुख्य समस्या है। (अपना उत्तर कोष्ठक में सही उपसंख्या लिखकर दें)

क) फसल की रक्षा की समस्या

ख) सर्दी से बचाव की समस्या

ग) किसानों के शोषण की समस्या

घ) कंबल खरीदने की समस्या ( )

15) नीचे कुछ वाक्य दिये गये हैं, इनमें से कुछ में कही गयी बातें सही हैं, कुछ गलत। सही और ग़लत वाक्यों को पहचानिए।

क) अंग्रेजी राज में जमींदारी प्रथा थी। (सही/गलत)

ख) किसानों को लगान और मालगुजारी नहीं देनी पड़ती थी। (सही/गलत)

ग) हल्कू भाग्यवादी था। (सही/गलत)

घ) 'पूस की रात' आदर्शवादी कहानी है। (सही/गलत)

अभ्यास

5) 'तकदीर की खूबी है'। हल्कू के इस कथन का कहानी के उद्देश्य से क्या संबंध है, चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) 'पूस की रात' को यथार्थवादी क्यों कहा गया है? चार पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.10 सारांश

आपने 'पूस की रात' कहानी को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा और उसके विश्लेषण का भी गंभीरता से अध्ययन किया होगा।

- 'पूस की रात' कहानी की कथावस्तु किसान जीवन से संबंधित है। हल्कू गरीब किसान है जो कर्ज से दबा हुआ है। लगातार शोषण से उसका किसानी से विश्वास उठ जाता है। आप कथावस्तु के आधार पर कहानी का विश्लेषण कर सकते हैं।
- हल्कू कहानी का नायक है। वह गरीब परंतु समझदार किसान है। आप इस चरित्र की विशेषताओं की व्याख्या कर सकते हैं।
- स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व किसानों की क्या दशा थी, इस कहानी के विश्लेषण से आप समझ सकते हैं। अब आप स्वयं 'परिवेश' का विश्लेषण कर सकते हैं।
- 'पूस की रात' की शैली यथार्थवादी, भाषा बोलचाल की एव संवाद स्वाभाविक है। अब आप इस कहानी के संरचना शिल्प की विशेषताएँ बता सकते हैं और
- 'पूस की रात' यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी के प्रतिपाद्य का इस आधार पर विश्लेषण भी कर सकते हैं।

1.11 उपयोगी पुस्तकें

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : साहित्य सहचर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

शर्मा, राम विलास : प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

1.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) क
2) घ
3) ख
4) ग

5) घ

6) ग

7) ग

8) ख

9) मुन्नी कहती है कि कड़ी मेहनत के बाद भी सारी उपज कर्ज चुकाने में चली जाती है। पेट भरने के लिए मजदूरी करनी पड़ती है, तब खेती से चिपके रहने का क्या लाभ।

10) क) हल्कू इस बात से प्रसन्न है कि उसे ठंड में खेत पर नहीं रहना पड़ेगा।

ख) अब उसकी उपज महाजनों के यहाँ नहीं जाएगी

11) क) पूस ख) हार ग) ऊख घ) पुआल

ड.) अलाव च) मंड़ैया छ) डाँड़ ज) मालगुजारी

12) ''कर चुके दूसरा उपाय। जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर–मर काम करो उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी–न–दूँगी"

13)

तत्सम शब्द	तद्भव शब्द
अंधकार	अंधेरा
वृक्ष	बगीचे
पवन	पत्तियों
निर्दय	

14) ग

15) क) सही

ख) गलत

ग) सही

घ) गलत

अभ्यास

1) **संदर्भ** : उपर्युक्त उद्धरण प्रेमचंद की प्रख्यात कहानी 'पूस की रात' से लिया गया है। इस कहानी के नायक हल्कू की पत्नी मुन्नी का यह कथन है। हल्कू के यहाँ महाजन रुपये माँगने आया है। इस पर मुन्नी हल्कू से उपुर्यक्त बात कहती है।

व्याख्या : मुन्नी चिंता व्यक्त करते हुए कहती है कि मालूम नहीं कितना कर्ज है कि चुकने का नाम ही नहीं लेता। अगर सारी उपज कर्ज चुकाने में ही जानी है

तो इससे बेहतर है कि हम खेती ही छोड़ दें। ऐसी खेती से चिपके रहने का क्या लाभ? कड़ी मेहनत के बाद तो फसल तैयार होती है। किसान का लाभ तो उसकी उपज ही है, लेकिन वही उपज कर्ज चुकाने में चली जाए तो फिर इतनी मेहनत करने का क्या लाभ? लगता है जैसे किसान का जन्म तो कर्ज चुकाने के लिए ही हुआ है। क्योंकि एक बार कर्ज लेने के बाद वह कभी उस कर्ज से छूट नहीं पाता और उसकी उपज महाजनों और जमीदारों के यहाँ पहुँचती रहती है और स्वयं किसान को अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए मजदूरी का सहारा लेना पड़ता है। व्यक्ति किसानी या कोई भी काम इसीलिए तो करता है ताकि वह अपने घर–परिवार का भरण–पोषण कर सके, लेकिन उसका वह काम सिर्फ दूसरों को लाभ पहुँचाए, उसकी मेहनत का थोड़ा–सा अंश भी स्वयं उसके लिए न बच पाये तो फिर उस काम को करते रहने या उससे चिपके रहने का क्या लाभ? इसीलिए मुन्नी का कहना है कि ऐसी खेती जो सिर्फ कर्ज चुकाने में चली जाए, उससे तो दूर रहना ही अच्छा :

विशेषः

1) मुन्नी द्वारा व्यक्त किये गये विचार इस कहानी का वैचारिक आधार है। हल्कू खेत के नष्ट होने पर भी क्यों बैठा रहता है, इसका उत्तर हमें उपर्युक्त कथन में मिल जाता है।

2) यह संवाद है और इसकी भाषा में एक गरीब, ग्रामीण किसान महिला की भाषा की स्वाभाविकता निहित है। छोटे वाक्य, तद्भव शब्द, बोलचाल की भाषा इसकी विशेषता है।

3) क) यहाँ हल्कू के आत्मसम्मान की भावना व्यक्त हुई है। हल्कू जानता है कि पैसे से वह बच नहीं सकता। अगर वह पैसे नहीं देगा तो उसे सहना की गालियाँ सुननी पड़ेगी, डाँट खानी पड़ेगी। उसे इस अपमान से बचने का एक ही रास्ता दिखाई देता है कि वह अपने पास बचाए गए पैसे उसे दे दे।

ख) यहाँ हल्कू की समझदारी व्यक्त हुई है। वह गरीब किसान है, लेकिन अनुभवों ने इसे इतना समझा दिया है कि वह किस तरह के समाज में जी रहा है।

ग) यहाँ हल्कू की आत्मीयता व्यक्त हुई है। जबरा के साथ भी वह वही व्यवहार कर रहा है, जो अपने किसी मित्र या रिश्तेदार के साथ करता।

घ) यहाँ हल्कू का बहानेबाजी का कौशल व्यक्त हुआ है। हल्कू यह जानते हुए भी कि नीलगायें खेत नष्ट कर रही हैं, वह बैठा रहता है, लेकिन अब पत्नी के सामने इस बात को स्वीकारना भी नहीं चाहता, इसलिए वह पेट दर्द का झूठा बहाना बनाता है।

3) क) पूरे दृश्य को शब्दों में जीवंत कर दिया गया है।

ख) अंतिम पंक्तियों में भाषा काव्यात्मकता लिए हुए है।

ग) तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग है परंतु भाषा की सहजता बनी हुई है।

4) क) गरीब किसान के जीवन की सच्चाई को उसी रूप में व्यक्त किया गया है।

ख) कहानी का अंत किसी आदर्श की स्थापना में नहीं किया गया है।

ग) चरित्र भी असामान्य और विशिष्ट नहीं है।

5) 'तकदीर की खूबी है।' यह कथन हल्कू की मानसिकता को व्यक्त करता है। प्रेमचंद इसके माध्यम से किसानों की भाग्यवादिता की प्रवृत्ति को रेखांकित करते हैं। किसान सोचता है कि उसके जीवन के दुःख उसके भाग्य के कारण है। जो बिना परिश्रम के सुख–चैन की जिंदगी बसर कर रहे हैं, उनका भाग्य अच्छा है।

6) 'पूस की रात' कहानी को यथार्थवादी इसलिए कहा गया है क्योंकि इस कहानी में प्रेमचंद ने किसान के जीवन की वास्तविकता को वैसा ही प्रस्तुत किया है, जैसी वह उस जमाने में थी। प्रेमचंद ने समस्या का आदर्शवादी समाधान भी नहीं दिया है, वरन् समाधान पाठकों के विवेक पर छोड़ दिया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 व्यंग्य निबंध : वैष्णव की फिसलन (हरिशंकर परसाई)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 निबंध का वाचन

2.3 निबंध का सार

2.4 संदर्भ सहित व्याख्या

2.5 निबंध का कथ्य या उसकी अंतर्वस्तु

2.6 चरित्र–विधान

2.7 लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

2.8 संरचना शिल्प

2.8.1 शैली

2.8.2 भाषा

2.9 निबंध का शीर्षक

2.10 प्रतिपाद्य

2.11 सारांश

2.12 उपयोगी पुस्तकें

2.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

खंड की पहली इकाई में आपने प्रेमचंद की 'पूस की रात' कहानी का अध्ययन किया। इस इकाई में आप हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'वैष्णव की फिसलन' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- परसाई जी के जीवन और एक व्यंग्यकार के रूप में उनके महत्व के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- निबंध के सार को लिख और उसके महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध का कथ्य या उसकी अंतर्वस्तु की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- निबंध में चरित्र–विधान की बारीकियों को समझ सकेंगे;
- निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति से परिचित हो सकेंगे;
- व्यंग्यात्मक निबंध के संरचना–शिल्प की बारीकियों का विश्लेषण कर सकेंगे और
- निबंध के शीर्षक और प्रतिपाद्य की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

यहाँ आप हिंदी के जाने–माने व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की रचना का अध्ययन करने जा रहे हैं। अतः उनके जीवन और साहित्यिक महत्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आपके लिए उपयोगी होगा। परसाई जी का जन्म 22 अगस्त, 1924 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जनपद के जमानी नामक गाँव में एक अत्यंत साधारण परिवार में हुआ था। मैट्रिक परीक्षा से पूर्व ही माँ का असमय निधन और लकड़ी के कोयले के ठेकेदार पिता की असाध्य बीमारी के कारण उन्हें गंभीर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी परसाई जी ने नागपुर विश्वविद्यालय से हिंदी एम.ए. और शिक्षण में डिप्लोमा किया। जंगल विभाग में नौकरी से लेकर उन्होंने विभिन्न विद्यालयों में अध्यापन करते – इस्तीफा देते हुए 1957 से हमेशा के लिए नौकरी से संबंध तोड़ लिया। परिवार बहन, भांजे और भांजी तक ही सीमित रहा। अभावग्रस्तता के कारण वे जीवनभर अविवाहित रहे। 10 अगस्त, 1995 में 71 वर्ष की आयु में लम्बी बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

1957 से जीवन पर्यन्त परसाई जी स्वतंत्र लेखन के भरोसे ही रहे। अपने अभावग्रस्त जीवन के कटु–तिक्त अनुभवों और वामपंथी रुझान के कारण भारतीय सामाजिक विषमता की उनकी समझ अत्यंत गहरी रही है। भारतीय समाज के उज्ज्वल भविष्य की कामना से प्रेरित होकर उन्होंने अपने साहित्य में समूची भ्रष्ट भारतीय व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है। अपने जीवनादर्शों के मूल्य पर उन्होंने कहीं भी किसी भी तरह का समझौता नहीं किया।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना आपके लिए जरूरी है कि हरिशंकर परसाई बहुत कुछ लिखने के बावजूद निबंधकार, कथा–कहानीकार और आलोचक के रूप में अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। वे एक व्यंग्यकार के रूप में ही जाने जाते हैं। कहानी, निबंध, आलोचना आदि में उनका व्यंग्यकार रूप ही अधिक हावी रहता है। वैसे व्यंग्य को साहित्य की एक स्वंतत्र विधा के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि विधाओं में इसे शिल्पगत एक माध्यम के रूप में ही स्वीकृति मिली है।

कबीर, भारतेंदु, निराला और नागार्जुन की व्यंग्य–परंपरा को हरिशंकर परसाई ने सम्पूर्ण विस्तार के साथ नयी ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। आस–पास के दूषित और विषमताग्रस्त भ्रष्ट सामाजिक वातावरण से खिन्न और असंतुष्ट साहित्यकार व्यंग्य के प्रयोग के लिए विवश हो जाता है। कबीर से लेकर परसाई तक के व्यंग्य में इस विवशता को समान रूप से देखा जा सकता है। इन सभी व्यंग्यकारों का उद्देश्य समाज के विभिन्न क्षेत्रों की विकृतियों का पर्दाफाश मात्र न होकर पाठक की परिवर्तन कामी चेतना को जागृत कर, उसे सामाजिक परिवर्तन के लिए कटिबद्ध करना भी रहा है।

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। वर्तमान राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, धर्म और उसके ढोंग भरे कर्मकांड, प्रशासनिक भ्रष्टाचार आदि सभी क्षेत्रों को उन्होंने अपने व्यंग्य बाणों की जद (सीमा) में रखा है। 'हँसते हैं, रोते हैं, 'तब की बात और थी', 'शिकायत मुझे भी है', 'सदाचार का ताबीज', 'अपनी–अपनी बीमारी', 'पगडंडियों का जमाना', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'निठल्ले की डायरी', 'तिरछी रेखाएँ',

'पाखंड का अध्यात्म', 'सुनो भाई साधो', आदि उनकी सभी रचनाएँ 'परसाई रचनावली' के छह खंडों में प्रकाशित हैं। ये सभी व्यंग्य बहुल रचनाएँ हैं।

हिंदी ही नहीं, भारत की बहुत सारी भाषाओं में व्यंग्यकार हुए हैं, लेकिन व्यंग्य को जिस गहरी मानवीय और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ, मनुष्य और समाज के हित में परसाई ने प्रयुक्त किया है, वह विरल ही है। परसाई में व्यंग्य के सभी तेवर दिखाई देते हैं। अपने व्यंग्य बाणों से कभी वे प्रतिपक्षी की धज्जियाँ उड़ाते हैं तो कभी चिकोटी काट कर रह जाते हैं, कभी रस लेते हुए उसके झूठ और ढोंग को उजागर करते हैं, तो कभी उनका मखौल उड़ाते हैं, कभी मीठी छुरी से रेतते हैं, तो कभी उसे सरेआम नंगा कर देते हैं। इन सबके पीछे साधारण जन का दुख–दर्द और उसकी यातना ही होती है। 'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक निबंध में आप देखेंगे कि वे किस प्रकार रस लेते हुए तथाकथित वैष्णव के ढोंग और छद्म को उद्‌घाटित करते हैं। निबंध का मूल पाठ आपके वाचन के लिए आगे दिया जा रहा है।

2.2 निबंध का वाचन

वैष्णव करोड़पति है। भगवान विष्णु का मंदिर। जायदाद लगी है। भगवान सूदखोरी करते हैं। ब्याज से कर्ज देते हैं। वैष्णव दो घंटे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, फिर गादी–तकियेवाली बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते हैं। धर्म धंधे से जुड़ जाय, इसी को 'योग' कहते हैं। कर्ज लेने वाले आते हैं। विष्णु भगवान के वे मुनीम हो जाते हैं। कर्ज लेने वाले से दस्तावेज लिखवाते हैं –

'दस्तावेज लिख दी रामलाल वल्द श्यामलाल ने भगवान विष्णु वल्द नामालूम को ऐसा जो कि–'

वैष्णव बहुत दिनों से विष्णु के पिता के नाम की तलाश में है, पर वह मिल नहीं रहा। मिल जाय तो वल्दियत ठीक हो जाय।

वैष्णव के नम्बर दो का बहुत पैसा हो गया है। कई एजेंसियाँ ले रखी हैं। स्टाकिस्ट हैं। जब चाहे माल दबाकर 'ब्लैक' करने लगते हैं। मगर दो घंटे विष्णु–पूजा में कभी नागा नहीं करते। सब प्रभु की कृपा से हो रहा है। उनके प्रभु भी शायद दो नंबरी हैं। एक नम्बरी होते तो ऐसा नहीं करने देते।

वैष्णव सोचता है – अपार नम्बर दो का पैसा इकट्ठा हो गया है। इसका क्या किया जाय? बढ़ता ही जाता है। प्रभु की लीला है। वही आदेश देंगे कि क्या किया जाय।

वैष्णव एक दिन प्रभु की पूजा के बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, 'प्रभु, आपके ही आशीर्वाद से मेरे पास इतना सारा दो नम्बर का धन इकट्ठा हो गया है। अब मैं इसका क्या करूँ? आप ही रास्ता बताइए। मैं इसका क्या करूँ? प्रभु कष्ट हरो सबका!'

तभी वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज उठी, 'अधम, माया जोड़ी है, तो माया का उपयोग भी सीख! तू एक बड़ा होटल खोल। आजकल होटल बहुत चल रहे हैं।'

वैष्णव ने प्रभु का आदेश मानकर एक विशाल होटल बनवाया। बहुत अच्छे कमरे। खूबसूरत बाथरूम। नीचे लाण्ड्री। नाई की दुकान। टैक्सियाँ। बाहर बढ़िया लॉन। ऊपर टेरेस गार्डन।

और वैष्णव ने खूब विज्ञापन करवाया।

कमरे का किराया तीस रुपया रखा।

फिर वैष्णव के सामने धर्म–संकट आया। भोजन कैसा होगा? उसने सलाहकारों से कहा, 'मैं वैष्णव हूँ। शुद्ध शाकाहारी भोजन कराऊँगा। शुद्ध घी की सब्जी, फल, दाल, रायता, पापड़ वैगरह'।

बड़े होटल का नाम सुनकर बड़े लोग आने लगे। बड़ी–बड़ी कम्पनियों के एक्जीक्यूटिव, बड़े अफसर और बड़े सेठ।

वैष्णव संतुष्ट हुआ।

पर फिर वैष्णव ने देखा कि होटल में ठहरने वाले कुछ असंतुष्ट हैं।

एक दिन एक कम्पनी का एक्जीक्यूटिव बड़े तैश में वैष्णव के पास आया। कहने लगा इतने महँगे होटल में हम क्या यह घास पत्ती खाने के लिए ठहरते हैं? यहाँ "नानवेज'' का इंतजाम क्यों नहीं है?

वैष्णव ने जवाब दिया, मैं वैष्णव हूँ। मैं गोश्त का इंतजाम अपने होटल में कैसे कर सकता हूँ ।

उस आदमी ने कहा, 'वैष्णव हो, तो ढाबा खोलो। आधुनिक होटल क्यों खोलते हो? तुम्हारे यहाँ आगे कोई नहीं ठहरेगा।'

वैष्णव ने कहा, 'यह धर्म–संकट की बात है। मैं प्रभु से पूछूँगा।'

उस आदमी ने कहा, 'हम भी बिजनेस में हैं। हम कोई धर्मात्मा नहीं हैं – न आप, न मैं। वैष्णव ने कहा, 'पर मुझे तो यह सब प्रभु विष्णु ने दिया है। मैं वैष्णव धर्म के प्रतिकूल कैसे जा सकता हूँ? मैं प्रभु के सामने नत–मस्तक होकर उनका आदेश लूंगा।'

दूसरे दिन वैष्णव साष्टांग विष्णु के सामने लेट गया। कहने लगा, 'प्रभु यह होटल बैठ जायगा। ठहरने वाले कहते हैं कि हमें यहाँ बहुत तकलीफ होती है। मैंने तो प्रभु, वैष्णव भोजन का प्रबंध किया है। पर वे मांस माँगते हैं। अब मैं क्या करूँ?'

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, गांधीजी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ है? गांधी का भजन है, 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर परायी जाणे रे।' तू इन होटल मे रहने वालों की पीर क्यों नहीं जानता? उन्हें इच्छानुसार खाना नहीं मिलता। इनकी पीर तू समझ और उस पीर को दूर कर।'

वैष्णव समझ गया।

उसने जल्दी ही गोश्त, मुर्गा, मछली का इंतजाम करवा दिया।

होटल के ग्राहक बढ़ने लगे।

मगर एक दिन फिर वही एक्जीक्यूटिव आया।

कहने लगा, हाँ, अब ठीक है। मांसाहार अच्छा मिलने लगा। पर एक बात है।

वैष्णव ने पूछा, 'क्या?'

उसने जवाब दिया, 'गोश्त के पचने की दवाई भी तो चाहिए।'

वैष्णव ने कहा, 'लवण भास्कर चूर्ण का इंतजाम करवा दूँ?'

एक्जीक्यूटिव ने माथा ठोंका।

कहने लगा, 'आप कुछ नहीं समझते। मेरा मतलब है – शराब। यहाँ बार खोलिए।'

वैष्णव सन्न रह गया। शराब यहाँ कैसे पी जायगी? मैं प्रभु के चरणामृत का प्रबंध तो कर सकता हूँ। पर मदिरा! हे राम!

दूसरे दिन वैष्णव ने फिर प्रभु से कहा, 'प्रभु, वे लोग मदिरा माँगते हैं। मैं आपका भक्त मदिरा कैसे पिला सकता हूँ?'

वैष्णव की पवित्र आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, तू क्या होटल बिठाना चाहता है? देवता सोमरस पीते थे। वही सोमरस यह मदिरा है। इसमें तेरा वैष्णव–धर्म कहाँ भंग होता है। सामवेद में 63 श्लोक सोमरस अर्थात् मदिरा की स्तुति में हैं। तुझे धर्म की समझ है या नहीं?'

वैष्णव समझ गया।

उसने होटल में 'बार' खोल दिया।

अब होटल ठाठ से चलने लगा। वैष्णव खुश था।

फिर एक दिन एक आदमी आया। कहने लगा, 'अब होटल ठीक है। शराब भी है। गोश्त भी है। मगर मरा हुआ गोश्त है। हमें जिंदा गोश्त भी चाहिए।'

वैष्णव ने पूछा, 'यह जिंदा गोश्त कैसा होता है?'

उसने कहा, 'कैबरे – जिसमें औरत नंगी होकर नाचती है।'

वैष्णव ने कहा, 'अरे, बाप रे!'

उस आदमी ने कहा, 'इसमें 'अरे बाप रे की कोई बात नहीं। सब बड़े होटलों में चलता है। यह सुविधा कर दो तो कमरों का किराया बढ़ा सकते हो।'

वैष्णव ने कहा, 'मैं कट्टर वैष्णव हूँ। मैं प्रभु से पूछूँगा।'

दूसरे दिन फिर वैष्णव प्रभु के चरणों में था। कहने लगा, 'प्रभु, वे लोग कहते हैं कि होटल में नाच भी होना चाहिए। आधा नंगा या पूरा नंगा।'

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, कृष्णवतार में मैंने गोपियों को नचाया था! चीर–हरण तक किया था। तुझे क्या संकोच है?'

प्रभु की आज्ञा से वैष्णव ने 'कैबरे' भी चालू कर दिया।

अब कमरे भरे रहते थे – शराब, गोश्त और कैबरे।

वैष्णव बहुत खुश था। प्रभु की कृपा से होटल भरा रहता था।

कुछ दिनों बाद एक ग्राहक ने 'बेयरा' से कहा, 'इधर कुछ और भी मिलता है?'

बेयरा ने पूछा, और क्या साब?'

ग्राहक ने कहा, 'अरे यही मन बदलाने की कुछ। कोई ऊँचे किस्म का माल मिले तो लाओ।'

बेयरा ने कहा, 'नहीं साब, इस होटल में यह नहीं चलता।'

ग्राहक वैष्णव के पास गया। बोला, 'इस होटल में कौन ठहरेगा?'

वैष्णव ने कहा, 'कैबरे तो है साहब!'

ग्राहक ने कहा, 'कैबरे तो दूर का होता है। पास का चाहिए, गर्म माल, कमरे में।'

वैष्णव फिर धर्म–संकट में पड़ गया।

दूसरे दिन वैष्णव फिर प्रभु की सेवा में गया। प्रार्थना की, 'कृपा–निधान, ग्राहक लोग नारी माँगते हैं– पाप की खान! मैं तो इस पाप की खान से जहाँ तक बनता है, दूर रहता हूँ। अब मैं क्या करूँ?'

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, यह तो प्रकृति और पुरुष का संयोग है। इसमें क्या पाप और पुण्य! चलने दे।'

वैष्णव ने बेयरों से कहा, 'चुपचाप इंतजाम कर दिया करो। जरा पुलिस से बचकर। 25 फीसदी भगवान की भेंट ले लिया करो।'

अब वैष्णव का होटल खूब चलने लगा।

शराब, गोश्त, कैबरे और औरत।

वैष्णव धर्म बराबर निभ रहा है।

इधर यह भी चल रहा है।

वैष्णव ने धर्म को धंधो से खूब जोड़ा है।

बोध प्रश्न

आपने व्यंग्य निबंध पढ़ लिया होगा। अब निम्निलिखित प्रश्नों का सही उत्तर नीचे दिए गए कोष्ठक में उपसंख्या लिखकर दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

1) वैष्णव करोड़पति कैसे बन गया था?

   क) अपनी कड़ी मेहनत से।

   ख) भगवान विष्णु की नियमित पूजा से।

   ग) सूदखोरी और कालाबाजारी से।

   घ) अपने अच्छे भाग्य से। ( )

2) लेखक ने 'धर्म को धंधे से जोड़ने' से किस आशय की अभिव्यक्ति की है?

   क) धंधे को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए।

   ख) धंधे में अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए।

ग) धंधे को बढ़ाने में धर्म का दुरुपयोग करने के लिए।

घ) धार्मिक प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए। ( )

3) जब कर्ज लेने वाले आते हैं तो वैष्णव कौन–सा रूप धारण करता है?

क) गद्दी का मालिक बन जाता है।

ख) भगवान विष्णु का मुनीम बन जाता है।

ग) एक ईमानदार व्यवसाई बन जाता है।

घ) धर्मात्मा व्यक्ति बन जाता है। ( )

4) अपने पास नम्बर दो का बहुत अधिक पैसा एकत्र हो जाने पर उसे सफेद (नं० 1 का) करने की वैष्णव की चिन्ता के समाधान के लिए भगवान विष्णु ने क्या आदेश दिया?

क) गरीब दुखियों की सहायता करने का।

ख) एक बड़ा होटल खोलने का।

ग) पुण्य–कार्य के लिए मंदिर बनवाने का।

घ) धर्मशाला बनवाने का। ( )

2.3 निबंध का सार

इस निबंध को पढ़कर आपने समझ लिया होगा कि इसमें आरंभ से अंत तक एक करोड़पति ढोंगी वैष्णव (विष्णु भगवान के भक्त) के लगातार अधःपतन का व्यंग्य–चित्र प्रस्तुत किया गया है। करोड़पति वैष्णव ने भगवान विष्णु का एक भव्य मंदिर बनवाकर अपनी सारी जायदाद उनके नाम कर दी है। इसलिए सूदखोरी से लेकर कालाबाजारी के सारे काम उन्हीं के नाम पर होते हैं। वैष्णव नियमित रूप से दो घंटे विष्णु भगवान की पूजा करता है। पूजा के बाद मसनद लगे गद्दीदार बिस्तरे वाली बैठक में आसन लगाकर वह धर्म से धंधे को जोड़ने की साधना करता है। धर्म से धंधे को जोड़ने को 'योग' की संज्ञा देकर लेखक ने धर्म की आड़ में भ्रष्टाचार करने वाले व्यवसायियों पर करारा व्यंग्य किया है। वैष्णव के पास जब कर्ज लेने वाले आते हैं तो वह भगवान विष्णु का मुनीम बन जाता है। कर्ज लेने वाले से खाते में यह दर्ज करवाया जाता है – 'दस्तावेज लिख दी रामलाल वल्द श्यामलाल ने भगवान विष्णु वल्द नामालूम को...। 'विष्णु भगवान की वल्दियत इसलिए नहीं दर्ज की जाती क्योंकि उनके पिता का नाम मालूम नहीं है। मालूम होने पर ही वल्दियत ठीक होगी। इस कथन के पीछे भी धार्मिक पाखंड पर एक गहरा व्यंग्य छिपा हुआ है।

अपनी काली करतूत के कारण वैष्णव के पास काफी पैसा एकत्र हो गया है। इन पैसों से वह कई एजेंसियाँ लेकर बहुत बड़ा आढ़ती (स्टाकिस्ट) बन गया है। माल दबाकर मनमानी चोरबाजारी को भी वह प्रभु की कृपा ही मानता है। इस पर टिप्पणी करते हुए लेखक कहता है कि उसके प्रभु भी दो नम्बरी बन गए हैं। नम्बर दो के पैसे को नंबर एक का बनाने के लिए वैष्णव प्रभु से प्रार्थना करता है कि 'अब मैं इसका क्या करूँ?... ... प्रभु कष्ट हरो सबका।' वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज उठती है कि 'अधम, माया जोड़ी है तो माया का उपयोग भी सीख! तू एक बड़ा होटल खोल ले।' वैष्णव इसे प्रभु का आदेश मानकर एक शानदार होटल बनवाता है। आधुनिक सुख–सुविधाओं से पूर्ण

सुंदर कमरे, बाथरूम और नीचे लांड्री, नाई की दूकान, टैक्सियों की व्यवस्था के साथ ही बाहर खूबसूरत लम्बे–चौड़े लॉन से होटल की शान में कई गुना वृद्धि हो जाती है।

अपनी तथाकथित धार्मिक प्रकृति के कारण वैष्णव होटल में विशुद्ध शाकाहारी भोजन की व्यवस्था करता है, जिसमें शुद्ध घी की सब्जी, दाल, फल, रायता, पापड़ आदि सम्मिलित हैं। होटल का नाम चल पड़ता है। बड़ी–बड़ी कपंनियों के कार्यकारी अधिकारी, ऊँचे दर्जे के सरकारी अधिकारी, बड़े–बड़े सेठ आने लगते हैं। तीस रुपए प्रति कमरे किराया और खान पान की व्यवस्था की आमदनी से वैष्णव संतुष्ट है। लेकिन होटल में ठहरने वाले कुछ बड़े लोग अब भी असंतुष्ट हैं। एक बड़ा कार्यकारी अधिकारी तैश में आकर वैष्णव को फटकारता है कि इतने महँगे होटल में क्या हम घास–पात खाने के लिए ठरहते हैं? यहाँ 'नान वेज' की व्यवस्था क्यों नहीं? वैष्णव के सामने धर्म–संकट उपस्थित हो जाता है। इस संकट से भक्ति के लिए वह प्रभु विष्णु के चरणों में लेट कर प्रार्थना करता है कि यह होटल बैठ जाएगा। ठहरने वालों को यहाँ बड़ी तकलीफ होती है। वे शुद्ध वैष्णव भोजन की जगह मांस माँगते हैं। मैं क्या करूँ? वैष्णव की शुद्ध आत्मा से सधी हुई आवाज आती है, 'गांधी जी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ है। उनका प्रसिद्ध भजन है, वैष्णवजन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे'। तू होटल में रहने वालों की 'पीर' समझ और उसे दूर कर। इससे बड़ा वैष्णव धर्म क्या होगा? प्रभु के आदेश से वैष्णव ने जल्दी ही गोश्त, मुर्गा, मछली आदि की व्यवस्था करवा दी। ग्राहक बढ़ने लगे। लेकिन एक दिन फिर उसी कार्यकारी अधिकारी ने शिकायत की कि मांसाहार की व्यवस्था तो ठीक है, लेकिन उसके पचने का भी इंतजाम होना चाहिए। वैष्णव द्वारा लवण भास्कर चूर्ण के इंतजाम की बात सुनकर कार्यकारी अधिकरी ने माथा ठोंक लिया। उसकी ना समझी पर तरस खाते हुए कहा, 'मेरा मतलब शराब से है। यहाँ 'बार' खोलिए। यह सुनकर वैष्णव सन्न रह गया। यह दूसरा गंभीर संकट था। वैष्णव ने प्रभु के चरणों में गुहार की कि आपके चरणामृत की जगह मैं मदिरा कैसे पिला सकता हूँ? उसकी शुद्ध आत्मा से आवाज आयी कि 'मूर्ख, तू क्या होटल बिठाना चाहता है? देवता सोमरस पीते थे। वही सोमरस मदिरा है। इसमें तेरा वैष्णव धर्म कहाँ भंग होता है। सामवेद के 63 श्लोक सोमरस अर्थात् मदिरा की स्तुति में हैं। तुझे धर्म की समझ है या नहीं? धर्मात्मा वैष्णव की समझ में आ गया। होटल में 'बार' खोल दिया गया। होटल को ठाट से चलते देख वैष्णव खुश हो गया।

होटल–व्यवसाय केवल 'बार' तक ही सीमित नहीं रहता। फिर 'मरे हुए गोश्त' की जगह 'जिंदा गोश्त' अर्थात 'कैबरे' की बात उठी, जिसमें औरतों का नग्न नृत्य होता है। बहुत सोच–समझ के बाद वैष्णव ने प्रभु के चरणों में नतमस्तक होकर अपनी समस्या रखी। उसकी शुद्ध आत्मा से आवाज आयी कि मूर्ख कृष्णावतार में मैंने गोपियों को नचाया था, उनका चीरहरण किया था। तुझे क्या संकोच है। प्रभु के आदेश से 'कैबरे' भी शुरू हो गया। शराब, गोश्त और कैबरे की व्यवस्था से होटल के कमरों का किराया काफी बढ़ गया, सभी कमरे भरे रहने लगे। लेकिन आधुनिक होटल की मर्यादा केवल कैबरे तक ही सीमित नहीं है। 'कैबरे' के बाद नारी देह की माँग आयी। इस धर्म संकट के समाधान के लिए वैष्णव ने पुनः प्रभु चरणों का सहारा लिया। उसकी शुद्ध आत्मा से आवाज आई, 'मूर्ख यह तो प्रकृति और पुरुष का संयोग है। इसमें क्या पाप और पुण्य! चलने दे।' प्रभु के इस आदेश पर वैष्णव ने बेयरों से कह दिया कि पुलिस से बचकर चुपचाप इंतजाम कर दिया करो। भगवान की भेंट का पच्चीस प्रतिशत ले लिया करो। वैष्णव पुनः सफेद से काले धंधे पर आ गया। शराब, गोश्त,

कैबरे और औरत के योग से होटल खूब चलने लगा। वैष्णव धर्म भी बरकरार रहा इस प्रकार वैष्णव ने धर्म को धंधे से अच्छी तरह जोड़ कर अपनी 'योग साधना' का भरपूर परिचय दिया। इस प्रकार निबंध में आदि से अंत तक व्यवसायी वर्ग के प्रतिनिधि वैष्णव के धार्मिक ढोंग और प्रपंच का रस लेते हुए भंडाफोड़ किया गया है।

2.4 संदर्भ सहित व्याख्या

यहाँ निबंध के कुछ महत्वपूर्ण अंशों की ससंदर्भ व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है, जिनसे आपको निबंध समझने और उसकी व्याख्या करने में सहायता मिलेगी।

उद्धरण 1:

'वैष्णव करोड़पति है। भगवान विष्णु का मंदिर है। जायदाद लगी है। भगवान सूदखोरी करते हैं। ब्याज से कर्ज देते हैं। वैष्णव दो घंटे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, फिर गादी–तकिए वाली बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते हैं। धर्म धंधे से जुड़ जाए, इसी को 'योग' कहते हैं। कर्ज लेने वाले आते हैं। विष्णु भगवान के मुनीम हो जाते हैं।'

संदर्भः प्रस्तुत उद्धरण स्वर्गीय हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'वैष्णव की फिसलन' से लिया गया है। निबंध की इन आरंभिक पंक्तियों में लेखक ने सूदखोर–व्यापारी, करोड़ों के मालिक तथाकथित वैष्णव (विष्णु भगवान का भक्त) का टूटे–फूटे अधूरे वाक्यों में अत्यंत मार्मिक व्यंग्य–चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्याः लाखों–करोड़ों के मालिक विष्णु भक्त व्यवसायी ने विष्णु भगवान का भव्य मंदिर बनवा कर बेईमानी से अर्जित की गई अपनी सारी सम्पत्ति मंदिर के नाम कर दी है। इसलिए उसका सारा कारोबार भगवान करते हैं। सूदखोरी या ब्याज पर पैसे उधार देने का कार्य वैष्णव ने भगवान के जिम्मे कर दिया है। वह तो उपासना गृह में दो घंटे तक भगवान की निष्ठापूर्वक (झूठी या मक्कारी से भरी) पूजा करने के बाद तकिए वाली सजी बैठक (गद्दी) में आकर धर्म को धंधे से जोड़ने मात्र का कार्य करता है। इस रूप में वह परम साधक बन जाता है। धर्म धंधे से जुड़ सके, इसी को वह 'योग' मानता है। इस योग–साधना में वह परम निपुण है। जब ब्याज पर उधार लेने वाले उसकी गद्दी पर आते हैं तो वह भगवान विष्णु का मुनीम बनकर काम करता है। कहने का तात्पर्य यह कि वह अपनी सम्पत्ति का मालिक न रहकर भगवान का अदना सेवक बन कर रहता है।

विशेषः

1) छोटे–छोटे, प्रायः अधूरे वाक्यों का प्रयोग। कहीं कर्ता तो कहीं क्रिया गायब है। फिर भी व्यंजना से भरपूर भाषा का प्रयोग इस उद्धरण में हुआ है।

2) पूरे निबंध को सही ढंग से समझने के लिए यह उद्धरण बीज या कुंजी का काम करता है।

3) धर्म को धंधे से जोड़ने को 'योग' की संज्ञा देकर लेखक ने भ्रष्ट व्यवसायियों की अत्यंत घिनौनी मनोवृत्ति पर करारी चोट की है।

उद्धरण 2:

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, गांधी जी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ? गांधी जी का भजन है, 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीर परायी जाणे रे।' तू इस होटल में रहने वालों की पीर क्यों नहीं जानता? उन्हें इच्छानुसार खाना नहीं मिलता। इनकी पीर तू समझ और उस पीर को दूर कर।''

संदर्भः यह गद्यांश हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'वैष्णव की फिसलन' से लिया गया है। वैष्णव के आलीशान होटल में मांसाहार की व्यवस्था न होने के कारण उसमें ठहरने वाले उच्च अधिकारी और बड़े लोग असंतुष्ट हैं। एक उच्च अधिकारी तैश में आकर वैष्णव को फटकारने लगता है कि इतने बड़े होटल में मांसाहार का इंतजाम क्यों नहीं है? वैष्णव अपने धर्म–संकट की बात कहकर इस पाप–कर्म से छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन उच्च अधिकारी के दबाव से वह विष्णु भगवान के चरणों में लेटकर प्रार्थना करता है कि होटल में ठहरने वालों की तकलीफ के विषय में वह क्या करे? उसकी शुद्ध आत्मा के रूप में भगवान विष्णु जो समाधानपूर्ण आदेश देते हैं, उसे अत्यंत व्यंग्यात्मक ढंग से इस उद्धरण में प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः अपनी प्रार्थना के उत्तर में वैष्णव की शुद्ध आत्मा (जो व्यंग्य में निहित विपरीत लक्षण से अत्यंत मलिन और स्वार्थलिप्त है) से आवाज आती है कि तुम मूर्ख हो। गांधी जी से महान वैष्णव इस युग में पैदा ही नहीं हुआ। उनके प्रसिद्ध भजन 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे'– का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उसकी तथाकथित शुद्ध आत्मा का आदेश होता है कि 'तू होटल मे ठहरने वालों की पीड़ा को क्यों नहीं समझता?' उन्हें इच्छानुसार भोजन नहीं मिल पा रहा है। उनकी इस पीड़ा को तू समझ और उसे तुरंत दूर कर। इस तरह अपनी शुद्ध आत्मा अर्थात् स्वार्थ के वशीभूत मलिन आत्मा की आवाज को विष्णु भगवान का आदेश मानकर वह होटल में मांसाहार के लिए मांस, मुर्गा, मछली आदि की तुरंत व्यवस्था कर देता है। अतः धर्म की झूठी आड़ में उसका होटल अच्छी तरह चलने लगता है।

विशेषः

1) यहाँ 'वैष्णव की शुद्ध आत्मा' पद मलिन और स्वार्थ लिप्त आत्मा का अर्थ देता है।

2) इस उद्धरण में नरसी मेहता द्वारा रचित और लोकमंगल के महान साधक महात्मा गांधी के प्रिय भक्तिगीत का वैष्णव द्वारा अपने हित में दुरुपयोग किया गया है। इसके माध्यम से लेखक ने सिद्ध किया है कि मानवता की महान–से–महान उपलब्धियों की भी व्यावसायिक वर्ग आड़ लेकर अपने कुकृत्य को सफलतापूर्वक छिपा सकता है।

अभ्यास

1) निम्नलिखित गद्यांश की नीचे रिक्त स्थान में संदर्भ सहित व्याख्या करें –

"वैष्णव की पवित्र आत्मा से आवाज आयी, 'मूर्ख, तू क्या होटल बिठाना चाहता है! देवता सोमरस पीते थे। वही सोमरस यह मदिरा है। इसमें तेरा वैष्णव–धर्म कहाँ भंग होता है। सामवेद में 63 श्लोक सोमरस अर्थात् मदिरा की स्तुति में है। तुझे धर्म की समझ है या नहीं?"

संदर्भः

.....

.....

.....

.....

.....

.....

व्याख्याः

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 निबंध का कथ्य या उसकी अंतर्वस्तु

आपने इस निबंध के साथ ही उसके सार को भी पढ़ लिया है। सार को पढ़ते हुए आपको लगा होगा कि निबंध में कही गयी बहुत सी बातों में काफी कुछ जोड़कर लिखना पड़ा है और कई बातें छूट भी गयी हैं। बावजूद इसके सार लम्बा हो गया है, जो सार लेखन की प्रकृति और उसके स्वरूप से आपको भिन्न भी लग सकता है। इसका प्रमुख कारण है, रचना में प्रयुक्त व्यंग्य–योजना। अतः अधिकांशतः जो कहा गया है, उसका अर्थ विपरीत लक्षण से उलटा हो जाता है, अर्थात इस निबंध में 'अभिधार्थ की फिसलन' में इस तथ्य को आदि से अंत तक देखा जा सकता है। अपने कथ्य को परसाई जी ने इसी रूप में प्रस्तुत किया है।

व्यवसायियों द्वारा धर्म को अपने धंधे से जोड़ने की प्रवृत्ति का पर्दाफाश करना इस निबंध का मुख्य उद्देश्य है। करोड़पति वैष्णव ने जिस प्रकार स्वनिर्मित विष्णु मंदिर के नाम अपनी सारी जायदाद लगा दी है, उसी प्रकार अपने कुकृत्यों को भी उन्हीं के नाम कर वह अपने को पाप मुक्त मान लेता है। लेकिन इस निबंध में वैष्णव एक व्यक्ति मात्र न होकर समूचे व्यावसायिक और औद्योगिक वर्ग का प्रतिनिधि बन कर आया है। वर्तमान युग में यह ऐसा वर्ग है, जिसकी तिजोरी में धन ही नहीं, वरन धर्म, राजनीति, अर्थनीति और प्रतिष्ठा भी बंद हो जाती है। यहाँ तक कि संस्कृति एवं संस्कृति कर्मियों, कला एवं कलाकारों को भी वह अपनी तिजोरी के चक्कर में फँसाए रखने का प्रयास करता है। एक जागरूक व्यक्ति के रूप में परसाई जी ने इन सभी स्थितियों पर गहन चिंतन किया है। एक रचनाकार या लेखक के रूप में उन्होंने पूरी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ इन स्थितियों की वास्तविकताओं को व्यंग्य के सहारे उजागर करते हुए पाठक को जागरूक बनाकर सामाजिक परिवर्तन में अपनी भूमिका निभाई है। 'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक संग्रह के 'लेखकीय' में परसाई जी ने आरंभ में ही लिखा

है कि 'व्यंग्य की प्रतिष्ठा इस बीच साहित्य में काफी बढ़ी है – वह शूद्र से क्षत्रिय मान लिया गया है। व्यंग्य, साहित्य में ब्राह्मण बनना भी नहीं चाहता क्योंकि वह कीर्तन करता है।'

परसाई जी का उपर्युक्त कथन उनके व्यंग्य–प्रयोग की दिशा और दशा – दोनों का संकेत करता है। राजनीतिक जोड़–तोड़ हो या साहित्यिक जोड़–तोड़, प्रशासनिक भ्रष्टाचार हो चाहे व्यावसायिक औद्योगिक लूट–खसोट – सर्वत्र उन्होंने व्यंग्य का एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़कर इसे प्रायः मनोरंजन, हँसने–हँसाने का साधन माना जाता रहा है। इसलिए साहित्य के क्षेत्र में वह हाशिए की विधा ही बनी हुई थी लेकिन कबीर, भारतेंदु, निराला, नागार्जुन से लेकर परसाई तक व्यंग्य की एक स्वस्थ परंपरा ने उसे हाशिए से उठाकर केंद्र में ला दिया है। कबीर की भाँति निर्मम प्रहार परसाई के व्यंग्य की प्रमुख विशेषता है। 'वैष्णव की फिसलन' संग्रह की अंतिम पंक्तियों में कबीर का गौरवगान करते हुए परसाई जी ने लिखा है, 'कबीर, जिसने अपनी जमीन तोड़ी, भाषा तोड़ा और नयी ताकतवर भाषा गढ़ी, सड़ी–गली मान्यता को आग लगाई, जाति और धर्म के भेद को लात मारी, सारे पाखंड का पर्दाफाश किया, जो पलीता लेकर कुसंस्कारों को जलाने के लिए घूमा करता था। वह योद्धा कवि था।' (पृ.112)

वस्तुतः हरिशंकर परसाई भी उसी तरह के योद्धा साहित्यकार रहे हैं। शोषित–दलित और उत्पीडित वर्ग का पक्ष लेकर भ्रष्टाचार में लिप्त उच्च शोषक वर्ग के विरुद्ध उन्होंने कठोर संघर्ष किया है। आपके गहन अध्ययन के लिए निर्धारित व्यंग्य निबंध में समाजव्यापी विकृति के एक पक्ष 'धर्म और धंधे' को विषय बनाकर लोभ–लाभ की प्रवृत्ति से संचालित व्यवसाय की वास्तविकता का पर्दाफाश करने के साथ ही उन्होंने धर्म की असामाजिक भूमिका पर भी कटाक्ष किया है। यही निबंध की मूल अंतर्वस्तु है, जिसे आप निबंध का कथ्य भी कह सकते हैं।

2.6 चरित्र–विधान

प्रस्तुत निबंध का चरित्र–विधान भी उसकी अंतर्वस्तु को समझने में आपकी पर्याप्त सहायता कर सकता है। इस निबंध से करोड़पति वैष्णव मात्र व्यक्ति न होकर एक अच्छे–खासे व्यावसायिक समुदाय का प्रतिनिधि है। उसी के क्रिया–कलाप से निबंध का आरंभ और अंत होता है। धर्म का सहारा लेकर विभिन्न हथकंडों से धन एकत्र कर वह एक बड़े होटल का निर्माण करता है। इसका एक बहुत ही रोचक चित्र व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रक्रिया में तथाकथित धर्म और उसके प्रमुख आधार विष्णु भगवान का भी सांकेतिक ढंग से मखौल उड़ाया गया है। वे स्वयं कर्ज देते हैं, ब्याज लेते हैं और दो नंबर का धंधा करते हैं। क्योंकि वैष्णव (धूर्त व्यवसायियों का प्रतिनिधि) तो उनका मुनीम मात्र है। इस तरह की मान्यता व्यवसाइयों की क्रूरता को उजागर करती है।

होटल के विकास–विस्तार में उपभोक्तावाद और माँग तथा पूर्ति के अमानवीय बाजार–नियम की क्रूरता को भी धर्म और शुद्ध आत्मा के झीने पर्दे से ढकने का प्रयास कर वैष्णव अपनी आत्मा की मलिनता को ही उजागर करता है। क्योंकि यह झीना पर्दा व्यंग्यकार की तीखी नजरों से छिप नहीं पाता। शुद्ध शाकाहारी भोजन की व्यवस्था का दम भरने वाला वैष्णव लोभ–लाभ की भावना से प्रेरित होकर क्रमशः मांस, मदिरा, कैबरे और अंत में औरत के शरीर के धंधे तक उतर आता है। यहाँ सब कुछ

उसकी तथाकथित शुद्ध आत्मा, अर्थात् भगवान विष्णु के आदेश से धार्मिक कर्म के रूप में होता है। कहने का तात्पर्य यह कि ऐसे लोग ही शुद्ध आत्मा, अंतरात्मा, भगवान की लीला, भगवान की मर्जी आदि का ढोल पीटकर अपने कुकृत्यों को भी गौरवान्वित करते हैं। लोभ–लाभ के वशीभूत ऐसे लोग बुरे–से–बुरे कार्य करने के बाद भी पश्चाताप के लिए प्रेरित न होकर अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध करने लग जाते हैं। इसे ही निबंध की मूल अंतर्वस्तु या कथ्य कहा जा सकता है, जो वैष्णव के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत हुई है।

2.7 लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

निबंध–रचना में, विशेषकर व्यंग्यात्मक निबंधों में साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक अवकाश रहता है। हरिशंकर परसाई के संदर्भ में यह बात और अधिक मुखर होकर सामने आती हैं। उनकी अधिकांश व्यंग्यात्मक रचनाएँ एक साहित्यिक विधा की पूर्वनिर्धारित सीमाओं में बँधी नहीं रहती। कभी वे निबंध से कहानी की सीमा में पहुँच जाती हैं, तो कभी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और प्रशासनिक टिप्पणी का आभास देने लगती हैं। फलस्वरूप किसी भी चुने हुए विषय पर वे विषय का परिचय, विषय की व्याख्या या उसका तथ्यात्मक लेखा–जोखा न देकर व्यंग्य के सहारे अपनी आलोचनात्मक दृष्टि का ही अधिक परिचय देते हैं।

'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक निबंध प्रायः निबंध की सीमा का उल्लंघन कर कहानी के क्षेत्र में प्रवेश करते हुए अंततः एक आलोचनात्मक टिप्पणी का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार 'भोला राम का जीव' प्रशासनिक लाल फीताशाही की कहानी मात्र न रहकर एक समाजनिष्ठ व्यक्ति की प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर टिप्पणी भी बन जाती है। आपके लिए निर्धारित संग्रह का कहानी नुमा निबंध 'राजनीति का बँटवारा', एक समस्या केंद्रित निबंध 'अकाल–उत्सव', 'रामचरित मानस' की चौथी शती मनाए जाने के अवसर पर 'कबीर समारोह क्यों नहीं' शीर्षक लेख आदि बहुत सी रचनाएँ अपनी विधागत विशेषताएँ छोड़कर एक नई विधा का आभास देती हैं। यहाँ आप यह ध्यान रखें कि साहित्यिक विधाओं की मर्यादा का ही उल्लंघन परसाई के रचनाशील व्यक्तित्व की विशेषता नहीं है। उन्होंने अपने युग की सड़ी–गली मान्यता और दीमक लगी सभी मर्यादाओं के प्रति सार्थक विद्रोह किया है। यह विद्रोह–भाव ही उनके व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषता है, जो उनकी अधिकांश रचनाओं में अत्यंत मुखर होकर व्यक्त हुआ है। आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित निबंध 'वैष्णव की फिसलन' भी उपर्युक्त तथ्य का प्रमाण है। विष्णु भगवान को सूदखोर, कालाबाजारी या नंबर दो का धंधा करने वाला बताना विरले लोगों का ही काम है। किसी भी स्थिति में अन्याय और कुरीतियों से समझौता न करने वाले परसाई जी का अक्खड़ व्यक्तित्व उनकी सभी रचनाओं में उजागर हुआ है। उनकी लड़ाई जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वस्थ मूल्यों की रक्षा के लिए रही है। इस प्रक्रिया में वे जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त लोक–विरोधी तत्वों पर गिन–गिन कर तीखा प्रहार करते रहे हैं। इस प्रकार वे भारत की बहुसंख्यक बदहाल जनता के पक्ष में संघर्ष करने वाले अप्रतिम योद्धा सिद्ध होते हैं। यह व्यक्तित्व उनके निबंध में पूरी तरह उजागर हुआ है।

बोध प्रश्न

अब तक आपने निर्धारित निबंध और उसकी बहुत सी विशेषताओं का अध्ययन कर लिया होगा। इनसे जुड़े हुए कुछ प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं। विश्वास है, उनका समुचित उत्तर आप दे सकेंगे। उत्तर देने के बाद इकाई में दिए गए उत्तरों से मिलाकर उनकी जाँच कर लें।

5) 'व्यंग्य हाशिए से केन्द्र में आ गया है'– इस कथन से क्या तात्पर्य है? सही उत्तर को क्रम संख्या के माध्यम से कोष्ठक में निर्दिष्ट करें –

   क) व्यंग्य समाज में हाशिए के लोगों के साथ भेद–भाव करता है।

   ख) निर्बल लोगों का शोषण करता है।

   ग) अन्याय के विरुद्ध पीड़ित लोगों की रक्षा करता है।

   घ) वह साहित्य में उपेक्षित न रहकर प्रतिष्ठा का अधिकारी हो गया है। ( )

6) निबंध में 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे' – भजन का उपयोग किस कार्य के लिए किया गया है? सही उत्तर को कोष्ठक में निर्दिष्ट करें –

   क) सबकी पीड़ा को दूर करने के लिए।

   ख) दीन–दुखियों की भलाई के लिए।

   ग) होटल में ठहरने वाले बड़े लोगों की परेशानी को दूर करने के लिए मांसाहार की व्यवस्था के लिए।

   घ) लोकमंगल के कार्य के लिए। ( )

7) निबंध में कृष्णलीला के संदर्भ में गोपियों के नृत्य और चीरहरण के प्रसंग का उल्लेख किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया है?

   क) धार्मिक भावना जगाने के लिए।

   ख) लोकरंजन के लिए।

   ग) होटल में कैबरे की व्यवस्था के लिए।

   घ) सांस्कृतिक विरासत से परिचय कराने के लिए। ( )

8) पठित सामग्री के आधार पर बताएँ कि समाज में कौन से लोग हैं, जो शुद्ध आत्मा, अंतरात्मा, भगवान की लीला, भगवान की मर्जी का ढोल अधिक पीटते हैं। निम्नलिखित में से सही उत्तर का कोष्ठक में निर्देश करें––

   क) धार्मिक प्रवृत्ति के लोग।

   ख) नैतिक मूल्यों की शिक्षा देने वाले लोग।

   ग) धर्म को धंधे से जोड़ने वाले व्यावसायिक लोग।

   घ) समाज–सुधार का कार्य करने वाले लोग। ( )

9) हरिशंकर परसाई के निबंधों में उनकी कौन–सी दृष्टि सर्वाधिक प्रमुखता से व्यक्त हुई है? सही उत्तर का कोष्ठक में निर्देश करें –

   क) समन्वयवादी दृष्टि।

ख) आलोचनात्मक प्रहार की दृष्टि।

ग) नैतिकतावादी दृष्टि।

घ) सामाजिक व्यवहार कुशलता की दृष्टि। ( )

2.8 संरचना–शिल्प

आपने इस निबंध को पढ़ने तथा इसकी बहुत सारी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के बाद इसकी रचना–पद्धति और प्रकृति में एक नयापन देखा होगा। यहाँ निबंध के, विशेषकर व्यंग्यात्मक निबंध के रचना–शिल्प पर विचार करते हुए हम उपर्युक्त नयेपन की ओर भी संकेत करते चलेंगे। जहाँ तक निबंध के शाब्दिक अर्थ का संबंध है, वह एक बँधी हुई और अत्यंत सुगठित रचना का संकेतक है। (निः= विशेष, बंध–बँधा या बँधी हुई) अर्थात् विशेष रूप से बँधी हुई या सुगठित रचना। लेकिन निबंध–रचना की निर्धारित सीमा का त्याग कर परसाई कहानी के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते हैं। अतः 'वैष्णव की फिसलन' में चरित्र–विधान और संवाद योजना के कारण कहानी का गुण भी आ जाता है।

निबंध के संबंध में जो दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य है, वह उसकी भाषा है। निबंध को गद्य की कसौटी माना गया है। निबंधकार विषय के विवेचन–विश्लेषण में पूर्ण स्वतंत्रता की छूट ले सकता है, फिर भी भाषा–प्रयोग के संबंध में अधिक स्वतंत्रता का उपयोग वह नहीं कर सकता। लेकिन इस निबंध के आरंभ में ही आप देखेंगे कि खंडित और अधूरे वाक्यों, कर्ता–क्रिया संबंधी नियमों की अवहेलना द्वारा भाषा संबंधी सीमा को भी परसाई जी ने तोड़ा है। इस प्रकार वे निबंध के शाब्दिक अर्थ, उसकी शिल्पगत और भाषागत मान्यताओं की सीमा को लांघते हुए दिखायी देते हैं। इस दृष्टि से उनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे महान विषयनिष्ठ निबंधकार और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे महान व्यक्तिनिष्ठ और ललित निबंधकार से पर्याप्त भिन्नता मिलेगी। इस भिन्नता के बावजूद हिंदी के जातीय गद्य, खड़ी बोली की सम्पूर्ण क्षमता, ऊर्जा और जुझारुपन, प्रसंगानुकूल शब्दों का खुला चयन, अपनी पूरी विविधता के साथ परसाई के यहाँ मिलेगा। अन्य निबंधकारों से भिन्नता का प्रमुख कारण है, परसाई जी की भाषा–शैली पर व्यंग्यात्मकता का अत्यधिक दबाव। इसे आप उनकी भाषा–शैली की अलग–अलग विशेषताओं के विवेचन–विश्लेषण में आसानी से समझ सकते हैं।

2.8.1 शैली

हरिशंकर परसाई की शैली पर विचार करने के लिए आपको भाव प्रधान और विचार प्रधान तथा व्यक्तिनिष्ठ और विषयनिष्ठ जैसी निबंध की कोटियों या श्रेणियों को छोड़ना पड़ेगा।

इसके साथ ही निबंध के लिए प्रचलित भावात्मक, वर्णनात्मक और विवेचनात्मक शैली जैसी शैलीगत सीमाओं के बंधनों से भी मुक्ति प्राप्त करनी होगी। परसाई के निबंधों को अगर किसी शैली के अंतर्गत समाविष्ट करना है तो उसे व्यंग्यात्मक शैली माना जा सकता है। वर्णन–विवरण, भावावेश और व्याख्या – तीनों से वे अपने को बचाते हैं। उदाहरण के लिए निबंध की आरंभिक पंक्तियाँ देखें – 'वैष्णव करोड़पति है। भगवान विष्णु का मंदिर। जायदाद लगी है। भगवान सूदखोरी करते हैं। ब्याज से कर्ज देते हैं।' टूटे–फूटे अधूरे वाक्य, कहीं कर्ता गायब तो कहीं क्रिया नदारद। आगे इसी खंड की इकाई 4 में 'जीने की कला' शीर्षक महादेवी वर्मा के निबंध में आपको ऐसा

अधूरापन नहीं मिलेगा लेकिन परसाई जी की शैली का यह अधूरापन ही उनकी व्यंग्यात्मक शैली की प्रमुख शक्ति बन जाता है।

परसाई की व्यंग्यात्मक शैली की अपनी निजी विशेषता है, जो कबीर से अधिक मिलती है। वे कबीर की भाँति अपने व्यंग्य वाक्यों का प्रयोग विनोद के लिए नहीं, वरन् शत्रु को तिलमिला देने के लिए करते हैं। शत्रु भाव से किए जाने वाले व्यंग्यों में वे प्रायः निर्ममता का परिचय देते हैं, लेकिन ऐसी सधी हुई शैली में कि व्यंग्य का पात्र तिलमिलाकर भी चूँ या हाय न कर सके। आपके गहन अध्ययन के लिए निर्धारित इस निबंध में परसाई का सारा आक्रोश तथाकथित विष्णुभक्त व्यवसायियों पर ही है, लेकिन यहाँ आक्रोश विष्णु को आधार बनाने के कारण परोक्ष हो गया है। परसाई ने शत्रु–भाव से व्यंग्य प्रहार के साथ ही मित्र–भाव से भी व्यंग्य किया है। साधारण शोषित–उत्पीडित जनता भी अपनी रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और अज्ञान के कारण उनके व्यंग्य का लक्ष्य बनी है। लेकिन ऐसे प्रसंगों में वे पूरी सहानुभूति के साथ मित्र–भाव से व्यंग्य करते हैं। इस प्रकार परसाई की व्यंग्य–शैली की अन्यान्य विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी है कि उसके प्रयोग में शत्रु और मित्र के बीच फर्क को हमेशा ध्यान में रखा गया है। इस शैली के प्रयोग से उनके व्यंग्यों की सोद्देश्यता तीखी और सार्थक बन गई है। इस संग्रह के अपने 'कबीर समारोह क्यों नहीं' शीर्षक निबंध में उन्होंने दलितों को भी उनकी अधोगति का कारण बताते हुए लिखा है, "मैंने रामकथा और रामलीला में स्वयं शूद्रों को अपने पीड़न के प्रसंग पर 'हरेनमः' करके गदगद होते देखा है। जिम्मेदारी हमारी है। हमने शूद्रों को दबाया है। उसे शिक्षा और संस्कृति से वंचित करके आज भी उसे मध्य युग की हालत में रखा है।" (पृ.111) इस संबंध में दतिलों की समस्या के समाधान के लिए उन्होंने सरकारी प्रयास की अपर्याप्तता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि "मगर याद रहे, जगजीवन राम को उमाशंकर दीक्षित के साथ एक डिनर खिलाने से कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता।" (पृ.120) 'वैष्णव की फिसलन निबंध में ही वे व्यावसायियों के काले कारनामे को उजागर करने के लिए गांधी के साथ ही सोमरस और सामवेद, कृष्णलीला, प्रकृति–पुरुष संबंध आदि के पौराणिक प्रसंगों के अवसरवादी प्रयोग की सीमाओं को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार व्यंग्य प्रयोगों के लिए वे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों पद्धतियों का सहारा लेते हैं।

इस इकाई की प्रस्तावना में हमने संक्षेप में परसाई जी द्वारा प्रयुक्त व्यंग्य के प्रमुख तेवरों पर विचार किया है। यहाँ कुछ विस्तार से उन्हें पुनः दुहरा देना आपके लिए उपयोगी होगा। परसाई को बड़ा व्यंग्यकार इसलिए माना जाता है, क्योंकि उन्होंने व्यंग्य को एक नई पहचान दी है। उन्होंने सार्थक व्यंग्य की रचना ही नहीं की है, वरन् हमें वह विवेक भी दिया है, जिससे हम व्यंग्य के नाम पर प्रचलित फूहड़ता से सार्थक और स्वस्थ व्यंग्य को अलग कर सकें। उन्होंने हास्य एवं विनोद की सीमाओं में बंधे व्यंग्य को मुक्त कर उसे एक महान और गंभीर सामाजिक लक्ष्य से जोड़ दिया है। अवसर के अनुकूल व्यंग्य के जितने भी तेवर हैं, उन सभी का सहारा परसाई जी ने सावधानीपूर्वक लिया है। कभी वे अपने व्यंग्य बाणों से प्रतिपक्षी की धज्जियाँ उड़ा देते हैं, तो कभी केवल चिकोटी काटकर रह जाते हैं, कभी रस लेते हुए उनके ढोंग और कपट को उघाड़ते हैं, तो कभी मखौल उड़ाकर रह जाते हैं, कभी मीठी छुरी से उन्हें रेतते हैं, तो कभी सरेआम नंगा कर देने से भी नहीं चूकते। इस प्रक्रिया में वे कहीं भी उद्दण्डता या अभद्रता का परिचय नहीं देते। सामाजिक परिवर्तन के महान

उद्देश्य से प्रेरित होने के कारण उन्होंने व्यंग्य की अंतर्वस्तु के साथ ही उसके शिल्प को भी समृद्ध किया है। वे एक बड़े व्यंग्यकार के रूप में हमारे सामने आते हैं।

2.8.2 भाषा

संरचना–शिल्प पर विचार करते हुए हमने आरंभ में ही निबंध की परंपरागत भाषा से परसाई की भाषा के अंतर की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया है। वस्तुतः विचार और चिंतन की अभिव्यक्ति के दबाव के कारण ही गद्य–भाषा का उद्भव और विकास हुआ तथा साहित्यिक विधा के रूप में सबसे पहले निबंध अस्तित्व में आया। निबंधों के माध्यम से ही अपनी विचारधारा और अपने चिंतन को कुशलता–पूर्वक व्यक्त किया जा सकता है। अतः गद्य और निबंध का गहरा संबंध आरंभ से ही रहा है। निबंध के लिए व्याकरण सम्मत और सुव्यवस्थित गद्य की आवश्यकता पहले से ही, महसूस की जा रही थी। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध को गद्य की कसौटी के रूप में स्वीकार किया था। लेकिन परसाई जी ने निबंध की भाषा की दृष्टि से भी अपनी अलग पहचान बनाई है। उनके व्यंग्यकार व्यक्तित्व का अक्खड़पन उनकी भाषा में भी मिलता है। इसके साथ ही भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों की परख भी उन्हें भाषा का पारखी सिद्ध करती है। भाषा के तत्सम, तद्भव और देशज स्वरूप के चक्कर में वे अधिक नहीं पड़े हैं। व्याकरण सम्मत परिनिष्ठित भाषा का आग्रह भी उनकी रचनाओं में नहीं मिलता। बोल–चाल के व्यावहारिक रूप को ही उन्होंने अपना आदर्श बनाया है। अतः हिंदी के तत्सम–तद्भव शब्दों के साथ ही उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रसंग एवं अवसर के अनुकूल प्रयोग किया है।

प्रस्तुत निबंध के संदर्भ में देखें तो विषय के दबाव के कारण सूदखोरी, कर्ज, वल्दियत, मुनीम जैसे उर्दू शब्दों के साथ ब्लैक, बाथरूम, लांड्री, लॉन, टेरेस गार्डन, एक्जीक्यूटिव, अफसर, नानवेज, स्टाकिस्ट, बार, कैबरे, बेयरा आदि अंग्रेजी शब्दों के साथ ही, वैष्णव, आशीर्वाद, धर्मसंकट, शाकाहार, धर्मात्मा, नतमस्तक, साष्टांग, शुद्ध आत्मा, सोमरस, कृष्णावतार, चीरहरण आदि संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है। बावजूद इसके प्रस्तुत निबंध की भाषा का मुख्य तेवर बोलचाल की भाषा का ही है। लेकिन इस निबंध की भाषा की जो वास्तविक क्षमता है, वह निहितार्थों, विपरीत लक्षण, सांकेतिकता आदि द्वारा प्रकट हुई है। इन्हीं के माध्यम से व्यंग्यकार ने अपने लक्ष्य को कुशलतापूर्वक ध्वनित कराया है। इसे विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से आप आसानी से समझ सकते हैं।

"बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते हैं। धर्म धंधे से जुड़ जाए, इसी को 'योग' कहते हैं।""कर्ज लेने वाले आते हैं तो भगवान के मुनीम हो जाते हैं।" "सब प्रभु की इच्छा से हो रहा है। उनके प्रभु भी शायद दो नम्बरी हैं।" "वैष्णव की विशुद्ध आत्मा से आवाज आयी। ''मूर्ख, कृष्णावतार में मैंने गोपियों को नचाया था, उनका चीर–हरण किया था।'' इन वाक्यों, वाक्यांशों और पदों से जो निहितार्थ (छिपा हुआ अर्थ) ध्वनित होता है, वह व्यंग्य–कौशल में अत्यधिक वृद्धि करता है। अतः शिल्प–संरचना अर्थात् शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह निबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2.9 निबंध का शीर्षक

किसी–रचना का शीर्षक किसी प्रमुख घटना, चरित्र अथवा विशेष स्थिति से जुड़ा होना चाहिए। लेकिन निबंध का शीर्षक प्रायः उसकी विषयवस्तु से जुड़ा होता है। 'वैष्णव की

फिसलन' जहाँ एक ओर निबंध की अंतर्वस्तु को संकेतित करता है, वहीं दूसरी ओर उसके प्रतिपाद्य को भी व्यंजित करता है। इसमें प्रयुक्त 'फिसलन' शब्द लगातार वैष्णव भक्त के फिसलते रहने, एक–एक सीढ़ी नीचे गिरते जाने या निरंतर पतित होते जाने का भाव लिए हुए है। वह सूदखोरी के कपटपूर्ण व्यवसाय से काला बाजारी की ओर अग्रसर होता है। अकूत काला धन इकट्ठा हो जाने से चिंतित होकर वह उसे सफेद या एक नंबर का बनाने के लिए होटल व्यवसाय का सहारा लेता है। इस व्यवसाय में होटल में ठहरने वालों के कमरे का किराया, खान–पान पर होने वाले खर्च का बाकायदे हिसाब–किताब रखना पड़ता है। अतः यहाँ काला धन या नम्बर दो के धन के लिए अवकाश कम हो जाता है।

होटल में शुद्ध शाकाहारी भोजन की व्यवस्था से ठहरने वाले बड़े लोगों की असुविधा को दूर करने के लिए उसे कई कार्य ऐसे करने पड़ते हैं, जो होटल व्यवसाय को अधिक लाभदायक बनाने के लिए जरूरी हैं। इस प्रक्रिया में उसे पहले मांसाहार की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिसके लिए शराब की व्यवस्था जरूरी हो जाती है। और आगे बढ़ने पर होटल में 'कैबरे' (स्त्रियों के अर्ध–नग्न नृत्य) की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। अपने व्यवसाय को और अधिक चमकाने के लिए नारी व्यवसाय के स्तर तक उसे गिरना पड़ता है, जो अपने आप में काला धंधा या नम्बर दो का धंधा है। इस तरह उसे लगातार नीचे गिरते हुए अंततः पुनः सूदखोरी और काला बाजारी जैसे नम्बर दो के धंधे तक उतरना पड़ता है। यही वैष्णव की फिसलन है। यह शीर्षक निबंध की अंतर्वस्तु और प्रतिपाद्य को पूरी तरह रेखांकित करता है। शीर्षक में व्यंग्यात्मकता का समावेश होने के कारण वह पूर्ण रूप से सार्थक बन गया है।

2.10 प्रतिपाद्य

निबंध की अंतर्वस्तु और उसके शीर्षक की सार्थकता के परिचय के माध्यम से आपने निबंध के प्रतिपाद्य के संबंध में अब तक पर्याप्त संकेत प्राप्त कर लिए हैं। प्रतिपाद्य से अभिप्राय यह है कि परसाई जी ने इसमें क्या प्रतिपादित करना या बताना चाहा है और क्यों बताना चाहा है। अतः प्रतिपाद्य के अंतर्गत एक आग्रह या अनुरोध भी आ जाता है, जो लेखक द्वारा पाठकों के लिए प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत निबंध में हरिशंकर परसाई का लक्ष्य केवल सूदखोरी, काला बाजारी और होटल व्यवसाय में बढ़ रहे भ्रष्टाचार से परिचित कराना मात्र नहीं है। वे लोभ–लाभ पर आधारित सम्पूर्ण व्यवसायिकता की विकृतियों और उसके समाजविरोधी स्वरूप को व्यंग्य के माध्यम से उद्घाटित करते हुए पाठक को जागरूक बनाकर सावधान भी करते हैं। इस प्रक्रिया में वे पाठक के अंदर इन सामाजिक बुराइयों के प्रतिकार या प्रतिरोध की भावना भी पैदा करते हैं। परसाई ने अपने सम्पूर्ण साहित्य के माध्यम से समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों की बखिया उघाड़ते हुए उसके प्रतिकार की आवश्यकता को भी रेखांकित किया है। इसे उनकी प्रमुख विशेषता माना जा सकता है। इस निबंध में उनका लक्ष्य विभिन्न व्यवसायों में पनपने वाले भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान है। धर्म की आड़ में होने वाले भ्रष्टाचार समाज के लिए और अधिक घातक हो जाते हैं, इस वास्तविकता का उद्घाटन समस्या के समाधान की एक महत्वपूर्ण मंजिल है। क्योंकि धार्मिक भावना से संचालित पाठक धर्म के दुरुपयोग के प्रति सावधान रह कर ही अपने सामाजिक दायित्व को सही ढंग से पूरा कर सकता है। धर्म या भक्ति भावना अपने आप में कोई अच्छी या बुरी चीज नहीं है। उसकी अच्छाई–बुराई उसके सामाजिक व्यवहार पर निर्भर करती है। अतः धर्म जब

सामाजिक भ्रष्टाचार के लिए ओट बन जाए, उसे बढ़ावा देने लगे तो वह निश्चय ही त्याज्य बन जाता है। व्यावसायिक भ्रष्टता के साथ ही धर्म विषयक उपर्युक्त संदेश भी लेखक ने इस निबंध के माध्यम से पाठक के सामने प्रस्तुत किया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में दें और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँचें –

10) 'वैष्णव की फिसलन' निबंध किस शैली में लिखा गया है?

क) भावात्मक शैली

ख) व्यंग्यात्मक शैली

ग) वर्णनात्मक शैली

घ) व्याख्यात्मक शैली ( )

11) इस निबंध में किस प्रकार की शब्दावली की प्रधानता है?

क) देशज शब्दावली

ख) उर्दू शब्दावली

ग) तत्सम शब्दावली

घ) बोल–चाल की मिश्रित शब्दावली ( )

12) परसाई के निबंधों में उनके व्यक्तित्व का कौन–सा रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है?

क) समझौतावादी

ख) क्रांतिकरी

ग) यथा स्थितिवादी

घ) सुधारवादी ( )

13) 'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक का प्रमुख आधार क्या है?

क) प्रमुख चरित्र

ख) मुख्य घटना

ग) प्रतिपाद्य

घ) विशेष स्थिति ( )

14) परसाई की व्यंग्यात्मक रचनाओं में प्रतिपाद्य या उद्देश्य की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं, लेकिन इनमें से एक विशेषता ऐसी है, जो उनकी रचनाओं में नहीं मिलती। बताइए कि वह कौन–सी विशेषता है?

क) भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना।

ख) अन्याय का विरोध करना।

ग) मनोरंजन करना।

घ) जागरूक और सावधान करना।

अभ्यास

नीचे दिए गए प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर दें और उत्तर को अंत में दिए गए उत्तर से मिलाकर जाँचें।

2) परसाईजी की व्यंग्यात्मक शैली संबंधी विशेषताओं को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) इस निबंध में धर्म के दुरुपयोग को किस प्रकार व्यक्त किया गया है? उत्तर सात पंक्तियों में दें।

.....

.....

.....

.....

4) इस निबंध के प्रतिपाद्य को दस पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.11 सारांश

इस इकाई का अध्ययन आपने कर लिया है। अब आप निम्नलिखित तथ्यों को समझकर बता सकते हैं और अपनी भाषा में लिख सकते हैं :

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप परसाई के जीवन और उनके साहित्यिक महत्व को अपनी भाषा में लिख सकते हैं।

- इस निबंध के कथ्य या उसकी अंतर्वस्तु को समझ और बता सकते हैं।
- इस निबंध में चित्रित वैष्णव के वर्गीय चरित्र की वास्तविकता से परिचित होकर उसे स्वयं विवेचित कर सकते हैं।
- परसाई द्वारा प्रयुक्त व्यंग्य की सामाजिक उपयोगिता को समझ और लिख सकते हैं।
- इस निबंध में व्यंग्यात्मक शैली और बोल–चाल की व्यावहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है। इसे पढ़कर आप परसाई जी की भाषा शैली की सभी विशेषताओं का कुशलतापूर्वक विश्लेषण कर सकते हैं।
- निबंध के लिए प्रयुक्त शीर्षक व्यंग्यात्मक होने के साथ ही उसकी अंतर्वस्तु और प्रतिपाद्य से जुड़कर अत्यंत सार्थक हो गया है। इसे पढ़कर आप शीर्षक संबंधी विशेषताओं पर भी सफलतापूवर्क प्रकाश डाल सकते हैं।
- परसाई जी का दृष्टिकोण वामपंथी चेतना से प्रभावित होने के कारण लोकोन्मुखी और समाजनिष्ठ है। उनके इस दृष्टिकोण के आधार पर आप इस निबंध के प्रतिपाद्य का अच्छी तरह विश्लेषण कर सकते हैं।
- सम्पूर्ण इकाई का अच्छी तरह अध्ययन करने के बाद आप इस निबंध से संबद्ध किसी भी प्रश्न का समुचित उत्तर दे सकते हैं।

2.12 उपयोगी पुस्तकें

डॉ.संजय शर्मा : व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की सामाजिक प्रतिबद्धता, ईशान पब्लिकेशंस, 2, हरवंश काटेज, शिमला।

डॉ.कमला प्रसाद : आँखिन देखी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2।

श्री मोहर देवलिया : हरिशंकर परसाई : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, साहित्य वाणी, इलाहाबाद।

श्री राधा मोहन शर्मा : हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, भूमिका प्रकाशन, दरियांगज, नई दिल्ली–2।

2.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ग
2) ग
3) ख
4) ख
5) घ
6) ग
7) ग
8) ग

9) ख

10) ख

11) घ

12) ख

13) ग

14) ग

अभ्यास

1) दोनों व्याख्याओं को देखकर व्याख्या स्वयं करें।

2) हरिशंकर परसाई कभी परोक्ष रूप से तो कभी प्रत्यक्ष रूप से समाजव्यापी भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं। इस प्रक्रिया में वे कभी विरोधियों की धज्जियाँ उड़ाते हैं तो कभी मखौल करके ही रह जाते हैं। आवश्यक होने पर वे निर्मम प्रहार भी करते हैं। भ्रष्टाचार में आकंठ मग्न लोगों को सरेआम नंगा करने से भी वे नहीं चूकते। उनका व्यंग्य–प्रयोग प्रायः सामाजिक हित से प्रेरित होता है।

3) व्यवसायियों के प्रतिनिधि वैष्णव भक्त ने अपनी सारी जायदाद विष्णु भगवान के मंदिर के नाम कर दी है। अपने को विष्णु का सेवक मानकर वह सूदखोरी, कालाबाजारी आदि उनके नाम पर करता है। होटल में मांसाहार, मदिरापान, कैबरे नृत्य, यहाँ तक कि नारी–देह के व्यापार का धंधा भी वह विष्णु के आदेश से ही करता है। अपनी समूची कमाई को वह विष्णु की कृपा, उनकी मर्जी से मिली हुई सिद्ध करता है। इस प्रकार वह धर्म को धंधे से जोड़कर उसका दुरुपयोग करता है।

4) 'वैष्णव की फिसलन' नामक निबंध का प्रतिपाद्य सूदखोरों, कालाबाजारियों और विभिन्न व्यवसायों में लगे समुदाय द्वारा धर्म की आड़ लेकर किए जाने वाले धंधे के प्रपंच पूर्ण कार्यों का पर्दाफाश करना है। सामाजिक उत्थान से प्रेरित अपने इस कार्य को व्यंग्य के माध्यम से परसाई जहाँ एक ओर लोभ–लाभ पर आधारित विकृतियों के समाजविरोधी स्वरूप को उद्‌घाटित करते हैं, वहीं दूसरी ओर पाठक को जागरूक बनाते हुए उसके प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध भी करते हैं। कोई भी चीज अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती। उसका सामाजिक व्यवहार ही उसे अच्छा या बुरा बनाता है। अपनी इस मान्यता को केंद्र में रखकर परसाई ने धर्म और व्यावसायिकता के स्वार्थ प्रेरित गठजोड़ के समाज विरोधी स्वरूप का अत्यंत कलात्मक उद्‌घाटन भी किया है।

इकाई 3 एकांकी : 'बहुत बड़ा सवाल' (मोहन राकेश)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्‌देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 एकांकी का वाचन

3.3 कथासार

3.4 कथ्य या अंतर्वस्तु

3.5 चरित्र–विधान

3.6 परिवेश

3.7 शीर्षक

3.8 संरचना–शिल्प

3.8.1 रंगमंचीयता

3.8.2 संवाद–योजना

3.9 प्रतिपाद्य

3.10 सारांश

3.11 उपयोगी पुस्तकें

3.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

3.0 उद्‌देश्य

इस इकाई में हम हिंदी के एक महत्वपूर्ण नाटककार मोहन राकेश के एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप :

- एक साहित्य–विधा के रूप में एकांकी–विधा की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- एक नाटककार और एकांकीकार के रूप में मोहन राकेश के महत्व को समझ सकेंगे;
- एकांकी के कथासार और उसकी अंतर्वस्तु की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- एकांकी के चरित्र-विधान की विशेषताएँ समझ सकेंगे;
- रचना के युगीन परिवेश को लेखक की अपनी मानसिकता के संदर्भ में हृदयंगम कर सकेंगे;
- एकांकी की अभिनेयता और संवाद–कौशल के संदर्भ में उसके रचना–शिल्प की बारीकियों को समझ सकेंगे और
- एकांकी के प्रतिपाद्य को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 1 में एक कहानी और इकाई 2 में एक व्यंग्यात्मक निबंध के रूप में साहित्य की दो गद्य–विधाओं का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप एक एकांकी

का अध्ययन करेंगे। उपन्यास, कविता, निबंध आदि का पूरा आनंद पढ़कर या सुनकर लिया सकता है, लेकिन नाटक की भाँति एकांकी का वास्तविक आनंद इसे रंगमंच पर देख कर ही लिया जा सकता है। गद्य–विधाओं के अंतर्गत कहानी और उपन्यास में जो अंतर है, एकांकी और नाटक में भी वैसा ही अंतर है। एक कहानी को जैसे छोटा उपन्यास और उपन्यास को एक बड़ी कहानी नहीं कहा जा सकता, वैसे ही एक एकांकी को छोटा नाटक या नाटक को बड़ी एकांकी नहीं माना जा सकता। अतः कहानी की भाँति ही एकांकी भी साहित्य की एक अलग और स्वतंत्र विधा है। कहानी की भाँति एकांकी में भी जीवन की एक मार्मिक घटना, एक मार्मिक दृश्य या एक महत्वपूर्ण स्थिति की अभिव्यक्ति होती है। लेकिन कहानी और एकांकी की शिल्प–संरचना में पर्याप्त अंतर होता है। कहानी में जहाँ कहानीकार घटनाओं को एक दूसरे से जोड़ने और चरित्रों के चित्रण में स्वतंत्र होता है, वहाँ एकांकीकार को ऐसी स्वतंत्रता नहीं होती। वह पात्रों की पारस्परिक बातचीत और उनके क्रिया कलापों के माध्यम से ही कथा को विस्तार देता है। किसी पात्र के चरित्र के विषय में या रचना के उद्देश्य के विषय में उसे अपनी ओर से कुछ कहने की छूट नहीं होती। फलस्वरूप रंगमंचीयता एकांकी का कहानी से भिन्न एक महत्वपूर्ण उपकरण या तत्व माना जा सकता है।

एकांकी–विधा हिंदी गद्य–साहित्य की अपेक्षाकृत एक नयी विधा है। वैसे तो इसका आरंभ जयशंकर प्रसाद की रचना 'एक घूँट' से माना जा सकता है। लेकिन आगे चलकर भुवनेश्वर के 'कारवाँ' और डॉ.राम कुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' से इसे एक नयी दिशा मिली। सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी आदि ने इसे तीव्र गति प्रदान की और आगे चलकर जगदीश चंद्र माथुर, विनोद रस्तोगी, विष्णु प्रभाकर आदि ने इस विधा को उन्नत बनाने में पर्याप्त योगदान किया है। लोक नाटकों की परंपरा का सहारा लेकर अब भी एकांकी के क्षेत्र में नये–नये प्रयोग किए जा रहे हैं। नुक्कड़ों–चौराहों, गली–कूचों में प्रस्तुत किये जाने वाले नुक्कड़ नाटक इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिंदी कहानी और नाट्य–रचना के क्षेत्र में एक नयी उपलब्धि का बोध कराने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में मोहन राकेश का ऐतिहासिक महत्व है। हिंदी की नयी कहानी के क्षेत्र में मोहन राकेश दो–तीन चोटी के कहानीकारों में गिने जाते हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' जैसा उपन्यास लिखकर उन्होंने हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में भी अपनी अलग पहचान बनाई है। हिंदी नाटक के क्षेत्र में, विशेषतः उसके रंगमंचीय शिल्प की दृष्टि से उनका 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राज हंस' और 'आधे–अधूरे' नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। ध्वनि, छाया और प्रकाश की तरंगों का अभिनव प्रयोग कर उन्होंने अपने नाटकों के रंगमंचीय कौशल को अत्यंत प्रभावशाली बनाया है। अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए उन्होंने एकांकी रचना के क्षेत्र में भी समुचित योगदान किया है। इस दृष्टि से 'अंडे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'टूटती प्यालियाँ', 'रात बीतने तक', 'उसकी रोटी', 'छतरियाँ' आदि के साथ ही 'बहुत बड़ा सवाल' एकांकी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस इकाई में आप मोहन राकेश के एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। मोहन राकेश का जन्म पंजाब के अमृतसर शहर में 1925 में एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। अपनी शिक्षा समाप्ति के बाद इन्होंने कुछ वर्षों तक कई नौकरियाँ करते–छोड़ते हुए अंततः स्वतंत्र लेखन को ही अपने जीवन–यापन का लक्ष्य बनाया। दिसंबर, 1972 में हृदय–गति रुक जाने के कारण दिल्ली में उनका

स्वर्गवास हुआ। अपने 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राज हंस' में मोहन राकेश ने ऐतिहासिक–पौराणिक कथा को आधार बनाकर वर्तमान युग के नारी–पुरुष संबंधों के जटिल यथार्थ को आधुनिकतावादी भावबोध के संदर्भ में व्यक्त करने का प्रयास किया है। उनके तीसरे महत्वपूर्ण नाटक 'आधे–अधूरे' में एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार के निम्न मध्यवर्गीय परिवार में क्रमशः बदलने की हताशापूर्ण मनोदशाओं का चित्रण किया गया है। ये तीनों ही नाटक रंगमंचीय शिल्प की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक एकांकी निम्न वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों (स्कूल अध्यापकों) की मानसिकता को उद्‌घाटित करने के उद्‌देश्य से लिखा गया है, जिसका मूल पाठ आपके गहन अध्ययन के लिए आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.2 एकांकी का वाचन

एकांकी : बहुत बड़ा सवाल

मोहन राकेश

पात्र

राम भरोसे
श्याम भरोसे
शर्मा
कपूर
मनोरमा
संतोष
गुरप्रीत
प्रेमप्रकाश
दीनदयाल
रमेश
मोहन
सत्यपाल

स्थान : एक स्कूल का कमरा, जिसे ब्लैक बोर्ड कोने में हटा कर मीटिंग के लिए तैयार कर लिया गया है। मास्टर की कुरसी–मेज अध्यक्ष के लिए है और बच्चों के डेस्क शेष सदस्यों के लिए। पीछे दीवार पर संसार का बहुत बड़ा मानचित्र लटक रहा है। आने–जाने के लिए दोनों तरफ दरवाजे हैं।

परदा उठने पर राम भरोसे और श्याम भरोसे डेस्कों से धूल झाड़ रहे हैं।

श्याम भरोसे : (हाथ रोककर) राम भरोसे!

: राम भरोसे बिना सुने धूल झाड़ता रहता है। ऐ राम भरोसे!

राम भरोसे : (बिना हाथ रोके) क्या है?

श्याम भरोसे : इतनी धूल क्यों उड़ाता है? आहिस्ता से नहीं झाड़ा जाता? रोज–रोज की धूल से फेफड़े पहले ही खाये हुये हैं।

राम भरोसे : तो रोता क्यों है? जान पाँच बरस में नहीं जायेगी, चार बरस में चली जायेगी।

श्याम भरोसे : तू अपनी जान चाहे पाँच बरस में दे, चाहे एक बरस में। पर मेरी जान अभी रहने दे।

राम भरोसे : ससुर रोज़–रोज़ ये मीटिंग होंगी, तो किसकी जान रहेगी? आज एक का जनम–दिवस होकर निकलता है, तो कल दूसरे का मरन–दिवस आ जाता है। जनमें–मरें ये, धूल खायें राम भरोसे, श्याम भरोसे। (जोर से झाड़ता हुआ) सबेरे निकालो, तो शाम को चली आती है। शाम को निकाली, तो सबेरा नहीं होने देती।

श्याम भरोसे : आज भी किसी का जनम–दिवस है क्या?

राम भरोसे : पता नहीं, कौन दिवस है? अपना मरन–दिवस है।

ढीले–ढाले ढंग से फाइल हाथ में लिये शर्मा बाहर से आता है।

शर्मा : (अपने–आप बड़बड़ता हुआ) अभी तक कोई नहीं है यहाँ!

राम भरोसे : (हाथ रोककर) कोई भी नहीं है, माने?

शर्मा : माने, जो आने वाले थे, उनमें से कोई भी। लोग समझते हैं, मेरे बाप के घर का काम है। जैसे मुझे तनख्वाह मिलती है इसकी। कोई एक आदमी वक्त से नहीं आता।

राम भरोसे : साहब, आज किसी की सालगिरह है यहाँ पर?

शर्मा : मेरे झख मारने की सालगिरह है। तुम लोगों से अभी तक डेस्क साफ नहीं हुए?

राम भरोसे : देख रहे हो, कर ही रहे हैं।

शर्मा : साढ़े पाँच मीटिंग शुरू होनी थी और पौने छह बज चुके हैं। लोग देर से आयें, तुम लोगों को तो जगह वक्त से तैयार कर देनी चाहिए।

राम भरोसे : एक घड़ी दिला दो, साहब! तब हम वक्त से सब काम कर सकते हैं। हमें क्या मालूम, कब पाँच बजता है, कब साढ़े पाँच?

शर्मा : स्कूल में वक्त से घंटी नहीं बजाते?

श्याम भरोसे : सुपरीडेंट की डाँट सुनकर बजाते हैं। घड़ी तो स्कूल की कब से खराब पड़ी है।

राम भरोसे : आप लोगों के हाथ पर लगी रहती है, फिर भी देर कर जाते हो। हमारी तो कोई बात ही नहीं है।

श्याम भरोसे : और जल्दी कर दें, तो डाँट पड़ती है कि जल्दी क्यों किया, फिर से धूल भर गयी। जल्दी न करें, तो डाँट पड़ती है कि जल्दी क्यों नहीं किया, टाइम बरबाद हो रहा है।

राम भरोसे : कोई जादू तो जानते नहीं। हाथ से काम करते हैं, सो कर रहे हैं।

शर्मा : बक–बक मत करो, काम करो। अभी कितना काम बाकी है?

राम भरोसे : क्लास सारी झाड़ दी है। मास्टर की कुरसी बाकी है।

जाकर उस कुरसी–मेज को साफ करने लगता है।

: लो हो गयी यह भी। और बता दो जो झाड़ना हो।

श्याम भरोसे : ब्लैक बोर्ड तो नहीं चाहिए?

शर्मा : नहीं। पर दोनों आदमी कहीं जाना नहीं। यहीं दरवाजे के पास बैठना। पता नहीं, किस काम के लिए जरूरत पड़ जाये।

आगे की डेस्क पर बैठने लगता है, पर सहसा उठ जाता है।

: यह सफाई की है? देखो, कितनी धूल जमी है यहाँ! सफाई इस तरह से की जाती है?

राम भरोसे : क्या पता साहब, किस तरह से की जाती है। किसी स्कूल से इस काम की पढ़ाई तो पढ़े नहीं हैं।

श्याम भरोसे : सुपरीडेंट कहता है, सीधा झाड़न मारो, सो सीधा मार देते हैं। आप कोई तरीका बताओ, तो वैसे कर देते हैं।

शर्मा : नानसेंस! अब जैसा हुआ है, रहने दो।

श्याम भरोसे : रहने दो, तो रहने देते हैं।

शर्मा रूमाल से सीट साफ करके डेस्क पर बैठ जाता है।

शर्मा : जाओ, बाहर बैठो अब।

श्याम भरोसे : क्यों साहब, मीटिंग बरखास्त कब होगी?

शर्मा : क्या पता, कब होगी, तुम्हें क्या करना है?

श्याम भरोसे : कमरे को ताला नहीं लगाना है? ताला लगेगा, भी तो यहाँ से जा पायेंगे। नहीं तो सुपरीडेंट कल हमारी जान को आयेगा।

वह और राम भरोसे दोनों दायीं तरफ के दरवाजे के बाहर जाकर बैठते हैं। राम भरोसे हाथ पर सुरती मलने लगता है। श्याम भरोसे ऊँघने की मुद्रा में टेक लगा लेता है। मनोरमा, संतोष और गुरप्रीत उसी दरवाजे से आती हैं। राम भरोसे आँखें उठाकर चिढ़े हुए भाव से उन्हें आते देखता है।

मनोरमा : क्या बात है, शर्मा? पहरा क्यों बिठा रखा है बाहर? मीटिंग में मार–धाड़ तो नहीं होने वाली है?

शर्मा : (उठता हुआ) साढ़े पाँच हो गये आप लोगों के?

मनोरमा : अभी कोई भी तो नहीं आया, सिवाय हमारे।

शर्मा : साढ़े छह तक आराम से आयेंगे लोग। वक्त की पाबंदी तो सिर्फ एक आदमी पर है। क्योंकि वह कमबख्त सेक्रेटरी है।

संतोष : मैंने इसीलिए अपना नाम वापस ले लिया था। मुफ्त की सिर–दर्दी।

मनोरमा : तू ने इसीलिए नाम वापस ले लिया था कि शर्मा के खिलाफ तुझे तीन वोट भी न मिलते! अवर शर्मा इज ग्रेट।

संतोष : लांग लिव शर्मा!

मनोरमा : (गुरप्रीत से) तू इतनी गुपचुप क्यों है?

गुरप्रीत : शर्मा के सामने यह हमेशा गुपचुप हो जाती है।

गुरप्रीत : प्लीज! कपूर मुस्कराता हुआ बायीं तरफ के दरवाजे से आता है।

कपूर : वाह, वाह!

मनोरमा : वाह, वाह!

कपूर : आप किस चीज की दाद दे रही हैं?

मनोरमा : आपकी वाह–वाह की।

कपूर : मैं तो इस बात पर वाह–वाह कर रहा था कि शर्मा तीन–तीन लेडीज़ से घिरा है। सेक्रेटरी होने के ये मजे होते हैं।

शर्मा : आज से तुम सेक्रेटरी हो जाओ।

मनोरमा : और शर्मा को चेयरमैन बना दीजिए।

कपूर : चेयरमैन मत कहिए... वह कहिए.... क्या होता है वह.... अधि–अक्ष।

संतोष : अध्यक्ष।

कपूर : अधि–अक्ष।

संतोष : (जोर देकर) अध्यक्ष

कपूर : (जोर देकर) अधि–अक्ष। वह तुम्हारा अधि–अक्ष अभी तक नहीं आया, शर्मा?

शर्मा : तुम्हीं कौन वक्त से आ गये हो?

कपूर : दस–बीस मिनट लेट, लेट नहीं होता। और फिर मैं तो साधारण सदसिय हूँ

मनोरमा : सीधे मेम्बर क्यों नहीं कह देते? सदसिय!

कपूर : वह लफ़्ज़ क्या है वैसे?

मनोरमा : सदस्य।

कपूर : सदसिय।

मनोरमा : (ज़ोर देकर) सदस्य।

कपूर : (ज़ोर देकर) सदसिय। मैं पहले ही कहता था, इस आदमी को चेयरमैन नहीं बनाना चाहिए। आज छुट्टी का दिन है, वैसे भी

ठंड है, घर में रजाई में दुबककर सो रहा होगा। सॉरी.... घर मे नहीं होगा, वह होगा आज उसके यहाँ....।

संतोष : किसके यहाँ?

गुरप्रीत : प्लीज!

संतोष : नाम तो जान लेने दे।

गुरप्रीत : प्लीज! प्लीज! प्लीज!

कपूर : गुरप्रीत जी नाम जानती हैं।

संतोष : जानती है तू?

गुरप्रीत : मैं इसीलिए आप लोगों की मीटिंग में नहीं आना चाहती। यहाँ काम तो कुछ होता नहीं, बस इसी तरह की बातें होती रहती हैं।

कपूर : गुरप्रीत जी की सहेली है वह।

संतोष : अच्छा ....वह?

कपूर : हाँ, वही

संतोष : यह कब से?

कपूर : कब से? दो साल से तो मैं ही जानता हूँ।

संतोष : पर वह तो पहले....।

कपूर : आप बहुत पुरानी बात कर रही हैं। लगता है, आप शहर में नहीं रहतीं।

संतोष : (गुरप्रीत से) सच बात है यह?

गुरप्रीत : (शर्मा से) मैं जान सकती हूँ, मीटिंग कब शुरू होगी?

कपूर : कम–अज़–कम चेयरमैन तो आ जाये। क्यों शर्मा, तब तक एक–एक प्याली चाय न पीली जाये? ठंड आज वाकई बहुत है। क्यों, मनारेमा जी?

मनोरमा : आई डोंट माइंड।

कपूर : राम भरोसे!

राम भरोसे : (सुरती फाँक कर) फरमाइए।

कपूर : जा कर लाला से एक सेट चाय ले आ। पाँच प्यालियाँ।

शर्मा : मैं नहीं पिऊँगा।

गुरप्रीत : मैं भी नहीं लूँगी।

कपूर : आपको लेनी चाहिए। आपकी तबीयत सुस्त लग रही है।

गुरप्रीत : थैंक्स। मुझे इस वक्त जरूरत नहीं है।

कपूर : राम भरोसे, आधा सेट और तीन प्यालियाँ।

मनोरमा : शर्मा से भी तो दूसरी बार पूछ लेते।

कपूर	:	क्यों भई, शर्मा?
शर्मा	:	यह मीटिंग का वक्त है, चाय पीने का नहीं।
कपूर	:	राम भरोसे! आधा सेट और तीन प्यालियाँ।
संतोष	:	साथ थोड़ी मूँगफली। शर्मा मूँगफली खायेगा।
कपूर	:	पचीस पैसे की मूँगफली।
शर्मा	:	मैं ठीक छह बजे मीटिंग शुरू कर दूँगा। तुम लोग चाय पीते रहना।
		राम भरोसे सहज भाव से चल कर शर्मा के पास आ जाता है।
राम भरोसे	:	(शर्मा से) पैसे आप देंगे या....?
मनोरमा	:	कपूर साहब देंगे। कपूर जेब से बटुवा निकालकर देखता है।
कपूर	:	मेरे पास दस का नोट है।
मनोरमा	:	कोई बात नहीं, टूट जायेगा। कपूर राम भरोसे को नोट देता है।
कपूर	:	चेंज गिन कर लाना।
राम भरोसे	:	(जाते–जाते) जितनी गिनती आती है, उतना गिन कर ले आयेंगे।
गुरप्रीत	:	मुझे आज मीटिंग होती नहीं लगती।
संतोष	:	अभी तो कोरम ही पूरा नहीं है।
कपूर	:	क्यों न मीटिंग कैंसिल करके लोग कैंटीन में चलकर चाय पियें?
शर्मा	:	मीटिंग कैंसिल नहीं होगी। आज की छुट्टी तो बरबाद हुई ही है, फिर एक और छुट्टी बरबाद करनी पड़ेगी।
मनोरमा	:	सेक्रेटरी के मुँह से ऐसी बात अच्छी नहीं लगती।
शर्मा	:	मैं तो इसी वक्त त्यागपत्र देने को तैयार हूँ। आप लोग मंजूर कर दीजिए?
कपूर	:	वाह! तिआगपतर कैसे दे सकते हो तुम?
संतोष	:	त्यागपत्र।
कपूर	:	तिआगपतर।
संतोष	:	(जोर देकर) त्यागपत्र।
कपूर	:	(जोर देकर) तिआगपतर। तुम तिआगपतर दे दोगे, तो दूसरा सेक्रेटरी हमें कहाँ मिलेगा?
मनोरमा	:	हियर–हियर! सेक्रेटरी शर्मा जिंदाबाद!
कपूर	:	सबकी तरफ से जिंदाबाद!

शर्मा : श्याम भरोसे!

संतोष : सो रहा है वह।

शर्मा : (ऊँचे स्वर में) श्याम भरोसे!

श्याम भरोसे : सुन रहे हैं, साहब! बोलिए तो?

शर्मा : तुमसे मैंने क्या कहा था?

श्याम भरोसे : क्या कहा था?

शर्मा : बैठने को कहा था।

श्याम भरोसे : तो हम बैठे ही हैं, खड़े तो नहीं हैं।

शर्मा : लेकिन बैठे–बैठे ऊँघ रहे हो।

श्याम भरोसे : मानुस हैं, साहब! रबड़ के पुतरे नहीं हैं। आ गयी होगी ऊँघ। काम बताइए।

शर्मा : राम भरोसे चाय लाने गया है।

श्याम भरोसे : गया है। आपके सामने गया है।

शर्मा : मैं भी कह रहा हूँ, गया है। तुम उसके पीछे चले जाओ। बोलो, चाय एकदम जल्दी आनी चाहिए।

श्याम भरोसे : (उठता हुआ) बोल देते हैं, पर आयेगा तो पैरों से चलकर ही। हमारे जाने से उसके पंख तो उग नहीं आयेंगे।

शर्मा : (गुस्से से) तो मत जाओ तुम। आने दो उसे, जब भी आता है।

श्याम भरोसे : (बैठता हुआ) नहीं जाते। वैसा हुकुम हो, तो वैसा। ऐसा हुकुम है, तो ऐसा।

कपूर : क्यों शर्मा, लो ग्रेड में ये लोग नहीं आते?

शर्मा : आते हैं।

कपूर : तो इन्हें भी मेम्बर नहीं होना चाहिए? लो ग्रेड वर्कर्ज वेल्फेयर सोसाइटी जैसे हम लोगों की है, वैसे ही इन लोगों की भी है।

मनोरमा : है तो नहीं, पर होनी चाहिए

संतोष : तब राम भरोसे चेयरमैन हो जायेगा, श्याम भरोसे सेक्रेटरी।

कपूर : फिर चाय लाने कौन जायेगा? शर्मा?

शर्मा : तुम मेरा अपमान कर रहे हो।

कपूर : अगर अपमान किया हो तो मै माफी माँग लेता हूँ। मैंने तो एक बात कही थी।

राम भरोसे चाय और मूँगफली लिये हुये आता है।

मनोरमा : लीजिए, चाय आ गयी।

कपूर	:	गुरप्रीत जी, आप बनाइए चाय।
गुरप्रीत	:	मुझे सबके टेस्ट का पता नहीं है।
कपूर	:	आपको नहीं है पता? बनाइए, बनाइए।
संतोष	:	(गुरप्रीत से) सबसे छोटी तू ही है।
कपूर	:	सबसे छोटी और सबसे.... ।
मनोरमा	:	कह दीजिए, कह दीजिए।
कपूर	:	सॉरी, मेरा वह मतलब नहीं था।
		गुरप्रीत चाय बनाने लगती है। प्रेमप्रकाश, दीनदयाल बायीं तरफ से आते हैं।
मनोरमा	:	क्या मौके पर आये हैं आप लोग।
प्रेमप्रकाश	:	चाय और मूँगफली! किसने दावत की है?
मनोरमा	:	कपूर साहब ने।
प्रेमप्रकाश	:	किस खुशी में?
मनोरमा	:	आप लोगों के देर से आने की।
दीनदयाल	:	मैं एक प्याली ले सकता हूँ?
गुरप्रीत	:	(पहली प्याली उसकी तरफ बढ़ाकर) लीजिए।
दीनदयाल	:	(प्याली लेकर) थैंक्स!
गुरप्रीत	:	(प्रेमप्रकाश से) आप भी लेंगे!
प्रेमप्रकाश	:	क्यों नहीं?
गुरप्रीत	:	(प्याली बढ़ाकर) लीजिए। चीनी कम डाली है। अब तीसरी प्याली कौन लेगा?
मनोरमा	:	कपूर साहब, जिन्होंने चाय मँगवायी है।
कपूर	:	नहीं, नहीं आप लीजिए।
मनोरमा	:	आप तकल्लुफ कर रहे हैं। ले लीजिए।
कपूर	:	तकल्लुफ तो आप कर रही हैं।
		मोहन दायीं तरफ से आता है।
मोहन	:	मीटिंग शुरू नहीं हुई अभी? या चल रही है! यह एक्सट्रा प्याली किसके लिए रखी है? मैं ले सकता हूँ?
गुरप्रीत	:	क्यों नहीं?
		मोहन प्याली उठाकर पीने लगता है।
मोहन	:	खूब गर्म चाय है। मेजबान कौन है? दीनदयाल जी, आप?
दीनदयाल	:	मै भी तुम्हारी तरह मेहमान हूँ।

मोहन : तो प्रेमप्रकाश जी की तरफ से है चाय? (प्रेमप्रकाश से) धन्यवाद, बहुत–बहुत धन्यवाद!

प्रेमप्रकाश : मुझे धन्यवाद क्यों देते हो? मैं खुद मेहमान हूँ।

मोहन : हम तीनों मेहमान हैं? तो मेजबान?

संतोष : पैसे कपूर साहब के खर्च हुए हैं।

मोहन : पैसे खर्च किये हैं, फिर भी खुद नहीं पी रहे? क्या बड़प्पन है!

संतोष : बड़प्पन तो अपने–आप हो गया, जब...।

मोहन : किसी–किसी में होता है ऐसा बड़प्पन। हमारी पहचान के एक साहब और हैं ऐसे। शादी–शुदा हैं। वे अपनी पत्नी को खुद सैर करने नहीं ले जाते, दोस्तों को ले जाने देते हैं।

गुरप्रीत : प्लीज!

शर्मा : मुझे ऐसी बातचीत पर सख्त एतराज है। मैं चाहूँगा कि हम मीटिंग का वातावरण गंभीर रहने दें।

मोहन : मैं इसके बाद गंभीर रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ। थोड़ी मूँगफली तो ले सकता हूँ न?

शर्मा : तो अब कार्यवाही आरंभ की जाये....?

बाहर से एक ठहाका सुनायी देता है।

मनोरमा : अभी और लोग आ रहे हैं।

मोहन : रमेश और सत्यपाल हैं। ऐसी वहशियाना हँसी और कोई हँस ही नहीं सकता।

कपूर : देखो, तुमने अभी प्रतिज्ञा की है कि.....।

मोहन : सॉरी! मगर कोई भी कह दे, यह हँसी इनसानों की–सी हैं?

रमेश और सत्यपाल बायीं तरफ से आते हैं।

रमेश : किसकी हँसी इनसानों की–सी नहीं है?

मोहन : मेरा मतलब आप ही की हँसी से था। लेकिन मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। आप मूँगफली खाइए।

सत्यपाल : यह जरा–सी मूँगफली आप किस–किस को खिलायेंगे?

रमेश : ले भी लो अब। शर्मा साहब, आप भी लीजिए।

शर्मा : (एक दाना लेकर) तो मीटिंग की कार्यवाही अब....।

रमेश : मनोरमा जी, आप परे क्यों खड़ी हैं? लीजिए न। कुल आठ–दस दाने बचे हैं।

मनोरमा : ये कपूर साहब को दे दीजिए, वह बेचारे...!

रमेश : आप लीजिए, उन्हें भी देता हूँ। आप भी लीजिए, संतोष जी! गुरप्रीत जी, आप छिप क्यों रही हैं? लीजिए, कुल दो ही दाने

बचे हैं। अरे, दो में से भी एक दाना छोड़ दिया? लीजिए, कपूर साहब!

कपूर : यह तुम ले लो।

रमेश : नहीं, आप ले लीजिए।

कपूर : नहीं, तुम्हीं ले लो।

रमेश : नहीं–नहीं। आप ले लीजिए।

दीनदयाल : ऐसा भी क्या तकल्लुफ है? आप दोनों मत लीजिए। मैं ले लेता हूँ। थैंक्स!

शर्मा मास्टर की कुरसी के पास चला जाता है।

शर्मा : दोस्तो!

कपूर : पहले सब लोग बैठ जायें।

मोहन : लेडीज फ्रन्ट। जेन्ट्स बैक।

रमेश : क्यों? एक–एक डेस्क पर एक–एक पेयर क्यों नहीं?

मोहन : लेडीज कम हैं, जेन्ट्स ज्यादा हैं।

रमेश : तो दो–दो डेस्क जोड़ लिये जायें जिससे....।

मोहन : मुझे कोई एतराज नहीं।

शर्मा : मुझे एतराज है। डेस्क इतने हैं कि एक–एक डेस्क पर एक–एक आदमी बैठ सकता है। जहाँ–जहाँ बैठना हो बैठ जाइए।

मोहन : इस सुझाव से कौन–कौन सहमत हैं?

मनोरमा : हम सब सहमत हैं।

मोहन : आप सब सहमत हैं, तब तो कुछ कहने को बचता ही नहीं।

एक डेस्क पर बैठ जाता है। और लोग भी बिखर कर बैठ जाते हैं।

बोध प्रश्न

(उपर्युक्त पाठ पर आधारित)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर में सही उत्तर की क्रम संख्या नीचे दिए गए कोष्ठक में निशान लगा कर दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर उन्हें जाँच लें।

1) 'सबेरे निकालो, तो शाम तक चली आती है। शाम को निकालो, तो सबेरा नही देती।' इस कथन द्वारा किसका संकेत हुआ है?

   क) ठंड का,

   ख) धूल का,

   ग) हवा का,

   घ) बिल्ली का। ( )

2) 'आप लोगों के हाथ पर लगी रहती है, फिर भी देर कर जाते हो। हमारी तो कोई बात ही नहीं।' इस कथन से हाथ पर क्या लगी रहने की बात कही गई है?

क) धूल,

ख) स्याही,

ग) घड़ी,

घ) चोट। ( )

3) कपूर ने बैठक में पहुँचते ही 'वाह–वाह' क्यों कहा?

क) शर्मा की प्रशंसा के लिए,

ख) बैठक में समय से सबके पहुंच जाने के लिए,

ग) शर्मा पर कटाक्ष करने के लिए,

घ) अध्यक्ष की अनुपस्थिति पर व्यंग्य करने के लिए। ( )

4) बैठक में चाय के पैसे किसने दिए थे?

क) शर्मा ने,

ख) कपूर ने,

ग) दीनदयाल ने,

घ) प्रेमप्रकाश ने। ( )

मनोरमा : हम

शर्मा : मैं समझता हूँ, अब और किसी के आने की आशा नहीं करनी चाहिए। अध्यक्ष महोदय नहीं आये, इसलिए आज की मीटिंग की अध्यक्षता के लिए मैं कपूर साहब के नाम का प्रस्ताव करता हूँ।

सत्यपाल : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

शर्मा : आइए, कपूर साहब!

कपूर मास्टर की कुरसी पर जा बैठता है। सब लोग ताली बजाते हैं।

कपूर : (गला साफ करके) भाइयो और बहनो..।

मोहन : मेरा एक संशोधन है। बहनो पहले और भाइयो बाद में होना चाहिए।

शर्मा : क्या मैं अनुरोध कर सकता हूँ कि आप अब गंभीर होकर बैठें?

मोहन : मैं बिल्कुल गंभीर होकर यह बात कह रहा हूँ।

शर्मा : आप बिल्कुल गंभीर होकर नहीं कह रहे।

रमेश : आप कैसे कह सकते हैं कि ये गंभीर होकर नहीं कह रहे? सभ्य समाज में हमेशा लेडीज़ एंड जेंटलमेन कहा जाता है, जेंटलमेन एंड लेडीज नहीं।

शर्मा : अच्छा, अच्छा! मैं आपका संशोधन स्वीकार करता हूँ।

रमेश : आपका मतलब है, आप मिस्टर मोहन का संशोधन स्वीकार करते हैं।

शर्मा : मेरा मतलब है, मैं मिस्टर मोहन का संशोधन स्वीकार करता हूँ। बहनो और भाइयो....!

सत्यपाल : मैं एक बात कह सकता हूँ?

शर्मा : कहिए।

सत्यपाल : बहनो और भाइयो, यह एक झूठा स्टेटमेंट नहीं है?

दीनदयाल : बात करने का मुहावरा है, यार!

सत्यपाल : लेकिन यह झूठा मुहावरा नहीं है? क्या शर्मा साहब कह सकते हैं जितनी महिलाएँ यहाँ बैठी हैं....!

प्रेमप्रकाश : आप पर्सनल बातें बीच में नहीं ला सकते।

सत्यपाल : मैं कोई पर्सनल बात बीच में नहीं ला रहा। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि हमें इस मुहावरे की जगह कोई दूसरा मुहावरा इस्तेमाल करना चाहिए जो कि लेडीज़ एंड जेंटलमेन की तरह न्यूट्रल हो।

मोहन : लेडीज़ एंड जेंटलमेन की तरह न्यूट्रल? ग्रामर ठीक है आपकी?

सत्यपाल : मैं मुहावरे की बात कर रहा हूँ।

प्रेमप्रकाश : वह मुहावरा भी न्यूट्रल किस तरह से है? किसी भी सभा में बैठी हुई सब लेडीज़ लेडीज़ नहीं होती?

गुरप्रीत : दिस इज टू मच।

मनोरमा : आप इनडायेरक्टली हमारा अपमान कर रहे हैं। ।

प्रेमप्रकाश : मैं सिर्फ इतना कह रहा हूँ कि बहनो और भाइयो यह मुहावरा उतना ही सही है जितना लेडीज़ एंड जेंटलमेन। इसलिए शर्मा साहब को आगे चलने दिया जाये।

कपूर : चलिए, शर्मा साहब!

शर्मा : (फिर गला साफ करके) आप सब जानते हैं कि लो–ग्रेड वर्कर्ज वेलफेयर सोसाइटी की स्थापना किस उद्देश्य से की गयी है। लगातार बढ़ती महँगाई के इस जमाने में हमारे जैसे सब लोग अपने लिए खान पान के मामूली साधन जुटाने में भी असमर्थ हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि हम अपने वर्ग के लोगों के वेल्फेयर की ऐसी स्कीमें सरकार के सामने रखें, और उन्हें मनवाने के लिए जितना जोर सरकार पर डाल

सकें, डालें जिससे कि.... मेरा मतलब है, ऐसी स्कीमें जो कि .....जैसे पिछली बार सरकार से ज्यादा–से–ज्यादा छोटे कर्ज़ों की माँग की गयी थी....।

दीनदयाल : उस माँग का अब तक हुआ भी है कुछ?

कपूर : यह सवाल बाद में उठाइयेगा।

दीनदयाल : बाद में क्यों? अगर उसी बारे में अब तक कुछ नहीं हुआ...।

कपूर : क्यों शर्मा, हुआ है उस बारे में कुछ?

शर्मा : थोड़ा बहुत हुआ है... या नहीं भी हुआ, तो होने की आशा की जा सकती है। फिलहाल हम अपने आज के एजेंडा को ध्यान में रखें।

मोहन : आज का एजेंडा क्या है?

शर्मा : मैं उसी पर आ रहा हूँ।

ठोस सुझाव रखना चाहते हैं कि....मेरा मतलब है कि आबादी बढ़ जाने के कारण शहर बी ग्रेड से ए ग्रेड हो जाते हैं, लेकिन जहाँ तक हम लोगों का ताल्लुक है...कहना चाहिए कि लो ग्रेड वर्कर्ज की जिंदगी लो ग्रेड से लोअर ग्रेड होती जाती है, इसलिए हमारे लिए जरूरी है कि...और हमें सिर्फ प्रस्ताव ही पास नहीं करना, उसके लिए, उसे मनवाने के लिए, पूरी कोशिश भी करनी है कि एक–डेढ़ साल के अंदर...जैसे इतनी कॉलोनीज हैं, उसी तरह एक निम्नस्तर गृह–निर्माण योजना के अंतर्ग...।

कपूर : क्या? क्या?

शर्मा : निम्नस्तर गृह–निर्माण योजना....।

कपूर : इसका मतलब?

रमेश : घटियाँ किस्म के घर बनाने की स्कीम।

कपूर : (अविश्वास के स्वर में) नहीं–नहीं...।

सत्यपाल : घर बनाने की घटिया किस्म की स्कीम।

कपूर : नहीं–नहीं।

दीनदयाल : वह स्कीम, जिसके मातहत निचले दरजे के घर बनाये जायें।

प्रेमप्रकाश : निचले दरजे के घर तो सारे देश में हैं ही। उनके लिए सरकार को और स्कीम बनाने की क्या जरूरत है?

मनोरमा : ही मीन्स हाउसेज फॉर लो ग्रेड वर्कर्ज़।

कपूर : आई सी, आई सी।

शर्मा : तो कहने का मतलब है कि ऐसी एक योजना ही जिससे... वह सरकारी योजना भी हो सकती है और छोटे कर्ज़ों की योजना का हिस्सा भी... एक सुझाव था कि घर नीलाम किये

जायें, लेकिन मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ...क्योंकि नीलामी जो है, वह समाजवादी नीति नहीं है... उसमें बड़ा छोटे को निगल जाता है और छोटा...वैसे लाटरी भी डाली जा सकती है घरों की...पर योजना जो भी हो, ऐसी होनी चाहिए कि उसका लाभ हमारे सब सदस्यों को हो सके।

दीनदयाल,
प्रेमप्रकाश : हियर, हियर!

शर्मा : क्योंकि घर ऐसी चीज है, जो हर आदमी की बुनियादी जरूरत है, उसकी सुख–शांति का आधार है। आदमी काम करता है कमाने के लिए। कमाता है आराम पाने के लिए। और सही माने आराम वह तभी पा सकता है जब उसके पास अपना एक ऐसा घर हो जिसमें...सर्दी है जब उसके पास अपना एक ऐसा घर हो जिसमें...सर्दी हो या गर्मी, दुख हो या सुख...एक ऐसी जगह जहाँ...जहाँ...जहाँ पर वह...उन लोगों के साथ...उन लोगों के साथ जो कि उसका परिवार है...हममें से हरएक का अपना परिवार है...उस परिवार के साथ...वह आदमी...वह आदमी...।

आँखें गुरप्रीत के चेहरे पर अटक जाती है जिससे जबान और अटकने लगती है।

: मैं हर परिवार की बात नहीं कहता...कई बार...कुछ परिवारों में... कुछ ऐसे परिवार भी होते हैं...जिनमें...जिनमें...वह भी होता है...मतलब कलह–क्लेश होता है...पर क्यों होता है? उस कलह–क्लेश के कारण... उसके कारण...आदमी के लिए... किसी भी आदमी के लिए...घर की आवश्यकता...जो सुख–शांति वह चाहता है...उसकी आवश्यकता...एक अंदरूनी आवश्यकता...जैसे आज ही समाचार था...कि एक आदमी ने... अपने पूरे परिवार के साथ...पूरे परिवार को उसने जहर दे दिया...और उसके साथ...उसके बाद...स्वयं भी आत्महत्या करने का प्रयत्न किया है...।

रमेश, सत्यपाल : हियर, हियर!

कपूर : (डस्टर से मेज ठोकता हुआ) आर्डर–आर्डर!

शर्मा : जानने की बात यह है...कि ऐसा जब भी होता है...जब भी ऐसा होता है... तो उसके मूल में...यदि उसके मूल कारणों की खोज की जाये तो...तो पता चलेगा कि...कहीं–न–कहीं...अवश्य कहीं–न–कहीं...और यह बात किसी के लिए भी सच हो सकती है...कि कहीं–न–कहीं...कुछ–न कुछ ऐसा है कि...हो सकता है कि मैं अपने विषय से थोड़ा भटक गया हूँ...परंतु यह इसलिए है कि...यदि हम सोचना चाहें, तो पता चल सकता है कि...वह कुछ–न–कुछ क्या है।

जेब से रूमाल निकालकर माथे का पसीना पोंछता है।

दीनदयाल : शर्मा, पानी पी लो थोड़ा। राम भरोसे, शर्मा को एक गिलास पानी देना।

शर्मा : मुझे पानी नहीं चाहिए।

दीनदयाल : थोड़ा पी लो, तरावट आ जायेगी।

शर्मा : नहीं, नहीं। (राम भरोसे की तरफ) पानी नहीं चाहिए।

प्रेमप्रकाश : चाय मँगवा लो।

शर्मा : नहीं, चाय भी नहीं चाहिए। मैं जो बात आपके सामने रख रहा हूँ...।

कपूर : सीधे आज का परस्ताव ही क्यों नहीं पढ़ देते? जो बात है, वह सब लोग जानते हैं।

रमेश : बोल लेने दीजिए उन्हें। अगली मीटिंग जाने कब होगी!

सत्यपाल : शर्मा साहब, सीधे उस बात पर आ जाइए...जब से इंदिरा सरकार बनी है, तब से...।

रमेश : बल्कि उससे भी आगे से शुरू कीजिए...जब से आपने सेक्रेटरी–पद संभाला है, तब से...।

कपूर : आर्डर–आर्डर! शर्मा, तुम परस्ताव पढ़ दो अब।

संतोष : क्षमा कीजिए, परस्ताव नहीं, प्रस्ताव।

कपूर : परस्ताव।

संतोष : (जोर देकर) प्रस्ताव।

कपूर : (जोर देकर) परस्ताव।

दीनदयाल : पी ए आर ए एस नहीं, पी आर ए एस...प्रस्ताव।

कपूर : जो भी हो वह रेजोल्यूशन की हिंदी। वह पढ़ दो तुम।

शर्मा : तो मैं आपका अधिक समय न लेकर आपके सामने प्रस्ताव पेश कर रहा हूँ।

अपनी फाइल खोलता है। फिर उसे आगे–पीछे पलटने लगता है।

: प्रस्ताव है...प्रस्ताव था...।

रमेश : था, मतलब खो गया कहीं?

शर्मा : नहीं, इस फाइल में है...मतलब इसी फाइल में था... अभी सुबह मैंने ड्राफ्ट बनाया था...।

सत्यपाल : किसी और फाइल में तो नहीं है?

शर्मा : और किस फाइल में हो सकता है?

सत्यपाल : गुरप्रीत जी की फाइल देख लीजिए। उसमें हो शायद।

शर्मा : (सख्त पड़ कर) उनके पास कोई फाइल नहीं है।

सत्यपाल : तो हो सकता है, उनके बटुवे में हो।

गुरप्रीत : (सख्त पड़ कर) इनका प्रस्ताव मेरे बटुवे में? आप कहना क्या चाहते है?

सत्यपाल : नाराज होने की बात नहीं। क्योंकि प्रस्ताव खो गया है, इसलिए मैंने सोचा कि हो सकता है कि इधर–उधर पड़ा देख कर आपने अपने बटुवे में संभाल लिया हो।

गुरप्रीत : (उसी तरह सख्त) मेरे बटुवे में ऐसी फालतू चीजों के लिए जगह नहीं है।

रमेश : क्या कहा आपने? फालतू या पैंलतू?

गुरप्रीत : (और भी सख्त) रमेश चोपड़ा!

रमेश : प्रेजेंट मिस!

कपूर : आर्डर–आर्डर

दीनदयाल : शर्मा, फाइल में नहीं है, तो कहीं–न–कहीं तो होगा ही। एक बार पतलून की जेब में देख लो।

शर्मा : पतलून की जेब में कैसे हो सकता है? (दोनों जेबें टटोलता है) घर से चलते समय मैंने फाइल में रखा था। (जेबों का सामान निकालकर) पतलून में सिर्फ रूमाल है और तीस पैसे हैं...।

सत्यपाल : सिर्फ तीस पैसे? ह्वाट पिटी!

प्रेमप्रकाश : पतलून में नहीं है, तो कोट की जेबों में देख लो।

दीनदयाल : कोट की जेबें सिली हुई हैं। आज ही ड्राईक्लीन होकर आया लगता है।

प्रेमप्रकाश : तो, अंदर कमीज की जेब में हो शायद?

शर्मा : कमीज में जेब नहीं है। मैं जेब वाली कमीज नहीं पहनता।

प्रेमप्रकाश : फिर तो एक ही बात हो सकती है। भाग कर घर पर देख आओ। शायद बच्चों ने निकाल लिया हो।

दीनदयाल : बच्चों को प्रस्ताव का क्या करना है।

प्रेमप्रकाश : खेल रहे होंगे।

सत्यपाल : या वहाँ मोहल्ले में पेश कर रहे होंगे। हो सकता है, अब तक उन्होंने पास भी कर दिया हो।

कपूर : आर्डर–आर्डर...मेरा ख्याल है शर्मा, तुम जल्दी से नया ड्राफ्ट बना लो।

शर्मा : नया ड्राफ्ट? नया ड्राफ्ट बन सकता है, लेकिन...।

रमेश : उसके लिए इन्हें किताब चाहिए वह...वन हंड्रेड ड्राफ्ट रेजोल्यूशंज।

शर्मा : मैं किताब देखकर ड्राफ्ट नहीं बनाता।

सत्यपाल : ठीक बात है। वरना स्पेलिंग की इतनी गलतियाँ नहीं हो सकतीं।

कपूर : तुम साथ के कमरे में चले जाओ, शर्मा!

शर्मा : (चुनौती स्वीकारने के स्वर में) ठीक है। मैं अभी नया ड्राफ्ट बना कर लाता हूँ।

फाइल समेट कर दायीं तरफ के दरवाजे से चला जाता है। राम भरोसे आँख उठाकर उसे जाते देखता है, फिर सिर हिलाता है।

कपूर : (जम्हाई रोककर) उतनी देर अब क्या करना चाहिए?

दीनदयाल : आप बतायें।

कपूर : आप लोग बताइए।

दीनदयाल : जो चेयरमैन की रूलिंग हो।

कपूर : मैं काहे का चेयरमैन हूँ? चेरयमैन तो आज आया ही नहीं।

रमेश : आप अपना वह भाषण दे दीजिए – असूल कहता है कि...।

कपूर : नहीं–नहीं, बहुत हो चुका वह। बोर हो गये।

रमेश : आप भी बोर हो गये?

कपूर : मुझे खुद भी तो सुनना पड़ता है।

दीनदयाल : तो मनोरमा जी से कहा जाये, ये गीत सुना दें।

प्रेमप्रकाश : ये तो मीटिंग के अंत में सुनाती हैं।

दीनदयाल : हाँ–हाँ...आज पहले सुना दें।

प्रेमप्रकाश : (दबे स्वर में) पहले मोहन से कविताएँ सुन ली जायें।

दीनदयाल : मैं कहता हूँ, पहले गीत हो जाने दो।

प्रेमप्रकाश : मैं कहता हूँ, पहले कविताएँ हो जाने दो।

दीनदयाल : गीत में देर कम लगती है।

प्रेमप्रकाश : इसीलिए तो कह रहा हूँ। बाद में कविताओं में बहुत देर लग जाती है। (ऊँचे स्वर में) मेरा प्रस्ताव है कि मनोरमा जी गीत सुनायें।

रमेश : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

दीनदयाल : मेरा प्रस्ताव है कि मोहन अपनी कविताएँ सुनायें।

रमेश : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

संतोष : मेरा प्रस्ताव है कि सत्यपाल सब सदस्यों की नकलें सुनायें।

रमेश : मैं इसका भी समर्थन करता हूँ।

कपूर : और मेरा प्रस्ताव है कि गुरप्रीत जी जिस प्रस्ताव का समर्थन करें, वह प्रस्ताव मान लिया जाये।

दीनदयाल : इसका समर्थन कौन करता है?

कपूर : मैं खुद ही समर्थन भी करता हूँ।

प्रेमप्रकाश : आप खुद अपने प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकते, इसलिए आपका प्रस्ताव कैंसिल हुआ।

सत्यपाल : रमेश ने एक साथ दो–दो प्रस्तावों का समर्थन किया है, इसलिए वे दोनों प्रस्ताव भी कैंसिल हुए। अब सिर्फ दीनदयाल जी का प्रस्ताव रह जाता है कि मोहन अपनी कविताएँ सुनायें। (मोहन की तरफ देखकर) मोहन! अरे, इसे क्या हुआ है?

सब लोग देखते हैं कि मोहन आँखें मूँदकर डेस्क की पीठ से टेक लगाये है।

: मोहन!

मोहन हड़बड़ाकर आँखें खोलता है।

मोहन : क्या बात है?

सत्यपाल : उठ जाओ, तुम्हें कविताएँ सुनानी हैं।

मोहन : प्रस्ताव पास हो गया?

सत्यपाल : वह साथ के कमरे में ड्राफ्ट हो रहा है।

मोहन : कौन ड्राफ्ट कर रहा है?

सत्यापाल : शर्मा।

मोहन : तब ड्राफ्ट हो जाने दो। हो जाये, तो जगा देना।

सत्यपाल : पर इस बीच दूसरा प्रस्ताव पास हो गया है।

मोहन : क्या?

सत्यापाल : कि तब तक तुमसे तुम्हारी कविताएँ...।

शर्मा दायीं तरफ से आता है।

शर्मा : मिल गया।

कपूर : वही ड्राफ्ट जो खो गया था?

शर्मा : हाँ...बाहर कूड़े में था।

कपूर : कूड़े में?

शर्मा : आते हुए गिर गया होगा। जमादार ने झाड़ू से कूड़े में डाल दिया था।

कपूर : अच्छा है, मिल गया। वक्त की बचत हो गयी। अब तुम जल्दी से इसे पढ़ दो।

शर्मा पहले वाली जगह पर उसी मुद्रा में खड़ा हो जाता है।

शर्मा : (गला साफ करके) प्रस्ताव की रूपरेखा इस प्रकार है.... (कागज देखता है) हम, लो ग्रेड वर्कर्ज वेल्फेयर सोसाइटी के सब सदस्य...।

संतोष : मुझे आपत्ति है। जब प्रस्ताव हिंदी में है, तो संस्था का नाम भी हिंदी में होना चाहिए।

दीनदयाल : मुझे भी आपत्ति है। जब सब सदस्य यहाँ उपस्थित नहीं हैं, तो प्रस्ताव में सब सदस्यों का उल्लेख कैसे किया जा सकता है?

रमेश : मैं पहली आपत्ति का समर्थन करता हूँ।

सत्यपाल : मैं दूसरी आपत्ति का समर्थन करता हूँ।

कपूर : आप पहले पूरा ड्राफ्ट सुन लें। उसके बाद जो संशोदन करना हो, करें।

संतोष : संशोदन नहीं, संशोधन।

कपूर : संशोदन।

संतोष : धन धन धन... संशोधन।

कपूर : धन धन धन... संशोदन।

संतोष : सं...शो...धन।

कपूर : सं...शो...दन।

दीनदयाल : डी ए एन नहीं, डी एच् ए एन ।

कपूर : आप पहले पूरा ड्राफ्ट सुन लें। उसके बाद जो एमेंडमेंट करना हो करें।

संतोष : परंतु हिंदी के प्रस्ताव में संस्था का नाम अंग्रेजी में हो, यह राष्ट्रभाषा का अपमान है। आप इनसे कहिए, पहले नाम हिंदी में कर दें।

कपूर : क्यों शर्मा, लो ग्रेड वर्कर्ज वेल्फेयर सोसाइटी की हिंदी क्या है?

प्रेमप्रकाश : निचला दर्जा कामगार हितकारी सभा।

शर्मा : यह गलत है। इसकी असली हिंदी है – निम्नस्तर कर्मचारी–कल्याण समाज।

प्रेमप्रकाश : यह भी गलत है।

शर्मा : यह कैसे गलत है?

प्रेमप्रकाश : मेरे वाली हिंदी कैसे गलत है?

शर्मा : वह पुरानी हिंदी है, इसलिए गलत है।

प्रेमप्रकाश : यह मुश्किल हिंदी है, इसलिए गलत है।

शर्मा : आप हिंदी जानते हैं?

प्रेमप्रकाश : आप अंग्रेजी जानते हैं?

शर्मा : आप लड़ना चाहते हैं?

प्रेमप्रकाश : जी नहीं...आप...।

कपूर : दोस्तों, वक्त बहुत हो रहा है। काम जल्दी होने दीजिए। जल्दी करो, शर्मा।

शर्मा : मैं आपकी दोनों आपत्तियाँ स्वीकार कर रहा हूँ (संशोधन करके) तो अब प्रस्ताव इस प्रकार है... (कागज देखता है) हम, निम्नस्तर कर्मचारी कल्याण समाज के सब उपस्थित सदस्य..।

दीनदयाल : यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रस्ताव सर्व–सम्मति से पास होगा? इसलिए सब उपस्थित सदस्यों का उल्लेख भी नहीं किया जा सकता।

शर्मा : तो आप क्या चाहते हैं, मैं प्रस्ताव पेश न करूँ?

दीनदयाल : मैंने यह कहा है? मैंने तो कहा है, शब्द 'सब' बीच में नहीं होना चाहिए।

शर्मा : मैं जब तक प्रस्ताव पूरा नहीं पढ़ लेता, तब तक इसमें कोई संशोधन नहीं करूँगा।

रमेश : यह आप कैसे कह सकते हैं? अभी–अभी आपने दो संशोधन स्वीकार किये हैं।

सत्यपाल : और जब दो–दो संशोधन स्वीकार कर सकते हैं, तो तीसरा क्यों नहीं कर सकते?

कपूर : घड़ी पर नजर रखकर चलो, शर्मा!

शर्मा : तो लीजिए, मैं तीसरा संशोधन भी स्वीकार कर लेता हूँ (कागज देखता है) हम, निम्नस्तर कर्मचारी कल्याण समाज के उपस्थित सदस्य बहुत तीव्रता से यह अनुभव करते हैं कि सामाजिक पुनर्निर्माण की सरकारी नीतियों में हमारे हितों का ठीक से संरक्षण नहीं हो पा रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत देश के बदलते आर्थिक ढाँचे में निम्नस्तर कर्मचारियों के लिए समुचित निम्नस्तर आवास–व्यवस्था सरकार का एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह की...निर्वाह की...एक शब्द मिट गया है....क्या शब्द है?...निर्वाह की...।

बोध प्रश्न

(उपर्युक्त पाठ पर आधारित)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में सही उत्तर की क्रमसंख्या लिखकर दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

5) उस मांग का अब तक हुआ भी है कुछ?' इस कथन में किस मांग की ओर संकेत किया गया है?

   क) कर्मचारियों के बच्चों की उचित शिक्षा–व्यवस्था के लिए,

ख) कर्मचारियों के लिए ज्यादा–से–ज्यादा छोटे कर्जों के लिए,

ग) मुहल्ले की सफाई के लिए,

घ) अधिक समय तक काम करने के लिए अतिरिक्त भत्ते के लिए। ( )

6) 'पर इस बीच दूसरा प्रस्ताव पास हो गया है।' यह दूसरा प्रस्ताव क्या है?

क) कि बैठक स्थगित कर दी जाए,

ख) कि बैठक में सबके लिए जलपान की व्यवस्था की जाए,

ग) कि तब तक मोहन अपनी कविताएँ सुनाएँ,

घ) कि मनोरमा गीत सुनाएँ। ( )

7) शर्मा की फाइल से बैठक का खोया हुआ प्रस्ताव कहाँ मिलता है?

क) गुरप्रीत की फाइल में,

ख) शर्मा की पेंट की जेब में,

ग) कमरे के बाहर कूड़े में,

घ) शर्मा की फाइल से बच्चों ने निकाल लिया था। ( )

8) कपूर के गलत उच्चारण वाले किन शब्दों से शुद्ध हिंदी का मजाक उड़ाया गया है? उत्तरों में एक शब्द ऐसा है, जिसका प्रयोग कपूर ने नहीं किया था। उत्तर बताएँ –

क) परस्ताव,

ख) निमन,

ग) संशोदन,

घ) अधि अक्ष। ( )

कपूर : मिट कैसे गया?

शर्मा : पता नहीं कैसे....।

रमेश : ज़मादार की झाड़ू से मिट गया होगा।

शर्मा : निर्वाह की...निर्वाह की...किस उससे?

संतोष : दृष्टि से?

शर्मा : हाँ, हाँ...दृष्टि से सरकार को चाहिए कि शीघ्र–से–शीघ्र एक निम्नस्तर गृह–निर्माण योजना बनाकर सब ऐसे कर्मचारियों को, जिनकी कि सेवा पाँच साल से अधिक की है, छोटी–छोटी किस्तों पर एक–एक घर उप उप उप....।

दीनदयाल : एक और शब्द मिट गया?

शर्मा : पूरा नहीं मिटा। घर उप उप उप...।

दीनदयाल : उपद्रव?

शर्मा : उपद्रव कराने का बीड़ा...नहीं, यह नहीं हो सकता।

संतोष : उपलब्ध?

शर्मा : हाँ–हाँ...उपलब्ध कराने का बीड़ा उठाये।

कपूर : इतना ही है या और भी है?

शर्मा : है तो और भी, पर वह छोड़ा जा सकता है।

कपूर : जो छोड़ा जा सकता है, उसे छोड़ दो। तो सज्जनो, अब इसका समर्थन कौन करता है?

रमेश : समर्थन का क्या है, मैं समर्थन कर देता हूँ। (मास्टर की कुरसी के पास आकर) मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

लौट कर अपनी जगह चला जाता है।

मोहन : (बैठे–बैठे) मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। सब लोग घूम कर उसकी तरफ देखते हैं।

कपूर : इसका मतलब है, अभी और वक्त लगेगा।

प्रेमप्रकाश : तुम्हारी नींद कब खुली?

दीनदयाल : तुमने प्रस्ताव सुना भी है?

मोहन : सब सुना है, इसीलिए विरोध कर रहा हूँ।

दीनदयाल : प्रस्ताव में कहा क्या गया है?

मोहन : क्या कहा गया है?

दीनदयाल : तुम बताओ।

मोहन : आप बताइए।

दीनदयाल : कपूर साहब, आप बताइए इसे।

कपूर : मैं? मुझे तो हिंदी समझ में नहीं आती।

संतोष : प्रस्ताव अपने में बिल्कुल स्पष्ट है।

मोहन : क्या स्पष्ट है?

संतोष : क्या स्पष्ट नहीं है?

मोहन : बहुत कुछ स्पष्ट नहीं है।

संतोष : जैसे...।

मोहन : जैसे...।

कपूर : तुम्हें ज्यादा कुछ कहना है।

मोहन : बहुत कुछ कहना है।

कपूर : तो यहाँ शर्मा की जगह पर आ जाओ। शर्मा अनमने भाव से नीचे उतर जाता है। मोहन उसकी जगह खड़ा होता है।

मोहन : प्रस्ताव में तीन जगह एक शब्द आया है – निम्नस्तर। इसका अर्थ है, चूँकि आज हम निम्नस्तर के कर्मचारी हैं। हमारे लिए आवास–व्यवस्था हो, तो कैसी? निम्नस्तर की। हमारे लिए घर

बनायें जायें, तो कैसे? निम्नस्तर के। इसके बाद शायद हम लोग यह माँग करें कि हमारे निम्नस्तर बच्चों के लिए निम्नस्तर बाल–संरक्षण व्यवस्था के अंतर्गत निम्नस्तर पालन की एक योजना बनायी जाये जिससे हर ऐसे बच्चे को, जिसकी कि उम्र पाँच साल से अधिक की है, कम–से–कम आधा पाव दूध उपलब्ध हो सके।

रमेश : हियर–हियर!

कपूर : आपने प्रस्ताव का समर्थन किया है और उसके विरोध में भी हियर हियर कर रहे हैं?

रमेश : (पहले की तरह उठ कर और मास्टर की कुरसी के पास आकर) मैं अपना समर्थन वापस लेता हूँ।

वापस जा बैठता है।

शर्मा : आप अपना समर्थन वापस कैसे ले सकते हैं? समर्थन कभी वापस नहीं लिया जाता।

रमेश : क्यों नहीं लिया जाता?

सत्यपाल : जब प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है, तो समर्थन भी वापस लिया जा सकता है।

रमेश : मुझे विश्वास हो गया है कि आपका प्रस्ताव गलत है। इसलिए मैंने अपना समर्थन वापस ले लिया है।

कपूर : (मोहन से) तुम्हें और भी कुछ कहना है अभी?

मोहन : बहुत कुछ कहना है।

कपूर : (घड़ी देखकर उठता हुआ) तो मैं आप लोगों से इजाजत चाहूँगा। मुझे एक जगह पहुंचना है जरूरी...।

शर्मा : (आगे आकर) नहीं–नहीं, कपूर साहब!

कपूर : भई, देखो, शर्मा...!

शर्मा : नहीं–नहीं कपूर साहब!

कपूर : भई ऐसा है कि...।

शर्मा : (कपूर को बाँह से पकड़कर कुरसी पर बिठाता है) नहीं–नहीं, आप नहीं जा सकते।

कपूर : (मिन्नत और शिकायत के स्वर में) भई, मेरा बहुत जरूरी है जाना।

शर्मा : प्रस्ताव उससे ज्यादा जरूरी है।

कपूर : उससे ज्यादा जरूरी नहीं है।

शर्मा : उससे ज्यादा जरूरी है।

कपूर : नहीं है।

शर्मा : है।

कपूर : तुम किसी और को बना लो चेयरमैन थोड़ी देर के लिए।

शर्मा : आप रुख देख ही रहे हैं। आपके बगैर यह प्रस्ताव पास नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों नहीं हो सकता?

शर्मा : नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों नहीं हो सकता।

शर्मा : नहीं हो सकता।

कपूर : जहाँ मुझे पहुँचना है, वहीं बल्कि मनोरमा जी को भी पहुँचना है। पूछ लो इनसे।

फिर से उठने की चेष्टा करता है।

शर्मा : (फिर से उसे बिठाकर) तब तो आप हरगिज नहीं जा सकते। मनोरमा का वोट बहुत इंपार्टेंट है।

कपूर : (असहाय भाव से मनोरमा को देखता हुआ) आप क्या कहती हैं?

शर्मा : (उससे आँखें बचाती है) मैं कुछ नहीं कहती।

कपूर : सात बज गया है।

मनोरमा : मुझे आठ से पहले घर पहुँच जाना है।

कपूर : (फिर से उठता है) इसलिए, शर्मा...!

शर्मा : (फिर से बिठाता है) नहीं–नहीं, कपूर साहब!

मनोरमा : मैं यहाँ से सीधी घर जाऊँगी।

कपूर : सीधी घर जायेंगी?

मनोरमा : सीधी घर जाऊँगी।

कपूर : तो वह जहाँ चलना था?

मनोरमा : मै नहीं चल सकूँगी।

कपूर : क्या कह रही हैं?

मनोरमा : मै नहीं चल सकूँगी। आठ से पहले मेरा घर पहुँचना जरूरी है। बच्चों को खाना खिलाना है।

कपूर : वह तो साढ़े आठ भी खिलाया जा सकता है।

मनोरमा : आठ तक वे भी लौट आयेंगे।

कपूर : (निढाल होकर) तब तो...तब तो...खैर, ठीक है, शर्मा! तुम प्रस्ताव पास करा लो अपना। (मोहन से) बोलिए आप।

शर्मा : (मोहन से) बोलिए आप।

मोहन : सबसे पहले मैं आपका ध्यान इस चीज की ओर दिलाना चाहता हूँ कि हमारे अंदर यह निम्नस्तर की वृत्ति क्या है, क्यों है?

शर्मा : विषय से बाहर मत जाइए।

मोहन : आप बीच में मत बोलिए। यह निम्नस्तर की वृत्ति एक संक्रामक रोग की तरह है, जिसके कीटाणु...।

कपूर : जिसके क्या?

मोहन : कीटाणु...जर्म्स...हमारी नस–नस में फैल जाते हैं और रात–दिन दुगुने, चौगुने, सौगुने होते जाते हैं। इनसे आदमी की महत्वाकांक्षा मर जाती है, कार्य–शक्ति जवाब दे जाती है, किसी भी चीज को लेकर न कह सकने का साहस उसमें नहीं रह जाता। वह केवल दूसरों का मुँह ताकने और हाँ–हाँ करने की एक मशीन में बदल जाता है जिसका सारा ध्यान निम्नस्तर की कुछ आवश्यकताओं को छोड़कर और किसी चीज पर नहीं टिक पाता। परिणाम होता है कुछ निम्नस्तर की माँगें, कुछ निम्नस्तर के प्रस्ताव...।

रमेश, सत्यपाल : (डेस्क थपकते हैं) हियर–हियर!

शर्मा : यह मुझे गाली है।

मोहन : यह गाली नहीं है।

शर्मा : गाली है।

मोहन : गाली नहीं है।

शर्मा : है।

मोहन : नहीं है।

दीनदयाल : मिस्टर चेरयमैन, आप फैसला कीजिए, यह गाली है या नहीं है?

कपूर : यहाँ हिंदी–से–हिंदी की डिक्शनरी मिल सकती है?

प्रेमप्रकाश : डिक्शनरी की क्या जरूरत है? संतोष जी यहाँ हैं।

कपूर : क्यों, संतोष जी...?

संतोष : निम्नस्तर के दो अर्थ हैं। एक न्यून स्तर। दूसरा हीन स्तर।

कपूर : उन दोनों के क्या अर्थ हैं।

कपूर : माफ कीजिए, जितने भी अर्थ हैं, उनमें कोई गाली तो नहीं है?

संतोष : गाली हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। यह शब्द का प्रयोग करने वाले की भावना पर है।

कपूर : मिस्टर मोहन, आपकी भावना गाली देने की थी?

मोहन : बिल्कुल नहीं।

कपूर : तो आगे चलिए। (शर्मा से) इन्होंने गाली नहीं दी।

शर्मा : इन्होंने मेरे प्रस्ताव को निम्नस्तर का कहा है।

कपूर : यार, यही लफ़्ज़ तुमने भी तीन बार इस्तेमाल किया है। अब आगे चलने दो। (मोहन से) चलिए।

मोहन : यह निम्नस्तर की वृत्ति हमारे अंदर इस तरह घर कर गयी है कि हमारी जीवन–संबंधी धारणा ही निम्नस्तर की होकर रह गयी है। हम हँसते हैं, तो वह हँसी निम्नस्तर की होती है। प्रेम करते हैं, तो वह प्रेम निम्नस्तर का होता है....।

मनोरमा : आप किस विषय में बोल रहे हैं? प्रस्ताव से इन बातों का कोई संबंध नहीं है।

मोहन : संबंध है।

मनोरमा : नहीं है।

मोहन : है।

गुरप्रीत : (उठती हुई) भई, मैं जा रही हूँ। आप लोग प्रस्ताव पास करते रहिए।

मनोरमा : (उठती हुई) मैं भी चल रही हूँ। यहाँ मीटिंग नहीं होती, बस यही सब होता है।

शर्मा : (खड़ा होकर) जाइए नहीं, मैं दस मिनट में मीटिंग खत्म कर रहा हूँ। वे दोनों दायीं तरफ से निकल जाती हैं।

शर्मा : सुनिए, मनोरमा जी...!

कपूर : ठहरिए, गुरप्रीत जी...!

कुरसी छोड़कर उन दोनों के पीछे जाने लगता है, पर शर्मा उसे बाँह पकड़ कर रोक लेता है।

शर्मा : कम–से–कम आप तो मत जाइए।

कपूर : लेकिन, शर्मा....!

शर्मा : (उसे कुरसी पर बिठाता है) अब साथ ही चलेंगे थोड़ी देर में।

कपूर : (निढाल होकर मोहन से) आपको और भी कुछ कहना है अभी?

मोहन : केवल इतना कहना है कि इस निम्नस्तर की वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए हमें प्रस्ताव यह पास करना चाहिए कि आज से हम कहीं भी, किसी भी रूप में अपने साथ इस शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे। इसलिए सबसे पहले हम अपनी संस्था का नाम बदलकर.....।

शर्मा : जब तक पहले प्रस्ताव पर विचार नहीं हो जाता, तब तक आप दूसरा प्रस्ताव पेश नहीं कर सकते।

मोहन : यह दूसरा प्रस्ताव नहीं है।

शर्मा : बिल्कुल दूसरा प्रस्ताव है।

मोहन : नहीं है।

कपूर : (मेज पर मुक्का मारता है) है–है–है! मैं आपको अब और बोलने की इजाजत नहीं दे सकता। आप अपनी जगह लौट जाइए।

मोहन : लेकिन, अध्यक्ष महोदय...!

कपूर : आप अपनी जगह पर लौट जाइए। मैं अब शर्मा के प्रस्ताव पर वोट लूँगा।

रमेश : आप वोट नहीं ले सकते। क्योंकि और लोगों को भी प्रस्ताव पर बोलना है।

कपूर : अब उसके लिए वक्त नहीं है।

सत्यपाल : पर वक्त क्यों नहीं है?

कपूर : क्योंकि नहीं है।

सत्यपाल : पर क्यों नहीं है?

कपूर : आप एक लाइन में कहिए, आपको क्या कहना है।

सत्यपाल : मैं एक लाइन में नहीं कह सकता।

कपूर : तो मत कहिए।

मोहन : लेकिन, अध्यक्ष महोदय...!

कपूर : (गुस्से से) आपसे कहा है, आप लौट जाइए अपनी जगह पर।

मोहन : आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

कपूर : आप चेयर का अपमान कर रहे हैं।

मोहन : आपको इस तरह बोलने का कोई अधिकार नहीं है।

कपूर : आपको इस तरह खड़े रहने का कोई अधिकार नहीं है। जो लोग प्रस्ताव के हक में हैं, वे लोग अपने हाथ...।

मोहन : आप प्रस्ताव पर वोट नहीं ले सकते। पहले आप अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगें।

कपूर : मुझे किसी से क्षमा नहीं माँगनी है। जो लोग हक में हैं...।

सत्यपाल : आप वोट नहीं ले सकते, क्योंकि अभी तक प्रस्ताव का समर्थन नहीं हुआ।

शर्मा : समर्थन हो चुका है।

रमेश : नहीं हुआ। मैंने अपना समर्थन वापस ले लिया है।

कपूर : दीनदयाल जी, आप समर्थन कर दें।

दीनदयाल : मैं समर्थन करता हूँ।

सत्यपाल : आप फिर भी वोट नहीं ले सकते, क्योंकि मुझे अभी प्रस्ताव के बारे में अपने विचार सामने रखने हैं।

शर्मा : आप अपने विचार सामने नहीं रख सकते, क्योंकि आप इस समय सदस्य नहीं हैं। आपका चंदा अभी तक नहीं आया है।

रमेश : जिस दिन आप सेक्रेटरी चुने गये थे, उस दिन आपका भी चंदा नहीं आया था, और आप सदस्य नहीं थे। जो सदस्य न हो, वह सेक्रेटरी कैसे बन सकता है? मैं सेक्रेटरी के चुनाव को चैलेंज करता हूँ।

सत्यपाल : बल्कि जिस दिन यह संस्था बनी थी, और पदाधिकारियों का चुनाव किया गया था, उस दिन किसी का भी चंदा नहीं आया था और कोई भी सदस्य नहीं था। इसलिए मैं इस संस्था के पूरे चुनाव को चैलेंज करता हूँ।

रमेश : और क्योंकि तब के चुने हुए पदाधिकारी इस संस्था को चला रहे हैं, इसलिए मैं इस संस्था को चैलेंज करता हूँ।

कपूर : (डस्टर से मेज को ठोंकता हुआ) आर्डर–आर्डर–आर्डर! मैंने वोटिंग के लिए कह दिया है। जिन लोगों को एतराज है, वे चाहें तो वाक–आउट कर सकते हैं।

रमेश : हम वाक–आउट नहीं करेंगे।

संतोष : (उठती हुई) आप लोग कार्यवाही जारी रखिए। मुझे जाने की अनुमति चाहिए।

मोहन : (नीचे आकर) ठहरिए, संतोष जी! मुझे भी उधर ही जाना है।

संतोष : (बाहर निकलती) आप अपना देख लीजिए। मैं अब और नहीं रुकूँगी।

पल–भर की खामोशी। मोहन अनिश्चित भाव से उसकी तरफ देखता है।

मोहन : (आकस्मिक ढंग से) मै वाक आउट कर रहा हूँ।

जल्दी से संतोष के पीछे निकल जाता है। उसके बाद भी पल–भर खामोशी रहती है।

कपूर : (अपने को सहेज कर) तो अब...।

शर्मा : (पस्त भाव) अब कुछ नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों?

शर्मा : क्योंकि कोरम पूरा नहीं है।

कपूर : लेडीज़ एंड जेंटलमेन...!

प्रेमप्रकाश : माफ कीजिए, लेडीज़ सब चली गयी हैं, सिर्फ जेंटलमेन बाकी हैं।

कपूर : तो...तो जेंटलमेन, मुझे अफसोस है कि कोरम पूरा न होने से मीटिंग अब जारी नहीं रह सकती। मैं मीटिंग बरखास्त करता हूँ।

खलबली–सी मच जाती है। रमेश और सत्यपाल डेस्कों पर हाथ मारते हुए शेम–शेम के नारे लगाते हैं। पहले कपूर और शर्मा, फिर प्रेमप्रकाश और दीनदयाल कमरे से चले जाते हैं। रमेश और सत्यपाल को जरा बाद में ध्यान आता है कि वे खाली कमरे में शेम–शेम कर रहे हैं। वे दोनों अचानक हाथ रोक कर एक–दूसरे की तरफ देखते हैं, ठहाका लगाते हैं और बाहर चले जाते हैं।

श्याम भरोसे ऊँघ रहा है। राम भरोसे उसे हिलाता है।

राम भरोसे : उठ भइया, श्याम भरोसे! तमाशा खतम हुआ।

श्याम भरोसे : (जाग कर) बाबू लोग चले गये?

राम भरोसे : चले गये।

श्याम भरोसे : क्या–क्या पास कर गये?

राम भरोसे : पास कर गये कि राम भरोसे, राम भरोसे के घर में रहेगा, श्याम भरोसे, श्याम भरोसे के घर में। और बाबू लोग अपने–अपने घर में रहेगें।

श्याम भरोसे की आँखें फैल जाती हैं।

श्याम भरोसे : और?

राम भरोसे : और कि मूँगफली के आधे छिलके राम भरोसे साफ करेगा, आधे श्याम भरोसे।

श्याम भरोसे आँखें झपकाता है।

श्याम भरोसे : और कुछ नहीं?

राम भरोसे : कुछ नहीं। (उसे बगल से पकड़कर सीधा खड़ा करता हुआ) अब सीधा हो जा। बहुत कूड़ा कर गये हैं। साफ करना है!

एक झाड़न श्याम भरोसे के हाथों में देता है। दोनों फिर कुरसियाँ झाड़ने लगते हैं।

परदा गिरता है।

बोध प्रश्न

(उपर्युक्त पाठ पर आधारित)

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में क्रमसंख्या के निर्देश द्वारा दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से जांच कर देख लें।

9) रमेश प्रस्ताव के अपने समर्थन को क्यों वापस लेना चाहता है?

क) उसकी अव्यावहारिकता को देखकर,

ख) उसमें तीन बार निम्न स्तर शब्द के प्रयोग के कारण,

ग) कर्मचारी विरोधी होने के कारण,

घ) शर्मा के साथ अपने मतभेद के कारण। ( )

10) 'यहाँ हिंदी–से–हिंदी की डिक्शनरी मिल सकती हैं?' यह कहकर कपूर ने अपनी किस भावना या जरूरत का परिचय दिया है?

क) शुद्ध हिंदी का मखौल उड़ाने के लिए,

ख) हिंदी से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करने के लिए.

ग) निम्नस्तर का सही अर्थ समझने के लिए,

घ) यह जानने के लिए कि निम्नस्तर शब्द गाली है या नहीं। ( )

11) 'पास कर गए कि राम भरोसे, राम भरोसे के घर में रहेगा, श्याम भरोसे श्याम भरोस के घर में और बाबू लोग अपने–अपने घर में रहेंगे।' राम भरोसे के इस कथन द्वारा एकांकीकार ने किस आशय को संकेतित किया है?

क) निम्न वेतन–भोगी कर्मचारियों के आपसी हितों की टकराहट का,

ख) कर्मचारी संगठनों की निरर्थकता का,

ग) कर्मचारियों के बीच एकता के अभाव का,

घ) कर्मचारियों में जागरूकता के अभाव का। ( )

3.3 कथासार

इस एकांकी में कथा और घटनाओं का नितांत अभाव है। इसमें लो ग्रेड वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी की एक बैठक को विषय बनाया गया है। बैठक की एक महत्वपूर्ण औपचारिकता को नजरंदाज करते हुए उसके एजेंडे से भी सदस्यों को पहले से अवगत नहीं कराया गया है। बैठक की व्यवस्था स्कूल के एक छोटे से कमरे में की गयी है, जिसमें ब्लैक बोर्ड को हटाकर कोने में रख दिया गया है। इसमें अध्यक्ष के लिए मास्टर की मेज और सदस्यों के लिए बच्चों के डेस्क की व्यवस्था है। पर्दा उठने के बाद रोजमर्रा के एकरस कामों से ऊबे हुए राम भरोसे और श्याम भरोसे कुर्सी–मेज और डेस्कों से धूल झाड़ते हुए दिखाए गए हैं। श्याम भरोसे की शिकायत पर कि इतनी धूल क्यों उड़ाता है, राम भरोसे जबाव देता है :

राम भरोसे : ससुर रोज–रोज मीटिंग होंगी, तो किसकी जान रहेगी? आज एक का जन्म–दिवस होकर निकलता है तो कल दूसरे का मरन–दिवस। जनमें मरें ये, धूल खाएँ राम भरोसे, श्याम भरोसे (जोर–जोर से झाड़ता हुआ) सबेरे निकालो, तो शाम को चली आती है। शाम को निकालो, तो सबेरा नहीं होने देती।

श्याम भरोसे : आज भी किसी का जनम–दिवस है क्या?

राम भरोसे : पता नहीं, कौन दिवस है? अपना तो मरन–दिवस है।

इसे बैठक की निरर्थकता का पूर्वाभास माना जा सकता है, जिसे समय पर उपस्थित होकर संगठन का सेक्रेटरी शर्मा और अधिक गहरा बना देता है। 'लोग समझते हैं, मेरे बाप के घर का काम है। कोई एक आदमी वक्त से नहीं आता।' कुछ सदस्यों के आने

पर भी बैठक के बारे में कोई बात न होकर आपस में नोक–झोंक, एक–दूसरे पर छींटाकशी, अनुपस्थित अध्यक्ष के चरित्र पर लांछन आदि को लेकर बहस चलती है, चाय और मूँगफली का दौर चलता है। एकांकी का एक तिहाई भाग इन्हीं निरर्थक बातों में उलझ कर रह जाता है।

संगठन के अध्यक्ष की अनुपस्थिति में एक साधारण सदस्य कपूर को अध्यक्ष बनाकर बैठक आरंभ करने का प्रयास किया जाता है। लेकिन 'भाईयो और बहनो' के संबोधन पर आपत्ति की जाती है, जिस पर लम्बी बहस चलती है। 'लेडीज़ एंड जेंटलमेन' की तर्ज पर 'बहिनो और भाइयो' को सही संबोधन स्वीकर कर लेने पर भी कार्यवाही चल नहीं पाती। संबोधन पर इस तरह की आपत्ति और उसके पक्ष–विपक्ष का समर्थन संगठन के सदस्यों की अगंभीरता का परिचायक है।

ले–देकर जब सेक्रेटरी द्वारा कार्यवाही का आरंभ होता है, तो मूल प्रस्ताव के पूर्व भूमिका के रूप में लम्बे, उबाऊ, असम्बद्ध और अनर्गल भाषण पर बीच में रोक–टोक, टीका–टिप्पणी होती रहती है। किसी प्रकार यह उबाऊ धंधा खत्म होता है और पारित होने के लिए प्रस्ताव पढ़ने की बात आती है, तो प्रस्ताव ही सेक्रेटरी की फाइल से गायब हो जाता है। उसे कभी पतलून की जेब में, कभी कोट की जेब में यहाँ तक कि गुरप्रीत के बटुवे में होने की बात कही जाती है। अंततः वह मिलता है, सफाई के बाद इकट्ठा किए गए कूड़े में। प्रस्ताव के प्रारुप का पहला, किंतु अधूरा वाक्य है, "हम, लो ग्रेड वर्कर्स वेल्फेयर सोसाइटी के सभी सदस्य...।" वाक्य पूरा भी नहीं हो पाता तब तक संशोधन के रूप में दो आपत्तियाँ इस प्रकार उपस्थित की जाती हैं:

संतोष : मुझे आपत्ति है। जब प्रस्ताव हिदीं में है तो संस्था का नाम भी हिंदी में होना चाहिए।

दीनदयाल : मुझे भी आपत्ति है। जब सब सदस्य यहाँ उपस्थित नहीं हैं, तो प्रस्ताव में सब सदस्यों का उल्लेख कैसे किया जा सकता है।

इन दोनों संशोधनों का समर्थन भी दो सदस्य कर देते हैं। संतोष के यह कहने पर कि जब संस्था का प्रस्ताव हिंदी में है तब उसका अंग्रेजी में नाम होना राष्ट्र भाषा का अपमान है, तो हिंदी में सही नाम की खोज शुरू हो जाती है। बहुत वाद–विवाद के बाद दोनों संशोधनों को स्वीकार करते हुए प्रस्ताव पढ़ा जाता है। प्रस्ताव में प्रयुक्त तीन स्थानों पर 'निम्नस्तर' शब्द को लेकर लम्बी बहस छिड़ जाती है, जिसका अर्थ जानने के लिए अध्यक्ष द्वारा डिक्शनरी की खोज और संतोष से स्पष्टीकरण की मांग की जाती है। बहस को लम्बा खिंचते देख और पक्ष–विपक्ष में मतदान की स्थिति में बहुत से सदस्य खिसक जाते हैं। अंततः कोरम के अभाव में अध्यक्ष द्वारा मीटिंग बरखास्त कर दी जाती है। बैठक के बाद श्याम भरोसे द्वारा यह पूछे जाने पर कि बाबू लोग क्या पास कर गए तो राम भरोसे कहता है, 'पास कर गए कि राम भरोसे, राम भरोसे के घर में रहेगा, श्याम भरोसे, श्याम भरोसे के घर में। और बाबू लोग अपने अपने घर में रहेंगे।' यह कथन बैठक की निरर्थकता को पूरी तरह उद्‌घाटित करता है।

3.4 कथ्य या अंतर्वस्तु

कथा के सार को पढ़कर आपने इसकी अंतर्वस्तु के संबंध में कुछ अनुमान अवश्य लगा लिया होगा। वस्तुतः इस एकांकी में लेखक ने निम्न वेतन–भोगी कर्मचारियों की

मध्यवर्गीय, विशेष रूप से निम्न मध्यवर्गीय मनोवृत्ति का कई कोणों से विश्लेषण किया है। पूरे देश में इस प्रकार के कर्मचारी एकजुट होकर अपनी समस्याओं के समाधान के लिए कभी सामूहिक संघर्ष नहीं कर सकते। वे आपस में ही लड़ते–झगड़ते हुए एक–दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं, दूसरों की त्रुटियों की छानबीन करते हैं, अपनी बड़ी–से–बड़ी त्रुटि पर पर्दा डालते हैं या उसका औचित्य सिद्ध करते हैं। इसे ही एकांकीकार ने अपना विषय बनाया है।

इस एकांकी की अंतर्वस्तु का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है, आधुनिकतावादी भावबोध की अलगाव की भावना। प्रस्तुत एकांकी के सभी पात्र, राम भरोसे, श्याम भरोसे को छोड़कर अलग–अलग व्यक्ति हैं, जो एक दूसरे को अपना विरोधी मानते हैं। वे अपने–अपने हितों को भी एक दूसरे से अलग मानते हैं। परस्पर ईर्ष्या–द्वेष उन सभी की एक समान विशेषता है। अवसरवादिता, अस्थिरता और अनिर्णय की अपनी स्थिति के कारण इस तथाकथित संगठन के सभी पात्र वृहत्तर समाज रूपी मशीन के पुर्जे बनकर रह गए हैं। समाज की इस वास्तविकता को ही एकांकीकार ने 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक एकांकी की अंतर्वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः अलगाव, निरर्थकताबोध आदि आधुनिकतावादी भावबोध को भी इस एकांकी का एक विषय माना जा सकता है।

3.5 चरित्र–विधान

आपको 'पूस की रात' कहानी और एक व्यंग्य निबंध के द्वारा चरित्र–विश्लेषण के महत्व से परिचित कराया जा चुका है। यहाँ आप एकांकी के चरित्र–विधान का अध्ययन करने जा रहे हैं। पात्रों का चरित्र–चित्रण कहानी की भाँति ही एकांकी का भी एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। कथा–तत्व की न्यूनता और घटनाओं के अभाव में यह एकांकी पात्रों का एक अजायबघर बनकर रह गया है। राम भरोसे और श्याम भरोसे को छोड़कर किसी भी पात्र में जीवतंता की वास्तविक हरकत दिखाई नहीं देती। शर्मा मंच पर पहुंचते ही अपनी अहंवादी अनुदारता का परिचय राम भरोसे और श्याम भरोसे के प्रति व्यवहार द्वारा दे देता है। यही स्थिति मनोरमा और संतोष की भी है, जो मंच पर पहुँचते ही अपने छिछलेपन और अवसरवादी प्रकृति का परिचय दे देती हैं। गुरप्रीत ही ऐसी पात्र है, जो एकांकी में अंत तक अपनी शालीनता का परिचय देती है। वह एक ओर मीटिंग के लिए चिंतित दिखाई देती है, तो दूसरी ओर अन्य सदस्यों द्वारा परनिंदा और दूसरों पर कटाक्ष के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करती है। वह प्रायः 'फ्लीज' या 'प्लीज! प्लीज! प्लीज!' और 'दिस इज टूमच' जैसे शब्दों, वाक्यांशों के माध्यम से ही अपना विरोध प्रकट करती है। अनुपस्थित अध्यक्ष के चरित्र हनन से संबंधित वार्तालाप से अत्यंत खिन्न होकर ही उसने दो वाक्य बोले हैं, "मैं इसी लिए आप लोगों की मीटिंग में नहीं आना चाहती थी। यहाँ काम तो कुछ होता नहीं, बस इसी तरह की बातें होती रहती हैं।'' इस प्रकार की बातों से तंग आकर वह सेक्रेटरी शर्मा से पूछती है, 'मैं जान सकती हूँ मीटिंग कब शुरू होगी?' 'मुझे आज मीटिंग होती नहीं दिखाई देती। मीटिंग को असफल होते देख वह सबसे पहले वहां से चली जाती है।

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में मीटिंग की अध्यक्षता करने वाला कपूर भी अपनी नियत और प्रकृति का पूरा परिचय रंगमंच पर उपस्थित होते ही अपने 'वाह, वाह! कथन द्वारा दे देता है। अपने वाह–वाह का आशय बताते हुए उसने कहा है, 'मैं तो इस पर

वाह–वाह कर रहा था कि शर्मा तीन–तीन लेडीज़ से घिरा हुआ है। सेक्रेटरी होने के ये मजे होते हैं।' मनोरमा और गुरप्रीत के प्रति अपने रुख और अनुपस्थित अध्यक्ष की निंदा द्वारा अपने मूलभूत चरित्र को वह पूरी तरह प्रकट कर देता है। शेष पात्रों में प्रेमप्रकाश, दीनदयाल, रमेश, मोहन, सत्यपाल आदि सभी एक विशेष निम्न मध्यवर्गीय प्रवृत्ति से संचालित हैं। इस एकांकी में राम भरोसे और श्याम भरोसे–दो ऐसे निम्नवर्गीय पात्र भी हैं, जो कमरे की साफ–सफाई के बाद दरवाजे के बाहर रहकर और एकांकी के आरंभ तथा अंत में उपस्थित होकर पूरे एकांकी के साथ ही उसमें उपस्थित सभी पात्रों की मूल संवेदना को उद्‌घाटित करते हैं। अपनी असहायता और अभावग्रस्तता के बावजूद ये दोनों पात्र जीवन के यथार्थ से परिचित दिखाए गए हैं।

3.6 परिवेश

अब तक आपने एक कहानी और एक निबंध के माध्यम से रचना–युगीन परिवेश के महत्व से परिचय प्राप्त कर लिया है। यहाँ आप भारतीय समाज और राजनीति के सातवें दशक विशेषकर इंदिरा सरकार के बनने के बाद के परिवेश का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस काल का स्पष्ट उल्लेख सत्यपाल नामक पात्र द्वारा एकांकी में हुआ है। वस्तुतः स्वाधीनता के बाद भारतीय समाज में जायज–नाजायज सभी प्रकार की स्वतंत्रता की भावना को स्वच्छंदता के रूप में बढ़ावा मिला। साठ के बाद के दशक में यह प्रवृत्ति अत्यंत बलवती हुई। स्वाधीनता से पूर्व शिक्षित मध्यवर्ग के एक बड़े समुदाय में जो प्रगतिशीलता और जागरूकता की भावना थी, वह स्वाधीनता के बाद धीरे–धीरे कुंठित होने लगी। साठ के बाद उसमें और अधिक गिरावट आई। सरकारी नौकरियों में कार्यरत मध्यवर्ग, विशेष रूप से शिक्षित निम्न मध्यवर्ग में एक विशेष प्रकार की मानसिकता का विकास हुआ। वह निम्न वर्ग के साथ अपना तालमेल बैठा नहीं सकता था और उच्च मध्यवर्ग की तरह उच्च वर्ग में प्रवेश करने की महत्वकांक्षा को भी पाल नहीं सकता था। अतः वह नीचे और ऊपर दोनों तरफ से कट कर अंतर्मुखी अर्थात् अपने–आप में सीमित और बंद होने लगा। एक औपचारिकता की पूर्ति के लिए उसने बहुत ही सीमित क्षेत्र के कल्याणकारी संगठनों का निर्माण भी किया, लेकिन सामूहिक एकता, व्यापक सरोकार और दायित्वहीनता के कारण इस प्रकार के संगठन प्रायः निर्जीव ही बने रहे। ऐसे परिवेश के शिक्षित निम्नमध्यवर्ग के एक छोटे से तबके या समुदाय को चुन कर मोहन राकेश ने उसे अपने एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' का विषय बनाया है।

अपने युगीन परिवेश के साथ किसी रचना में लेखक की अपनी मानसिकता का भी विशेष योगदान होता है। 1924 में जन्मे मोहन राकेश और 1925 में जन्मे हरिशंकर परसाई समकालीन रहे हैं। लेकिन अपने युगीन परिवेश के संदर्भ दोनों की मानसिक प्रतिक्रियाओं में पर्याप्त अंतर मिलेगा। परसाई में एक गहन राजनीतिक चेतना, व्यवस्था के विरोध का तीखा स्वर और सामाजिक प्रतिबद्धता मिलेगी, उसके दर्शन मोहन राकेश में नहीं होते। अतः अपनी सीमित, व्यक्ति केंद्रित, मानसिकता के कारण उनके एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' के अधिकांश पात्र अलग–थलग, आत्मबद्ध, एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या से ओतप्रोत होकर कर्मचारी संगठन जैसी सार्थक संस्था को हास्यास्पद बना देते हैं। उसकी बैठकों को अपनी भड़ास निकालने का एक माध्यम बनाना अपने परिवेश के प्रति लेख के नितांत तटस्थ और उदासीन दृष्टिकोण का परिचायक है।

3.7 शीर्षक

आपके समक्ष पिछली इकाई में 'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक की व्यंग्यात्मकता पर विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ एकांकी के संदर्भ में 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक की सार्थकता पर विचार किया जा रहा है। वस्तुतः यह शीर्षक भी व्यंग्यात्मक है, जो एकांकी की अंतर्वस्तु को व्यंग्यमूलक बनाते हुए रचना के प्रतिपाद्य के साथ अत्यंत कुशलतापूर्वक जोड़ा गया है। अधिकांश पाठक और प्रायः आलोचक भी, 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक को कर्मचारियों के हित से संबंध रखने वाले बड़े–बड़े सवालों या देश के सामने उपस्थित बड़े–बड़े मुद्दों से जोड़कर देखते हैं। इस एकांकी में निम्न वेतन भोगी कर्मचारियों की आवास–व्यवस्था का मुद्दा भी बैठक के प्रस्ताव का प्रमुख सवाल या मुद्दा ही है। बावजूद इसके, यह शीर्षक इस तरह के सवालों के महत्व को रेखांकित नहीं करता।

वस्तुतः इस एकांकी में सबसे बड़े सवाल के रूप में निम्न वेतन भोगी कर्मचारियों के माध्यम से शिक्षित निम्न मध्यवर्गीय मानसिकता पर कटाक्ष किया गया है। इनके बीच एकता का अभाव, अपने सामूहिक हितों के प्रति उदासीनता, अनुउत्तरदायित्वपूर्ण वाद–विवाद, एक दूसरे को नीचा और हीन दिखाने की प्रवृत्ति, संगठित संघर्ष की अक्षमता आदि को इस एकांकी में 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक के द्वारा रेखांकित किया गया है। यही वह बहुत बड़ा सवाल है, जो आवास से संबंधित मुद्दे पर होने वाली बैठक को निरर्थक बना देता है। यहाँ सवाल अपने व्यंग्यार्थक आशय में निम्न मध्यवर्गीय चरित्र को ही अधिक रेखांकित करता है। इसे हम एकांकी के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए अधिक विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

बोध प्रश्न

अब तक आपने एकांकी के मूल पाठ के वाचन के साथ ही उसके कथासार, उसकी अंतर्वस्तु, उसके चरित्र–विधान, परिवेश और शीर्षक से संबंधित सामग्री का अध्ययन कर लिया है। इनसे संबंधित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में क्रमसंख्या के निर्देश द्वारा दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

12) 'भाइयो और बहनो' संबोधन पर सबसे पहले किस पात्र ने आपत्ति की?

क) रमेश ने,

ख) मोहन ने,

ग) सत्यपाल ने

घ) प्रेमप्रकाश ने। ( )

13) अध्यक्ष की अनुपस्थिति में मीटिंग के लिए किसे अध्यक्ष बनाया गया?

क) दीनदयाल को,

ख) मोहन को,

ग) कपूर को,

घ) प्रेमप्रकाश को। ( )

14) मीटिंग की अध्यक्षता करने वाला कपूर किस जरूरी काम से जल्दी जाना चाहता है?

क) बाजार से कुछ खरीदने के लिए,

ख) मनोरमा के साथ किसी पूर्वनिश्चित स्थान पर जाने के लिए,

ग) घर पहुँचने के लिए,

घ) बाहर से आये हुए किसी मित्र से मिलने के लिए। ( )

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खाली छोड़े गए स्थान में दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

1) प्रस्ताव के पहले वाक्य पर प्रस्तुत किए गए दो संशोधनों का चार पंक्तियों में उल्लेख करें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मीटिंग के प्रस्ताव में तीन जगह 'निम्नस्तर' के प्रयोग को लेकर मोहन ने क्या आपत्ति की है? उत्तर छह पंक्तियों में दें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) एकांकी की अंतर्वस्तु को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) इस एकांकी के चरित्र–विधान की विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) एकांकी में चित्रित गुरप्रीत के चरित्र की विशेषता पर पाँच पंक्तियों में अपने विचार प्रस्तुत करें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) अपने समकालीन परिवेश के प्रति मोहन राकेश और हरिशंकर परसाई की मानसिक प्रतिक्रिया के अंतर को 8 पंक्तियों में स्पष्ट करें। (इसके लिए इकाई–2 के परिवेश चित्रण को भी देख लें)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7) 'सबसे बड़ा सवाल' शीर्षक के मूल आशय को स्पष्ट करते हुए उसकी सार्थकता पर अपने विचार छह पंक्तियों में व्यक्त करें –

.....

.....

.....

.....

.....

3.8 संरचना–शिल्प

आपने अब तक एक कहानी 'पूस की रात' और व्यंग्य निबंध 'वैष्णव की फिसलन' के संरचना शिल्प पर विचार किया है। यहाँ आप एक एकांकी के संरचना–शिल्प पर विचार करने जा रहे हैं। वैसे तो आपने देखा होगा कि कहानी और निबंध में भी पात्रों के वार्तालाप में संवाद योजना की जाती है। लेकिन इन विधाओं में संवादों का महत्व पर्याप्त गौण होता है। जबकि एक दृश्य और विशेष रूप से रंगमंचीय विधा होने के कारण एकांकी के लिए संवाद बहुत अधिक महत्व रखते हैं। नाटक और एकांकी की पूरी संरचना ही संवादों पर निर्भर करती है। इसलिए एकांकी के संरचना–शिल्प को भाषा और शैली के दो अलग–अलग भागों में बाँट कर समुचित ढंग से विवेचित–विश्लेषित नहीं किया जा सकता। रचना, के ये दोनों उपकरण एकांकी में संवादों का अंग बन कर आते हैं, अतः इसकी भाषा और शैली के स्वरूप में काफी अंतर आ जाता है। नाटकीय संवादों की भाषा में पद–रचना, वाक्य–रचना के संदर्भ में व्याकरण के नियमों की पर्याप्त उपेक्षा मिलेगी। इसके साथ ही अनुतान (लहजा), बलाघात, दो शब्दों के बीच का अंतराल, विराम–चिह्नों, मनोभाव सूचक चिह्नों आदि के प्रयोग से भाषा में अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

एकांकी के संरचना–शिल्प की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, उसकी रंगमंचीयता। एकांकी की रचना रंगमंच पर दिखाए जाने के उद्देश्य से होती है। इसलिए कुशल और सचेत एकांकीकार को अपनी ओर से कोष्ठकों में वातावरण, ध्वनि, छाया, प्रकाश, मंच–सज्जा, पात्रों की मनोदशा तथा आंगिक चेष्टाओं के संबंध में कुछ सुझाव, संकेत भी देने पड़ते हैं, जिन्हें पारिभाषिक शब्दावली में रंग–निर्देश कहा जाता है। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर रंगमंचीयता और संवाद–कौशल की दृष्टि से 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक एकांकी के संरचना शिल्प पर विचार करना हमारे लिए अधिक उपयोगी और सार्थक होगा।

3.8.1 रंगमंचीयता

एकांकी की प्रथम और मूलभूत विशेषता है, उसकी रंगमंचीयता। इस संबंध में मोहन राकेश की मान्यता है कि 'लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढाँचे की तरह है, जिसे रंगमंच का वातावरण ही मांसलता प्रदान करता है।' इस एकांकी का रंगमंच अत्यंत सादा, सहज और स्वाभाविक है, जिसके लिए किसी साज–सज्जा के ताम–झाम की जरूरत नहीं है। मंच के रूप में स्कूल का एक कमरा है, जिसमें ब्लैक बोर्ड को कोने में रखकर मीटिंग के लिए जगह तैयार की गयी है। अध्यक्ष के लिए मास्टर की कुर्सी–मेज और सदस्यों के लिए बच्चों के डेस्क को झाड़–पोंछ कर तैयार कर दिया गया है। सामने दीवार पर संसार का एक बहुत बड़ा नक्शा लटक रहा है। कमरे में आने–जाने के लिए दोनों तरफ दरवाजे हैं। इससे स्पष्ट है कि रंगमंच तैयार करने के लिए किसी विशेष प्रयास की जरूरत नहीं है।

जहाँ तक पात्रों के चयन का प्रश्न है, इनमें राम भरोसे और श्याम भरोसे दोनों स्कूल के पुराने कर्मचारी हैं। सरकारी कर्मचारी समुदाय से तीन स्त्री और सात पुरुष पात्र हैं, जिन्हें भारत के किसी भी छोटे–बड़े शहर में आसानी से जुटाया जा सकता है। स्थान और समय की एकता की दृष्टि देखें तो पूरा एकांकी डेढ़–दो घंटे में एक कमरे के अंदर आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है। एक रंग–शिल्पी के रूप में मोहन राकेश ने ध्वनि, छाया प्रकाश आदि अनेक युक्तियों के योग द्वारा हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में

अनेक प्रयोग किए हैं। लेकिन इस एकांकी में इन युक्तियों या उपायों का भी सहारा नहीं लिया गया है। अतः इसमें किसी बहुत कुशल, प्रशिक्षित निर्देशक की भी आवश्यकता नहीं है। दृश्य–योजना या दृश्य परिवर्तन के अभाव में इस नाटक का मंचन या उसे रंगमंच पर प्रस्तुत करना और भी आसान हो गया है। समय या काल तथा स्थान की एकता के साथ ही कार्य की एकता अर्थात् मात्र एक निश्चित मुद्दे पर बात–चीत से संकलन त्रय की दृष्टि से भी यह एकांकी रंगमंचीयता की शर्त को पूरी करता है। यह बात दूसरी है कि जिस सवाल या मुद्दे पर विचार–विमर्श द्वारा एक निर्णय लेने के लिए मीटिंग का आयोजन किया गया है, उस पर गंभीर बात–चीत न होकर दूसरे विषयों पर ही बात–चीत अधिक होती है। यह विषयांतर एकांकी की अंतर्वस्तु और उसके प्रतिपाद्य से जुड़कर अत्यंत प्रासंगिक बन गया है। 'बहुत बड़ा सवाल' के रूप में लेखक ने इसे रेखांकित करना चाहा है। आपसी नोक–झोंक, छींटाकशी, पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष एक दूसरे से अलग–थलग रहकर निरर्थक कार्यों में लगे रहने की निम्न मध्यवर्गीय प्रवृत्ति का उद्‌घाटन इस विषयांतर से अच्छी तरह व्यक्त हो जाता है। इस प्रकार यह एकांकी रंगमंचीयता की सभी शर्तों को अच्छी तरह पूरी करने के कारण एक अत्यंत सफल एकांकी माना जा सकता है।

3.8.2 संवाद–योजना

एकांकी का प्राण है, उसमें सहज–स्वाभाविक संवादों की योजना। इस एकांकी में मोहन राकेश ने अपनी आजमाई हुई तमाम सारी रंगमंचीय युक्तियों को छोड़कर अपने संवाद कौशल का चरमोत्कर्ष प्रकट किया है। नाटक या एकांकी के संवाद अत्यंत चुस्त–दुरुस्त और छोटे होने चाहिए, जिनसे पात्रों की मनोदशा भी अच्छी तरह व्यक्त हो सके। इसके साथ ही रंगशाला (थिएटर) में उपस्थित दर्शकों पर भी उनका पूरा प्रभाव पड़ना चाहिए। वे यह न समझें कि नाटक देख रहे हैं। जीवन में साक्षात उपस्थित वास्तविक क्रिया–कलाप की सच्ची अनुभूति दर्शक कर सकें – यह महत्वपूर्ण कार्य संवादों के माध्यम से ही पूरा हो पाता है। इस कौशल का परिचय लेखक ने एकांकी के आरंभ में इस प्रकार दिया है :

'परदा उठने पर राम भरोसे और श्याम भरोसे डेस्कों से धूल झाड़ रहे हैं।'

श्याम भरोसे : (हाथ रोककर) राम भरोसे!

राम भरोसे बिना सुने धूल झाड़ता रहता है।

: ए राम भरोसे!

राम भरोसे : (बिना हाथ रोके) क्या है?

श्याम भरोसे : इतनी धूल क्यों झाड़ता है? आहिस्ता से नहीं झाड़ा जाता? रोज–रोज की धूल से फेफड़े पहले ही खाए हुए हैं।

राम भरोसे : तो रोता क्यों है? जान पाँच बरस में नहीं जाएगी, चार बरस में चली जाएगी।

इन संवादों की सहजता दर्शक को पूरी तरह अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम है। यह अशिक्षित कर्मचारियों की आपसी बातचीत है। मीटिंग में भाग लेने वाले शिक्षित पात्रों के संवाद उनके चरित्र को भी दर्शकों के सामने उद्‌घाटित कर देते हैं। इससे सम्बद्ध एक आरंभिक उदाहरण है:

'राम भरोसे और श्याम भरोसे दोनों दायीं तरफ के दरवाजे के बाहर बैठे हैं। राम भरोसे हाथ पर सुरती मलने लगता है। श्याम भरोसे ऊँघने की मुद्रा में टेक लगा लेता है। मनोरमा, संतोष और गुरप्रीत उसी दरवाजे से आती हैं। राम भरोसे आँखें उठाकर चिढ़ते हुए भाव से उन्हें आते देखता है।'

मनोरमा : क्या बात है, शर्मा? पहरा क्यों बिठा रखा है बाहर? मीटिंग में मारधाड़ तो नहीं होने वाली है।

शर्मा : (उठता हुआ) साढ़े पाँच बज गए आप लोगों के?

मनोरमा : अभी कोई भी तो नहीं आया, सिवाय हमारे।

शर्मा : साढ़े छह तक आराम से आएँगे लोग। वक्त की पाबंदी तो सिर्फ एक आदमी पर है। क्योंकि वह कमबख्त सेक्रेटरी है।

संतोष : मैंने इसीलिए अपना नाम वापस ले लिया था। मुफ्त की सिरदर्दी।

मनोरमा : तूने इसीलिए नाम वापस ले लिया था कि शर्मा के खिलाफ तुझे तीन वोट भी नहीं मिलते! अवर शर्मा इज ग्रेट।

संतोष : लांग लिव शर्मा!

मनोरमा : (गुरप्रीत से) तू इतनी गुप–चुप क्यों है?

संतोष : शर्मा के सामने यह हमेशा गुप–चुप हो जाती है।

गुरप्रीत : प्लीज!

मंच पर उपस्थित होते ही यहाँ चारों पात्रों की नीयत और उनके चरित्र का पूर्वाभास दर्शक को हो जाता है, जो उनके विषय में अंत तक बरकरार रहता है। शिक्षित समुदाय में प्रचलित व्यवहार की भाषा में 'अवर शर्मा इज ग्रेट', 'लांग लिव शर्मा', 'प्लीज' आदि अंग्रेजी के शब्द अत्यंत स्वाभाविक हैं। मनोरमा और शर्मा के आरंभिक वाक्यों में हिंदी के वाक्य गठन, लहजे, और प्रश्न के उत्तर में प्रश्न संवाद की भाषा को अधिक व्यंजक बनाता है। इसके साथ ही कमरे के बाहर का यथार्थ वातावरण पूरे दृश्य को प्रामाणिक बनाने में सहायक है। इसका दर्शक पर अत्यंत अनुकूल असर पड़ेगा।

आगे चलकर प्रेमप्रकाश, दीनदयाल, मोहन, रमेश, और सत्यपाल भी मंच पर उपस्थित होते हुए ही अपने संवाद या कार्यों द्वारा अपनी–अपनी नीयत और चरित्र का पूर्वाभास दर्शकों के सामने दे देते हैं। पूरे एकांकी में एकांकीकार ने अपने इस आरंभिक संकेत का कुशलतापूर्वक निर्वाह किया है। अनुपस्थित अध्यक्ष की निंदा करते हुए कपूर के रहस्योद्घाटन पर पात्रों के मध्य होने वाला संवाद इसका एक ज्वलंत उदाहरण है :

कपूर : मैं पहले ही कहता था, इस आदमी को चेयरमैन नहीं बनाना चाहिए। आज छुट्टी का दिन है, वैसे भी ठंड है, घर में रजाई में दुबककर सो रहा होगा। सॉरी...घर में नहीं होगा, वह होगा आज उसके यहाँ...।

संतोष : किसके यहाँ?

गुरप्रीत : प्लीज!

संतोष : नाम तो जान लेने दे।

गुरप्रीत : प्लीज! प्लीज! प्लीज!

कपूर : गुरप्रीत जी नाम जानती हैं।

संतोष : जानती है तू?

गुरप्रीत : मैं इसीलिए आप लोगों की मीटिंग में नहीं आना चाहती। यहाँ काम तो कुछ होता नहीं, बस इसी तरह की बातें होती रहती हैं।

कपूर : गुरप्रीत जी की सहेली है वह।

संतोष : अच्छा...वह?

कपूर : हाँ, वही।

संतोष : यह कब से?

कपूर : कब से? दो साल से तो मैं ही जानता हूँ।

संतोष : पर वह तो पहले...।

कपूर : आप बहुत पुरानी बात कर रही हैं। लगता है, आप शहर में नहीं रहतीं।

संतोष : (गुरप्रीत से) सच बात है यह?

गुरप्रीत : (शर्मा से) मैं जान सकती हूँ, मीटिंग कब शुरू होगी?

उपर्युक्त संवादों के माध्यम से 'लो पेड वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी' के सदस्यों के वैचारिक स्तर, उनकी मानसिकता, छिछलेपन और दायित्वहीनता का बोध दर्शक को अच्छी तरह हो जाएगा। इसके साथ ही यहाँ संवाद की भाषा की एक विशिष्ट प्रकृति का भी पूरा परिचय मिलता है। बातचीत के लहजे, दो शब्दों के बीच का अंतराल, बलाघात, शब्द या वाक्य के अंत का रिक्त स्थान, संबोधन वाचक, प्रश्न वाचक चिह्नों आदि के समुचित प्रयोग द्वारा संवादों को अधिक चुस्त–दुरुस्त और भाषा को अत्यंत व्यंजक बनाने का प्रयास इस एकांकी में किया गया है। उक्त संवादों में प्रश्न चिह्न (?) कहीं प्रश्न का बोध कराता है तो कहीं आश्चर्य का, कहीं उपेक्षा का तो कहीं जिज्ञासा का। इससे स्पष्ट है कि संवाद–कौशल के साथ ही इस एकांकी द्वारा मोहन राकेश की भाषा संबंधी गहरी परख और अभिधा, लक्षणा, व्यंजना जैसी शब्द–शक्तियों के समुचित प्रयोग की सामर्थ्य भी उद्घाटित हुई है।

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण के बाद हम कह सकते हैं कि 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक एकांकी अपने संवाद–कौशल के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपने सामाजिक–राजनीतिक परिवेश के प्रति लेखक की मानसिकता का स्वरूप चाहे जैसा हो, जीवन के प्रति उसकी दृष्टि, रुख रुझान चाहे जैसा हो, लेकिन उसकी रंगमंचीय समझ और उसके संवाद–कौशल की दृष्टि से 'बहुत बड़ा सवाल' एक सफल एकांकी है। पात्रों की मानसिकता के साथ एकांकीकार की मानसिकता का तादात्म्य संवादों को स्वाभाविकता ही नहीं जीवन्तता भी प्रदान करता है।

3.9 प्रतिपाद्य

'पूस की रात' कहानी और 'वैष्णव की फिसलन' शीर्षक व्यंग्य–निबंध के प्रतिपाद्य का अध्ययन करने के बाद आपने प्रतिपाद्य के शाब्दिक अर्थ और उसके आशय को अच्छी तरह समझ लिया होगा। यहाँ हम मोहन राकेश का एक महत्वपूर्ण एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' के प्रतिपाद्य पर विचार करने जा रहे हैं। इस शीर्षक की उपयुक्तता और प्रासंगिकता पर विचार करते हुए हमने एकांकी के प्रतिपाद्य की ओर भी संकेत किया था। इस प्रक्रिया में हमने देखा था कि शिक्षित निम्न मध्यवर्ग के सामने उपस्थित बड़े–बड़े सवाल लेखक के सामने उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितना बड़ा सवाल उस वर्ग का स्वयं का चरित्र है। इस चरित्र का उद्‌घाटन ही एकांकी का मूल प्रतिपाद्य है, जिसे एकांकीकार ने शिक्षित निम्न मध्यवर्गीय पात्रों की वार्ता के माध्यम से सम्पन्न किया है।

इस एकांकी में मोहन राकेश ने 'लो पेड वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी' की एक मीटिंग के संदर्भ में रोजगार शुदा शिक्षित निम्न मध्यवर्ग की एक विशेष मानसिकता को अपना विषय बनाया है। यह वर्ग कभी एकजुट होकर किसी बड़े और सामूहिक कार्य के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। परस्पर एक–दूसरे पर कीचड़ उछालना, एक–दूसरे की निंदा करना, दूसरों पर छींटाकशी करना ही जैसे उसका उद्‌देश्य बन गया है। सामाजिक और संगठन के कार्यक्रमों में भी एक–दूसरे की टांग खींचना, सार्थक कार्यों में बाधा उपस्थित करना, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और संकीर्ण विचारधारा को अधिक महत्व देना, अपने मन की गलाजत या क्षुद्रता को प्रदर्शित करना ही उसकी प्रकृति बन गयी है। इस वर्ग–समुदाय से कुछ चुने हुए पात्रों के माध्यम से इस एकांकी में लेखक ने एक समूचे वर्ग के जीवन की कटु, विसंगत, कृत्रिम, पाखंडपूर्ण, क्षुद्र मनोवृत्ति का कलात्मक उद्‌घाटन किया है। यही इस रचना का प्रतिपाद्य है, जिसे रंगमंचीय कौशल के माध्यम से अत्यधिक प्रभावपूर्ण बनाकर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

किसी रचना के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए हमारे सामने उसके समुचित मूल्यांकन का भी प्रश्न आता है। किसी रचना की प्रभावोत्पादकता मूल्यांकन के लिए कोई ऐसी कसौटी नहीं बन सकती, जो प्रतिपाद्य में व्यक्त लेखक की मूल्य–दृष्टि या जीवन–दृष्टि का औचित्य सिद्ध कर सके। इसलिए प्रतिपाद्य का मूल्यांकन करते हुए हमारे लिए यह भी देखना जरूरी हो जाता है कि उसके माध्यम से लेखक ने दर्शक और पाठक के सामने क्या संदेश प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से देखें तो ऐसा लगता है कि निम्न मध्यवर्ग की मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए लेखक ने उसकी निरर्थकता के साथ ही संगठन की निरर्थकता को भी रेखांकित कर दिया है। सामाजिक विकास के लिए समाज में परिवर्तन के लिए सामाजिक–वर्गीय संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। यह सही है कि मध्यवर्ग अपनी दो मुँही प्रवृत्ति और ढुलमुल नीति के कारण किसी भी प्रकार के संगठन के प्रति। अपने दायित्व का समुचित निर्वाह कर सकने में प्रायः असमर्थ रहा है। इस दृष्टि से एकांकी का प्रतिपाद्य एक वास्तविकता को सही ढंग से रेखांकित करने के कारण उचित माना जा सकता है, लेकिन अपने आग्रह–अनुरोध या संदेश में वह आशंका की गुंजाइश भी पैदा कर देता है। इससे दर्शक–पाठक के मध्य संगठन–विरोध की भावना को बल मिल सकता है। 'लो पेड वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी' जैसे संगठन की निरर्थकता और अराजकता इस ओर एक स्पष्ट संकेत है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में क्रमसंख्या का निर्देश करते हुए दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

15) 'बहुत बड़ा सवाल' एकांकी की रंगमंचीयता की सफलता के लिए किस तत्व को सर्वाधिक प्रमुख माना जा सकता है?

क) रंगमंच की सादगी और सहजता को,

ख) ध्वनि, प्रकाश और छाया के निर्देश को,

ग) कुशल संवाद–योजना को,

घ) व्यावहारिक भाषा को। ( )

16) इस एकांकी के पात्र मुख्यतः समाज के किस वर्ग से लिए गए हैं?

क) उच्च वर्ग से,

ख) निम्न मध्य वर्ग से,

ग) उच्च मध्य वर्ग से,

घ) निम्न वर्ग से। ( )

17) 'मैंने इसीलिए अपना नाम वापस ले लिया था। मुफ्त की सिरदर्दी।' संतोष का यह कथन उसकी किस प्रवृत्ति का सूचक है?

क) अपने झूठे अहं को प्रकट करने की,

ख) स्पष्टवादिता की,

ग) अपनी व्यावहारिकता की,

घ) अपनी उदारता की। ( )

18) इस एकांकी का मुख्य प्रतिपाद्य क्या है?

क) कर्मचारी संगठनों की निरर्थकता का प्रतिपादन,

ख) निम्न मध्यवर्गीय चरित्र की त्रुटियों का उद्‌घाटन,

ग) भारतीय जनता में जागरूकता के अभाव का प्रतिपादन

घ) पात्रों की मनोदशा का यथार्थ चित्रण। ( )

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थान में दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

8) इस एकांकी की भाषा और शैली पर अलग–अलग विचार करना क्यों जरूरी नहीं है? अपना उत्तर पाँच पंक्तियों में दें –

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9) इस एकांकी की रंगमंचीयता पर पाँच पंक्तियों में अपने विचार व्यक्त करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10) इस एकांकी में प्रयुक्त संवाद–कौशल को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11) इस एकांकी के प्रतिपाद्य को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12) इस एकांकी की अंतर्वस्तु और उसके प्रतिपाद्य से पाठक–दर्शक के मध्य किस गलत संदेश के पहुंचने की आशंका है? उत्तर चार पंक्तियों में दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.10 सारांश

इस इकाई का समुचित अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित तथ्यों को समझने के साथ ही उसे अपनी भाषा में लिख सकते हैं –

- इसमें एकांकी विधा के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है, जिससे आप एक साहित्य–विधा के रूप में एकांकी के महत्व पर अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। इसमें एकांकी के सार और उसकी अंतर्वस्तु का विस्तृत विवेचन–विश्लेषण किया गया है। इसे पढ़कर आप इस एकांकी की अंतर्वस्तु की विशेषताओं को स्वयं अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- इस एकांकी के परिवेश पर गंभीरता के साथ ही इसके शीर्षक की सार्थकता पर भी विस्तार से विचार किया गया है, जिसे ध्यान में रखते हुए आप परिवेश और शीर्षक की विशेषताओं को भी रेखांकित कर सकते हैं।
- इसमें एकांकी के संरचना–शिल्प पर रंगमंचीयता और संवाद–कौशल के संदर्भ में विचार किया गया है, जिसमें इसकी भाषा और शैली संबंधी विशेषताएँ भी सोदाहरण विवेचित विश्लेषित हुई हैं। इन से संबंधित सभी विशेषताओं को आप अपनी भाषा में अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं।
- इसमें एकांकी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण करते हुए उसके औचित्य–अनौचित्य का मूल्यांकन भी किया गया है, अतः आप अपनी भाषा में प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए उसका समुचित मूल्यांकन भी कर सकते हैं।

3.11 उपयोगी पुस्तकें

मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ0 सुषमा अग्रवाल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 302002।

मोहन राकेश की रंग सृष्टि : जगदीश शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

मोहन राकेश के नाटक : डॉ0 द्विजराज यादव, साहित्य लोक, कानपुर।

अपने नाटकों के दायरे में : तिलकराम शर्मा, आर्य बुक डिपो, दिल्ली।

मोहन राकेश : रंग–शिल्प और प्रदर्शन : डॉ0 जयदेव तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

3.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ख	2) ग	3) ग	4) ख	5) ख	6) ग
7) ग	8) ख	9) ख	10) घ	11) ख	12) ख
13) ख	14) ख	15) ग	16) ख	17) क	18) ख

अभ्यास

1) पहला संशोधन यह है कि जब प्रस्ताव हिंदी में है तो संस्था का नाम भी हिंदी में होना चाहिए। दूसरा संशोधन है कि जब सब सदस्य उपस्थित नहीं हों तो प्रस्ताव में 'सब सदस्यों' का उल्लेख कैसे किया जा सकता है।

2) प्रस्ताव में तीन जगह 'निम्नस्तर' शब्द के प्रयोग पर मोहन ने आपत्ति की है कि आज हम निम्नस्तर के कर्मचारी हैं, तो जरूरी नहीं है कि जीवनभर निम्नस्तर के ही कर्मचारी रहेंगे। अतः हमारे लिए निम्नस्तर की आवास–व्यवस्था हो और हमारे घर भी निम्नस्तर के हों – ऐसा प्रस्ताव हमें मंजूर नहीं करना चाहिए। इस तरह की हीनता की प्रवृत्ति से हमें जल्दी छुटकारा पा लेना चाहिए, क्योंकि यह वृत्ति एक छूत के रोग की तरह है, जिसके कीटाणु हमारी रग–रग में फैल जाएँगे।

3) इस एकांकी की अंतर्वस्तु का संबंध निम्नवेतन–भोगी कर्मचारियों की निम्न मध्यवर्गीय प्रकृति का चित्रण है। ये दूसरे से अलग–थलग व्यक्ति के रूप में अपने–आप में ही बंद रहते हैं। कभी एकताबद्ध होकर ये लोग अपने हितों के लिए संघर्ष नहीं कर सकते। आपस में एक दूसरे पर कीचड़ उछालना, एक दूसरे की निंदा करना उनकी प्रकृति है। परस्पर ईर्ष्या–द्वेष की भावना इन सभी में समान रूप से पायी जाती है। उनकी इसी वृत्ति के उद्‌घाटन को लेखक ने इस एकांकी का विषय बनाया है, जो उसकी अंतर्वस्तु कही जा सकती है।

4) कथा तत्व की न्यूनता और घटनाओं के अभाव में यह एकांकी कुछ चुनिंदा पात्रों का अजायबघर बन कर रह गया है। राम भरोसे और श्याम भरोसे को छोड़ दिया जाए तो इसके सभी दस पात्र किसी–न–किसी रूप में अपनी निम्न मध्यवर्गीय क्षुद्र प्रकृति का ही उद्‌घाटन करते हैं। मंच पर उपस्थित होते ही हर पात्र अपने वास्तविक चरित्र को उद्‌घाटित कर देता है, जिसे एकांकी में अंत तक बरकरार रखा गया है। ये सभी पात्र व्यक्ति चरित्र न होकर एक वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र हैं।

5) पूरे एकांकी में गुरप्रीत ही एक ऐसी नारी पात्र है, जो शुरू से अंत तक अपनी गंभीरता बनाए रखती है। वह किसी की चापलूसी या निंदा की बात–चीत में भाग नहीं लेती। प्रायः 'प्लीज', 'दिस इज टू मच' शब्दों या पदों द्वारा ही वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। मीटिंग के संबंध में भी वह गंभीर रहती है, जिसे सार्थक बनाने का प्रयास भी करती है। मीटिंग को असफल होते देख वह सबसे पहले उठकर चली भी जाती है।

6) 1924 में हरिशंकर परसाई और 1925 में जन्मे मोहन राकेश का सामाजिक परिवेश एकदम समकालीन है। लेकिन अपने परिवेश के प्रति दोनों की रचनाओं में व्यक्त उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं में पर्याप्त अंतर है। मोहन राकेश एक व्यक्तिनिष्ठ कलाकार की भाँति अपने युग की विषमताओं का तटस्थ चित्रण करते हैं। लेकिन परसाई एक समाजनिष्ठ कलाकार की भाँति अन्याय के विरुद्ध संघर्षशील बन जाते हैं। परसाई में एक गहन राजनीतिक चेतना, व्यवस्था–विरोध का तीखा स्वर और सामाजिक प्रतिबद्धता मिलेगी, जिसके दर्शन मोहन राकेश में नहीं होते।

7) इस एकांकी में सबसे बड़े सवाल के रूप में निम्न वेतन भोगी कर्मचारियों के चरित्र के माध्यम से शिक्षित निम्नमध्य–वर्गीय मानसिकता को चित्रित किया गया

है। इनके बीच एकता का अभाव, अपने सामूहिक हितों के प्रति उदासीनता, अनुत्तरदायित्वपूर्ण वाद विवाद, एक दूसरे को नीचा या हीन दिखाने की प्रवृत्ति, संगठित संघर्ष की अक्षमता आदि को 'बहुत बड़ा सवाल' शीर्षक के द्वारा रेखांकित किया गया है। ये सभी तथ्य एकांकी की अंतर्वस्तु बने हैं। अतः यह शीर्षक पूर्णतः सार्थक है, जो रचना के प्रतिपाद्य से भी जुड़ जाता है।

8) एक दृश्य–साहित्य या रंगमंचीय विधा होने के कारण एकांकी के लिए संवाद बहुत अधिक महत्व रखते हैं। एकांकी की पूरी संरचना ही संवादों पर निर्भर करती है। भाषा और शैली संवादों के अंग बनकर एकांकी में आते हैं। अतः संवाद–कौशल की विशेषताओं के विवेचन के संदर्भ में ही भाषा और शैली की विशिष्टता का उद्घाटन करना अधिक उपयुक्त और सार्थक हो सकता है।

9) इस एकांकी के लिए रंगमंच की तैयारी करने में विशेष साज–सज्जा या ताम–झाम की जरूरत नहीं है। प्रदर्शन के लिए किसी भी छोटे–बड़े शहर से सरलतापूर्वक पात्रों का चयन किया जा सकता है। किसी विशेष प्रशिक्षित निर्देशक की भी इसमें जरूरत नहीं है। संवाद इतने सटीक और चुस्त–दुरुस्त हैं कि उसके लिए पात्रों को अधिक पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) की भी अधिक आवश्यकता नहीं है। अतः इसे एक अत्यंत सफल रंगमंचीय एकांकी कहा जा सकता है।

10) इस एकांकी में मोहन राकेश ने छोटे–छोटे वाक्यों को समुचित विराम–चिह्नों, संबोधन तथा प्रश्नवाचक चिह्नों, भाषा के लहजों (अनुतान), बलाघात आदि द्वारा संवादों को अत्यंत चुस्त–दुरुस्त और नाटकीय बनाया है। हिंदी–अंग्रेजी मिश्रित भाषा के सहज स्वरूप द्वारा पात्रों की मानसिकता के उद्घाटन और दर्शक पर पड़ने वाले उसके प्रभाव– दोनों ही दृष्टियों से इस एकांकी में मोहन राकेश का संवाद–कौशल पूरी तरह उजागर हुआ है।

11) शिक्षित निम्न मध्यवर्ग की पाखंडपूर्ण मानसिकता का उद्घाटन ही इस एकांकी का मूल प्रतिपाद्य है। इसके लिए लेखक ने छिछोरेपन, एक दूसरे के प्रति ईर्ष्याद्वेष, व्यक्तिगत स्वार्थ, निरर्थक वाद–विवाद, अनावश्यक छींटाकशी, अपने व्यापक हितों की रक्षा के लिए संघर्ष की अक्षमता आदि को इस समुदाय की प्रकृति के रूप में चित्रित किया है। यही इस एकांकी का प्रतिपाद्य है।

12) 'लो पेड वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी' जैसी कर्मचारी वर्ग की संस्था को केंद्र में रखकर लेखक ने शिक्षित मध्यवर्ग की विकृत मानसिकता पर जिस प्रकार कटाक्ष किया है, उससे पाठक–दर्शक के बीच प्रतिबद्ध सामाजिक संगठनों के विरुद्ध एक प्रगतिशील भावना के पनपने की आशंका है। इसे रचना का गलत संदेश माना जा सकता है।

इकाई 4 निबंध : जीने की कला (महादेवी वर्मा)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 निबंध का वाचन

4.3 निबंध का सार

4.4 अंतर्वस्तु

4.4.1 विचार पक्ष

4.4.2 भाव पक्ष

4.5 परिवेश

4.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

4.7 संरचना–शिल्प

4.7.1 भाषा

4.7.2 शैली

4.8 शीर्षक और प्रतिपाद्य

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इकाई 2 में आप हरिशंकर परसाई के एक व्यंग्य निबंध का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में आप महादेवी वर्मा के निबंध 'जीने की कला' का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- महादेवी वर्मा के कृतित्व के एक नए पहलू –उनके गद्यकार–निबंधकार व्यक्तित्व का साक्षात्कार कर सकेंगे;
- निबंध का सार लिख सकेंगे;
- निबंध की अंतर्वस्तु को समझकर उसका समुचित विवेचन–विश्लेषण कर सकेंगे;
- निबंध में व्यक्त लेखिका के वास्तविक व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे;
- निबंध के रचनाकालीन परिवेश की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- निबंध के संरचना–शिल्प का विवेचन–विश्लेषण कर सकेंगे और
- निबंध के शीर्षक और प्रतिपाद्य की समुचित व्याख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

यहाँ आप छायावादी कविता के एक प्रमुख स्तम्भ कवयित्री महादेवी वर्मा के निबंध का अध्ययन करने जा रहे हैं। निबंध एक गद्य–विधा है, जिसके स्वरूप, कथ्य और अन्यान्य विशेषताओं पर इकाई 2 में हरिशंकर परसाई की निबंध–कला पर विचार करते हुए आपको पर्याप्त जानकारी हम दे चुके हैं। यहाँ हम निम्नलिखित चार बिदुओं के आधार पर महादेवी की निबंध–रचना की स्वरूपगत, कथ्यगत और शिल्पगत विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे –

- निबंध एक सशक्त गद्य–रचना है।
- इसमें लेखक अपने भावों–विचारों को क्रमबद्ध और तर्कसंगत ढंग से सीधे व्यक्त करता है।
- इसमें लेखक के व्यक्तित्व का भी स्पष्ट रूप से प्रकाशन होता है।
- इसमें निबंधकार अपने भावों–विचारों की अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप देने का प्रयास करता है।

विशेषता–सूचक इन सभी बिंदुओं को ध्यान में रखकर इस इकाई में हम 'जीने की कला' का विस्तृत विवेचन–विश्लेषण करेंगे। चूँकि इस इकाई में हम महादेवी के गद्य साहित्य के संदर्भ में निबंध–कला पर विचार कर रहे हैं, इसलिए उनकी जीवन शैली की कुछ विशेषताओं पर विचार कर लेना आपके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

सन 1907 में फरुखाबाद में एक शिक्षित परिवार में महादेवी का जन्म हुआ था। 9 वर्ष की बाल्यावस्था में विवाहित होकर वे इलाहाबाद आ गईं। यहाँ प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. करने के बाद इन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्रधानाचार्य के पद पर काफी समय तक काम किया। पति के असामयिक निधन के कारण इन्हें विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ा। इन्हें अपने कवि–कर्म के लिए 1956 में 'पद्मभूषण' और 1982 में हिंदी साहित्य के सर्वोच्च 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। लेकिन यहाँ आपको इस वास्तविकता को हमेशा ध्यान में रखना पड़ेगा कि उनकी कविताओं में जिस विरह–वेदना, मिलनाकांक्षा और रहस्यमय अलौकिक प्रेम की अनुभूति व्यक्त हुई है, वह उनकी वास्तविक जीवन–शैली से बहुत अधिक मेल नहीं खाती। महादेवी जी का लौकिक जीवन और व्यक्तित्व अपने यथार्थ रूप में उनके गद्य साहित्य में ही व्यक्त हुआ है। पशु–पक्षियों से लेकर शोषित–उत्पीड़ित जन–जीवन के प्रति इनकी असीम सहानुभूति इन गद्य रचनाओं में ही साकार हुई है। अतीत के 'चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'क्षणदा', 'मेरा परिवार' आदि उनके रेखाचित्र, संस्मरण और निबंध हिंदी गद्य साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनका समूचा गद्य साहित्य मूलतः समाज–केंद्रित है। इसके विपरीत, काव्य–साहित्य पूरी तरह आत्म–केंद्रित है। रुदन, पीड़ा, अधीर मिलनाकांक्षा, असीम के प्रति प्रणय–निवेदन आदि उन्हें आत्मलीन और आत्म–केंद्रित ही सिद्ध करते हैं। लेकिन अपने गद्य साहित्य में महादेवी का कर्मनिष्ठ, संवेदनशील, अन्याय का विरोधी, सामाजिक कुरीतियों–कुसंस्कारों का भंजक व्यक्तित्व अत्यंत जीवंत रूप में उपस्थित हुआ है। कविता और गद्य साहित्य में व्यक्त उनके इस अंतर को रेखांकित करने के लिए अगर संक्षेप में कहना हो तो हम कह सकते हैं कि महादेवी के नाम को हटाकर उनके काव्य और गद्य साहित्य को आमने–सामने रख दिया जाए तो वे दो परस्पर

भिन्न, किंतु अत्यंत कुशल व्यक्तियों की रचनाएँ लग सकती हैं। अतः महादेवी के काव्य और गद्य साहित्य में उनका परस्पर विरोधी व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है।

अब हम अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित निबंध 'जीने की कला' पर आएँ। यह निबंध 'शृंखला का कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह का अंतिम निबंध है। इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद' पत्रिका में उनकी नारी–समस्या विषयक संपादकीय टिप्पणियों को पुस्तकाकार रूप देकर 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक से 1942 में प्रकाशित किया गया। वैसे तो अपने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि संग्रहों में भी महादेवी ने नारी समस्या को अनेक कोणों से छुआ है लेकिन 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह में भारतीय नारी की लगभग सभी प्रमुख समस्याओं को विस्तार से विवेचित–विश्लेषित किया है। इन निबंधों में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज, विधवा–समस्या, वेश्या–समस्या, अवैध संतान आदि के साथ ही सहज–सामान्य रूप से पुरुष प्रधान समाज में नारी के शोषण के स्वरूप और उसके लिए अपनाए जाने वाले विभिन्न हथकण्डों को महादेवी ने अपना विषय बनाया है। 'जीने की कला' निबंध का पाठ कर आप उनकी नारी–विषयक संपूर्ण दृष्टि से परिचित हो सकेंगे।

4.2 निबंध का वाचन

प्रत्येक कार्य के प्रतिपादन तथा प्रत्येक वस्तु के निर्माण में दो आवश्यक अंग हैं – तद्विषयक विज्ञान और उस विज्ञान का क्रियात्मक प्रयोग। बिना एक के दूसरा अंग अपूर्ण ही रहेगा, क्योंकि बिना प्रयोग के ज्ञान प्रमाणहीन है और बिना ज्ञान के प्रयोग आधारहीन – अतः प्रत्येक विज्ञान में क्रियात्मक कला का कुछ अंश अवश्य रहता है और प्रत्येक क्रियात्मक कला भी अपने विज्ञान–विशेष की अनुगामिनी बनकर ही सफल होती है। ये दोनों इतने सापेक्ष हैं कि एक को जानने में दूसरे को जानना ही पड़ता है।

यदि हम रंग और उनके मिश्रण के विषय में जान लें, तूलिका आदि के विषय में सब कुछ समझ लें, परंतु कभी इस ज्ञान को प्रयोग की कसौटी पर न कसें तो हमारा चित्रकला विषयक ज्ञान परीक्षा के बिना अपूर्ण ही रह जाएगा। इसी प्रकार यदि हम इस ज्ञान के बिना ही एकाएक रंग भरने का प्रयत्न करने लगें तो हमारा यह प्रयास भी असफल ही कहा जाएगा। चित्रकला की पूर्णता के लिए और सफल चित्रकार बनने के लिए हमें तत्संबंधी ज्ञातव्य को जानकर प्रयोग में लाना ही होगा। यही अन्य कलाओं के लिए भी सत्य सिद्ध होगा।

यदि हम ध्यान से देखें तो संसार में जीना भी एक ऐसी कला जान पड़ेगा, जिसमें उपर्युक्त दोनों साधनों का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही या उससे भी कुछ अधिक आवश्यक उन सिद्धांतों का उचित अवसर पर उपयुक्त प्रयोग भी किया जाना चाहिए। यदि हम ऐसे सिद्धांतों का भार जन्म–भर ढोते रहें, जिनका उपयुक्त प्रयोग हमें ज्ञात न हो, तो हमारी दशा उस पशु से भिन्न न होगी जिसको बिना जाने ही शास्त्रों और धर्मग्रंथों का भार वहन करना पड़ता हो। इस प्रकार यदि हम बिना सिद्धांत समझे उनका अनुपयुक्त प्रयोग करते रहें तो हमारी क्रिया बिना अर्थ समझे मंत्रपाठी शुक की वाणी के समान निरर्थक हो उठेगी।

हमारे संस्कारों में, जीवन के लिए आवश्यक सिद्धांत ऐसे सूत्र रूप में समझे जाते हैं, जो प्रयोग रूपी टीका के बिना न स्पष्ट हो पाते हैं और न उपयोगी। 'सत्यं ब्रूयात' को

हम सिद्धांत रूप में जानकर भी न अपना विकास कर सकते हैं और न समाज का उपकार, जब तक अनेक परिस्थितियों, विभिन्न स्थानों और विशेष कालों में उसका प्रयोग कर उसके वास्तविक अर्थ को न समझ लें– उनके यथार्थ रूप को हृदयंगम न कर लें।

एक निर्दोष के प्राण बचाने वाला असत्य उसकी हिंसा का कारण बनाने वाले सत्य से श्रेष्ठ ही रहेगा, एक क्रूर स्वामी की अन्यायपूर्ण आज्ञा का पालन करने वाले सेवक से उसका विरोध करने वाला अधिक स्वामिभक्त कहलाएगा और एक दुर्बल पर अन्याय करने वाले अत्याचारी को क्षमा कर देने वाले क्रोधजित से उसे दंड देने वाला क्रोधी संसार का अधिक उपकार कर सकेगा। अन्य सिद्धांतों के लिए भी यही सत्य है और रहेगा।

सिद्धांतों की जितनी भारी गठरी लेकर हम अपने कर्मक्षेत्र के द्वार तक पहुंचते हैं, उतना भारी बोझ लेकर कदाचित ही किसी अन्य देश के व्यक्ति को पहुँचना पड़ता हो, परंतु फिर भी कार्यक्षेत्र में हमीं सबसे अधिक निष्क्रिय प्रमाणित होंगे। कारण, हम अपने सिद्धांतों को उपयोग से बचा–बचाकर उसी प्रकार रखने में उद्देश्य की सिद्धि समझ लेते हैं, जिस प्रकार धन को व्यय से बचाकर रखने वाले कृपण उसके संचय में ही अपने उद्योग की चरम सफलता देख लेते हैं।

परिस्थिति, काल और स्थान के अनुसार उनके प्रयोग तथा रूपों के विषय में जानने का न हमें अवकाश है न इच्छा। फल यह हुआ कि हमारा जीवन अपूर्ण वस्तुओं में सबसे अधिक अपूर्ण होने का दुर्भाग्य मात्र प्राप्त कर सका।

आज तो जीने की कला न जानने का अभिशाप देश–व्यापक है, परंतु विशेष रूप से स्त्रियों ने इस अभिशाप के कारण जो कुछ सहा है उसे सहकर जीवित रहने का अभिमान करने वाले विरले ही मिलेंगे। यह सत्य है कि हमारे देश में व्यक्ति को इतना महत्व दिया गया था कि कहीं–कहीं हमें उसके विकास के साधन भी एक विचित्र बंधन जैसे लगने लगते हैं। परंतु यह कहना अन्याय होगा कि उन प्राचीन युग के निवासियों ने व्यक्तिगत विकास को दृष्टिबिंदु बनाकर सामूहिक या सामाजिक विकास को एक क्षण के लिए भी दृष्टि से ओझल न होने दिया। उनका जीवन–विषयक ज्ञान कितना वैयक्तिक किंतु व्यापक, स्थिर किंतु प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल और एक किंतु सामूहिक था, इसका प्रमाण हमें उन सिद्धांतों में मिल जाता है, जिनके आकर्षण से हम अपनी अज्ञानावस्था में भी नहीं छूट पाते और इस ज्ञान का उन्होंने कैसा उपयुक्त तथा प्रगतिशील प्रयोग किया, यह समाज के निर्माण और व्यक्ति के जीवन के पूर्ण विकास को दृष्टि में रखकर खोजे गए समाधानों से स्पष्ट हो जाता है। यदि हम शताब्दियों से केवल सिद्धांतों का निर्जीव भार लिए हुए शिथिल हो रहे हैं तो इसमें हमारा और हमारी परिस्थितियों का दोष है। यदि हम अपने जीवन को सजीव और सक्रिय बनाना चाहते, अपनी विशेष परिस्थितियों में उनका प्रयोग कर उनकी सामयिक अनुकूलता प्रतिकलता, उपयुक्तता–अनुपयुक्तता का निश्चय कर लेते और जीवन के ज्ञान और उसके कियात्मक प्रवाह को साथ बहने देते तो अवश्य ही हमारा जीवन उत्कृष्ट कला का निदर्शन होता।

हमने जीवन को उचित कार्य से विरत कर उसी के व्यवस्थापक नियमों को अपने पैर की बेड़ियाँ बनाकर उन्हें भी भारी बना डाला, अतः आज यदि लक्ष्य तक पहुँचने की इच्छा भी भूल गए तो आश्चर्य ही क्यों होना चाहिए!

इस समय भारतीय नारी के पास ऐसा कौन–सा विशिष्ट गुण नहीं है, जिसे पाकर किसी भी देश की मानवी देवी न बन सकती हो। उसमें उस सहनशक्ति की सीमा समाप्त है, जिसके द्वारा मनुष्य घोर से घोरतर अग्निपरीक्षा हंसते–हंसते पार कर सकता है और अपने लक्ष्य के मार्ग में बाधाओं पर बाधाएँ देखकर नहीं सिहरता उसमें वह त्याग है जो मनुष्य की क्षुद्र–से–क्षुद्र स्वार्थवृत्ति को क्षण में नष्ट कर डालता है और उसे अन्य के कल्याणार्थ अपनी आहुति के लिए प्रस्तुत कर देता है, उसमें मनुष्य को देवता की पंक्ति में बैठा देने वाली वह पवित्रता है, जो मरना नहीं जानती तथा उसमें हमारी संस्कृति का वह कोष है जिसकी किसी अन्य के द्वारा रक्षा संभव ही नहीं थी। वह आज भी त्यागमयी माता, पतिव्रता पत्नी, स्नेहमयी बहिन और आज्ञाकारिणी पुत्री है, जब संसार के जागृत देशों की स्त्रियाँ भौतिक सुखभोग पर अपनी युगजीर्ण संस्कृति न्यौछावर किए दे रही हैं। इन्हें त्याग के, बलिदान के और स्नेह के नाम पर सब कुछ आता है, परंतु जीने की वह कला नहीं आती जो इन अलौकिक गुणों को सजीव कर देती।

जीर्ण–से–जीर्ण कुटीर में बसने वालों में भी कदाचित ही कोई ऐसा अभागा निर्धन होगा, जिसके उजड़े आंगन में एक भी सहनशीला, त्यागमयी, ममतामयी स्त्री न हो।

स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर–चूर कर पत्थर की देव–प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिंदू गृहस्थ की दुधमुंही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए, जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की, हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएं कुचल–कुचलकर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आँखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।

बोध प्रश्न

आपने निबंध का उपर्युक्त अंश अच्छी तरह पढ़ लिया होगा। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर उसे जाँच लें।

1) ज्ञान या विज्ञान को सार्थक बनाने के लिए क्या जरूरी है? निम्नलिखित उत्तरों में से सबसे सही उत्तर के लिए कोष्ठक में उस संख्या का निर्देश करें।

   क) प्राप्त ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाना।

   ख) ज्ञान में निरंतर वृद्धि करना।

   ग) ज्ञान को कार्य द्वारा व्यावहारिक रूप देना।

   घ) ज्ञान को अपने पास सुरक्षित रखना। ( )

2) असत्य किन परिस्थितियों में सत्य से श्रेष्ठ बन जाता है?

   क) असत्य का प्रयोग जब आत्मरक्षा के लिए होता है।

   ख) असत्य का प्रयोग जब एक निर्दोष का प्राण बचाने के लिए हो।

   ग) असत्य का प्रयोग जब हिंसा को रोकने के लिए हो।

   घ) असत्य का प्रयोग जब समाज कल्याण के लिए हो। ( )

3) सभी गुणों से सम्पन्न भारतीय नारी का जीवन दुखमय क्यों है?

क) वह नारी के गुणों के महत्व को नहीं समझती।

ख) वह नारी के गुणों को ही अपना लक्ष्य मान लेती है।

ग) वह जीने की कला नहीं जानती।

घ) वह रूढ़िवादिता का शिकार हो जाती है। ( )

अर्धांगिनी की विडंबना का भार लिए, सीता, सावित्री के अलौकिक तथा पवित्र आदर्श का भार, अपने भेदे हुए जीर्ण–शीर्ण स्त्रीत्व पर किसी प्रकार संभालकर क्रीतदासी के समान अपने मद्यप, दुराचारी तथा पशु से भी निकृष्ट स्वामी को परिचर्या में लगी हुई और उसके दुर्व्यवहार को सहकर भी देवताओं से जन्म–जन्मांतर में उसी का संग पाने का वरदान मांगने वाली पत्नी को देखकर कौन आश्चर्याभिभूत न हो उठेगा? पिता के इंगित मात्र से अपने जीवन–प्रभात में देखे रंगीन स्वप्नों को विस्मृति से ढंककर बिना एक दीर्घ निःश्वास लिए अयोग्य–से–अयोग्य पुरुष का अनुगमन करने को प्रस्तुत पुत्री को देखकर किसका हृदय न भर आवेगा? पिता की अट्टालिका और वैभव से वंचित दरिद्र भागनी को ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले भाई की कलाई पर सरलभाव से रक्षाबंधन बाँधते देख कौन विश्वास कर सकेगा कि ईर्ष्या भी मनुष्य का स्वाभाविक विकार है और अनेक साहसहीन निर्जीव–से पुत्रों द्वारा उपेक्षा और अनादर से आहत हृदय ले, उनके सुख के प्रयत्न में लगी हुई माता को देख कौन 'क्वचित् कुमाता न भवति' कहने वाले को स्त्री–स्वभाव के गंभीर रहस्य का अन्वेषक न मान लेगा? परंतु इतनी अधिक सहनशक्ति, ऐसा अप्रतिम त्याग और ऐसा अलौकिक साहस देखकर भी देखने वाले के हृदय में यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता कि क्या वे विभूतियाँ जीवित हैं? यदि सजीवता न हो, विवेक के चिह्न न हों, तो इन गुणों का मूल्य ही क्या है? क्या हमारे कोल्हू में जुता बैल कम सहनशील है? कम यंत्रणाएँ भोगता है? शव हमारे द्वारा किए गए किसी अपमान का प्रतिकार नहीं कर सकता। सब प्रकार के आघात बिना हिले–डुले शांति से सह सकता है, हम चाहे उसे अतल जल में बहाकर मगरमच्छ के उदर में पहुँचा दें, चाहे चिता पर लिटाकर राख करके हवा में उड़ा दें, परंतु उसके मुख से न निःश्वास निकलेगी, न आह, न निरंतर खुली पथराई आँखों में जल आवेगा, न अंग कंपित होंगे! परंतु क्या हम उसकी निष्क्रियता की प्रशंसा कर सकेंगे?

आज हिंदू स्त्री भी शव के समान ही निस्पंद है। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है, अतः अपने सुख–दुःख को चेष्टा द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।

इसके अतिरिक्त, ऐसी सीमातीत सहिष्णुता की प्रशंसा सुनते–सुनते अब इसे अपने मर्म का आवश्यक अंग समझने लगी है।

जीवन को पूर्ण–से–पूर्ण रूप तक विकसित कर देने योग्य सिद्धांत उसके पास हैं, परंतु न उनका परिस्थिति–विशेष में उचित उपयोग ही वह जानती है और न उनका अर्थ ही समझती है, अतः जीवन और सिद्धांत दोनों ही भार होकर उसे वैसे ही संज्ञाहीन किए दे रहे हैं, जैसे नीम की कड़ी धूप में शीतकाल के भारी और गर्म वस्त्र पहने हुए पथिक को उसका परिधान। जीवन को अपने सांचे में ढालकर सुंदर और सुडौल बनाने वाले सिद्धांतों ने ही अपने विपरीत उपयोग से भार बनकर उसके सुकुमार जीवन को उसी प्रकार कुरूप और वामन बना डाला है जिस प्रकार हाथ का

सुंदर कंकण चरण में पहना जाने पर उसकी वृद्धि को रोककर उसे कुरूप बना देता है।

हिंदू समाज ने उसे अपनी प्राचीन गौरव–गाथा का प्रदर्शन मात्र बनाकर रख छोड़ा है। और वह भी मूक निरीह भाव से उसको वहन करती आ रही है। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीती चली जा रही हैं। समय की लहरों में परिवर्तन पर परिवर्तन बहते आ रहे हैं, परिस्थितियाँ बदल रही परंतु समाज केवल स्त्री को, जिसे उसने दासता के अतिरिक्त और कुछ देना नहीं सीखा, प्रलय की उथल–पुथल में भी शिला के समान स्थिर देखना चाहता है। ऐसी स्थिरता मृत्यु का अंगार हो सकती है, जीवन का नहीं। अवश्य ही मृत्यु में भी एक सौंदर्य है, परंतु वह जीवन के रिक्त स्थान को तो नहीं भर सकता।

धन की प्रभुता या पूँजीवाद जितना गर्हित है उतना ही गर्हित रूप धर्म और अधिकार का हो सकता है, फिर उसके विषय में तो कहना ही व्यर्थ है जिसे धन, धर्म और अधिकार तीनों प्रकार की प्रभुता प्राप्त हो चुकी हो।

समाज में उपार्जन का उत्तरदायित्व मिल जाने से पुरुष को एक प्रकार का पूंजीपतित्व तो प्राप्त हो ही गया था, शक्ति अधिक होने के कारण अधिकार मिलना भी सहज–प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त शास्त्र तथा अन्य सामाजिक नियमों का निर्माता होने के कारण वह अपने–आपको अधिक–से–अधिक स्वच्छंद और स्त्री को कठिन–से–कठिन बंधन में रखने में समर्थ हो सका।

धीरे–धीरे बनते–बनते स्त्री को बांध रखने का सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक उपकरणों से बना हुआ यंत्र इतना पूर्ण और इतना सफलता–युक्त सक्रिय हो उठा कि उसमें ढलकर स्त्री केवल सफल दासी के रूप में ही निकलने लगी। न उसकी मानसिक दासता में कोई अभाव या न्यूनता थी और न शारीरिक दासता में विद्रोह तो क्या अपनी स्थिति के विषय में प्रश्न करना भी उसके लिए जीवन में यंत्रणा और मृत्यु के उपरांत नरक मिलने का साधन था। आज यंत्रों के युग में भी दासत्व के इस पुराने परंतु दृढ़ यंत्र के निर्माण–कौशल पर हमें विस्मित होना पड़ता है, क्योंकि इसमें मूक यंत्रणा सहने वाला व्यक्ति ही सहायता देने वाले के कार्य में बाधा डालता रहता है। मनुष्य को न नष्ट कर उसकी मनुष्यता को इस प्रकार नष्ट कर देना कि वह उस हानि को जीवन का सबसे उज्ज्वल, सबसे बहुमूल्य और सबसे आवश्यक लाभ समझने लगे, असंभव नहीं तो कठिनतम प्रयास–साध्य अवश्य है। प्रत्येक बालिका उत्पन्न होने के साथ ही अपने–आपको ऐसे पराये घर की वस्तु मानने और बनने लगती है, जिसमें न जाने की इच्छा करना भी उसके लिए पाप है। विवाह के व्यवसाय में उसकी विद्या पासंग बने हुए ढेले के समान है, जो तुला को दोनों ओर समान रूप से गुरु कर देता है, कुछ उसके मानसिक विकास के लिए नहीं। उसकी योग्यता, उसकी कला पति के प्रदर्शन तथा गर्व की वस्तु है, उसे सत्यं शिवं सुंदरम् तक पहुँचने का साधन नहीं। उसके कोमलता, करुणा, आज्ञाकारिता, पवित्रता आदि गुण उसे पुरुष की इच्छानुकूल बनाने के लिए आवश्यक हैं, संसार पर कल्याण–वर्षा के लिए नहीं। न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाने का अधिकार है और न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरुद्ध कुछ कहने का। उसका जीवन पुरुष के मनोरंजन तथा उसकी वंशवृद्धि के लिए इस प्रकार चिरनिवेदित हो चुका है कि उसकी सम्मति पूछने की आवश्यकता का अनुभव भी किसी ने नहीं किया। वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञा–पालन के लिए प्रस्तुत करता रहता है। गृहिणी का कर्तव्य कम महत्वपूर्ण नहीं

यदि वह साधिकार और स्वेच्छा से स्वीकृत हो। जिस गृह को बचपन से उसका लक्ष्य बनाया जाता है यदि उस पर उसे अन्न–वस्त्र पाने के अतिरिक्त कोई और अधिकार भी होता, जिस पुरुष के लिए उसका जीवन एकांत रूप से निवेदित है यदि उसके जीवन पर उसका भी कोई स्वत्व होता, तो यह दासता स्पृहणीय प्रभुता बन जाती। परंतु जिस गृह के द्वार पर भी वह बिना गृहपति की आज्ञा के पैर नहीं रख सकती, जिस पुरुष के घोर–से–घोर अन्याय, नीच–से–नीच आचरण के विरोध में दो शब्द कहना भी उसके लिए अपराध हो जाता है, उस गृह को बंदीगृह और पुरुष को कारारक्षक के अतिरिक्त वह और क्या समझे!

इसमें संदेह नहीं कि ऐसी परिस्थिति का कुछ उत्तरदायित्व स्त्री पर भी है, क्योंकि उसे जीने की कला नहीं आती, केवल युगयुगांतर से चले आने वाले सिद्धांतों का भार लेकर वह स्वयं ही अपने लिए भार हो उठी है।

मनुष्यता के ऊपर की स्थिति को अपना लक्ष्य बनाने से प्रायः मनुष्य देवता की पाषाण प्रतिमा बनकर रह जाता है और इसके विपरीत मनुष्य से नीचे उतरना पशु की श्रेणी में आ जाना है। एक स्थिति मनुष्य से ऊपर होने पर भी निष्क्रिय है, दूसरी इससे नीची होने के कारण मनुष्यता का कलंक है। अतः दोनों ही स्थितियों में मनुष्य का पूर्ण विकास संभव नहीं। हमारे समाज में अपने स्वार्थ के कारण पुरुष मनुष्यता का कलंक है और स्त्री अपनी अज्ञानमय निस्पंद सहिष्णुता के कारण पाषाण–सी उपेक्षणीय। दोनों के मनुष्यत्व–युक्त मनुष्य हो जाने से ही जीवन की कला विकास पा सकेगी जिसका ध्येय मनुष्य की सहानुभूति, सक्रियता, स्नेह आदि गुणों को अधिक–से–अधिक व्यापक बना देना है।

जीवन को विकृत न बनाकर उसे सुंदर और उपयोगी रूप देने के इच्छुक को अपने सिद्धांतों से संबंध रखने वाली अंतर्मुखी तथा उन सिद्धांतों के सक्रिय रूप से संबंध रखने वाली बहिर्मुखी शक्तियों को पूर्ण विकास की सुविधाएँ देनी ही पड़ेंगी। वही वृक्ष पृथ्वीतल पर बिना अवलंब के अकेला खड़ा रहकर झंझा के प्रहारों को मलय–समीर के झोकों के समान सहकर भी हरा–भरा फल–फूल से युक्त रह सकेगा, जिसकी मूल–स्थित शक्तियाँ विकसित और सबल हैं और उसकी मूल–स्थिति दृढ़ रह सकती है जो धरातल से बाहर स्वच्छंद वातावरण में सांस लेता है। जब बहिर्मुखी शक्तियाँ भी अंतर्मुखी हो जाती हैं तब बाह्य सक्रियता नष्ट हुए बिना नहीं रहती। आज चाहे हमारी आध्यात्मिकता भीतर–ही–भीतर पाताल तक फैल गई हो, परंतु जीवन का व्यावहारिक रूप विकृत–सा होता जा रहा है। जीवन का चिह्न केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण नहीं है किंतु संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है। जब तक बाह्य तथा आंतरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते, हम जीना नहीं जान सकते।

4.3 निबंध का सार

आपने पूरे निबंध को पढ़ने के बाद यह समझ लिया होगा कि महादेवी वर्मा ने इसमें क्या कहना चाहा है। यह निबंध 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह का अंतिम निबंध है। इस पूरे संग्रह में महादेवी ने नारी समस्या के अनेक पहलुओं पर विस्तार से विचार किया है। प्रस्तुत निबंध में जीने की कला को केंद्र में रखकर भारतीय नारी की दुर्दशा के मूलभूत कारणों को अत्यंत तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस निबंध में सबसे पहले महादेवी जी ने जीने की कला के लिए जीवन के उच्च सिद्धांतों और उनके सही व्यवहार को अनिवार्य सिद्ध किया है। ये दोनों एक–दूसरे पर पूर्णतः निर्भर हैं। व्यवहार–विहीन सिद्धांतों का बोझढोने वाला मनुष्य उस पशु के समान है, जिसे बिना जाने ही शास्त्रों और धर्मग्रंथों का भारवाहक बनना पड़ता है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि सत्य, अहिंसा, क्षमा आदि मानवी गुणों को हम सिद्धांत रूप में जानकर भी न समाज का उपकार कर सकते हैं और न ही अपना भला। परिस्थिति, स्थान, काल–विशेष में इनके वास्तविक अर्थ और यथार्थ को समझकर ही हम इन्हें उपयोगी और मानवीय बना सकते हैं। एक निर्दोष व्यक्ति के प्राणों की रक्षा के लिए बोला गया असत्य और की गई हिंसा सत्य और अहिंसा से श्रेष्ठ माना जाएगा। इसी तरह एक क्रूर अत्याचारी को क्षमा करने वाले क्रोधजित (क्रोध पर काबू पाने वाले) से दण्ड देने वाला क्रोधी लोगों के लिए आदर्श बन सकता है। सिद्धांतों की जितनी भारी गठरी लेकर हम कर्म–क्षेत्र के द्वार पर पहुँचते हैं, शायद ही दुनिया के किसी अन्य देश के व्यक्ति को उतना भारी बोझ लेकर कर्म–क्षेत्र में पहुँचना पड़ता हो। लेकिन कार्य–क्षेत्र में हम सबसे अधिक निष्क्रिय सिद्ध हुए हैं। क्योंकि हम अपने सिद्धांतों को सदुपयोग से बचाकर उसी प्रकार सुरक्षित रखने में ही सिद्धि मान लेते हैं, जिस प्रकार एक कंजूस अपने धन को व्यय से बचाकर रखने में ही अपनी सफलता मान लेता है।

यहाँ आप यह न समझ लें कि इस निबंध में सिद्धांतों का विरोध किया गया है। इस संबंध में महादेवी की स्पष्ट मान्यता है कि जीवन के सिद्धांत जीवनयापन के मार्ग–निर्देशक आदर्श हैं, उनके प्रकाश में ही हम जीवन का सही लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन हमने जीवन को उचित कार्य से विमुख कर उसके व्यवस्थापक नियमों या सिद्धांतों को ही अपने पैर की बेडियाँ बना ली, फलस्वरूप लक्ष्य तक पहुँचने की इच्छा भी भूल गए। इस प्रकार निबंध लेखिका ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादित किया है कि समूचे देश में जीने की कला न जानने का अभिशाप व्याप्त है। लेकिन स्त्रियों ने इस अभिशाप के कारण जो घोर पीड़ा सही है, उसे सहकर भी जीवित रहने पर अभिमान करने वाला कोई विरला ही होगा। यहाँ तक के अंश को निबंध की भूमिका या पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। इसके बाद निबंधकार ने भारतीय नारी की दुर्दशा के सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक–धार्मिक कारणों को विस्तार से विवेचित–विश्लेषित किया है।

भारतीय नारी के शोषण की समस्या पर विचार करते हुए महादेवी जी ने यह स्वीकार किया है कि उसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं, जिनसे किसी अन्य देश की नारी देवी बन सकती है। उसमें सहन–शक्ति, त्याग, आत्म–बलिदान, पवित्रता आदि की पराकाष्ठा दिखायी देती है, जिसका अत्यंत भाव–विह्वल ढंग से लेखिका ने प्रतिपादन किया है। अपने इन गुणों के कारण भारतीय नारी में हमारी संस्कृति का वह कोष सुरक्षित है, जिसकी रक्षा किसी अन्य के द्वारा संभव नहीं थी। आज भी वह त्यागमयी माता, पतिव्रता पत्नी, स्नेहमयी बहन और आज्ञाकारिणी पुत्री है। जबकि अत्यंत विकसित देशों की स्त्रियाँ अपने भौतिक सुखों के लोभ में अपनी युगों पुरानी संस्कृति का परित्याग कर चुकी हैं। भारतीय नारी को त्याग, बलिदान और स्नेह के नाम पर सब कुछ न्योछावर करना आता है, लेकिन जीने की कला ही नहीं आती, जो इन अलौकिक गुणों को सार्थक और सजीव करती है।

बाल–विवाह और विधवा–समस्या पर अत्यंत भावुक ढंग से विचार करते हुए महादेवी जी ने नारी का एक अत्यंत करुण चित्र प्रस्तुत किया है। 'हिंदू गृहस्थ की दुधमुंही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा' एक अज्ञात व्यक्ति के लिए

अपने हृदय की तमाम इच्छाओं को निर्ममतापूर्वक कुचल देती है। सतीत्व और संयम के नाम पर तमाम सारी यंत्रणाएँ झेलते हुए भी वह दूसरों के अमंगल के भय से दो बूंद आँसू और आह भी नहीं निकाल सकती।

भारतीय आचार संहिता में नारी के लिए अत्यंत उच्च आदर्श और सिद्धांत प्रतिष्ठित हैं। व्यवहार में इनकी हास्यास्पदता को सिद्ध करते हुए महादेवी जी ने लिखा है कि एक ओर उसे अर्धांगिनी (पुरुष का आधा अंग) के उपहास का भार ढोना पड़ता है तो दूसरी ओर सीता–सावित्री के अलौकिक तथा पवित्र आदर्श से उसे दबा दिया जाता है। इन उच्चादर्शों से दबी–कुचली वह एक खरीदी गई सेविका की भाँति अपने शराबी, दुराचारी तथा जानवर से भी नीचे गिरे स्वामी (पति) की सेवा में लगी रहती है। पति के अमानुषिक दुर्व्यवहार को सहन करने के बावजूद देवताओं से अगले जन्म में भी उसी का संग पाने का वरदान मांगने वाला पत्नी सभी को आश्चर्य में डाल देती है। पिता के एक इशारे पर अपने सारे रंगीन स्वप्नों का दफनाकर बिना आह भरे अयोग्य–से–अयोग्य पुरुष की पत्नी बनने को तैयार पुत्री नारी जीवन के अभिशाप को साकार करती है। पिता की सम्पत्ति और वैभव का उपभोग करने वाले भाई की कलाई पर राखी बांधने वाली दरिद्र बहन का स्नेह देखकर चकित रह जाना पड़ता है। दायित्वहीन अपने अनेक पुत्रों द्वारा उपेक्षित और निरादृत माँ का चोट खाया हुआ हृदय जब पुत्रों की कल्याण–कामना करता है तो स्त्री–स्वभाव की गरिमा साकार हो जाती है। लेकिन स्त्री सुलभ इन सारे गुणों पर महादेवी जी ने प्रश्न–चिह्न भी लगा दिया है। उनके अनुसार त्याग, सहनशीलता, निःस्वार्थ स्नेह, साहस आदि गुणों का तब तक कोई मूल्य नहीं है, जब तक इनके साथ विवेक, सजीवता और सार्थकता का भाव नहीं जुड़ जाता। इन सारे गुणों से सम्पन्न नारी को निबंध लेखिका ने 'शव' की संज्ञा दी है।

आपके मन में नारी को 'शव' की संज्ञा देने से लेखिका के अन्याय की बात उठ सकती है। लेकिन ऐसी बात है नहीं। यहाँ महादेवी जी की आक्रोशपूर्ण सहानुभूति ही प्रकट हुई है। शव अपमान का विरोध नहीं कर सकता, किसी भी आघात को वह शांति से सह सकता है, उसे चाहे जल में फेंक दें या चिता पर जला दें, वह आह नहीं भरेगा और उसकी खुली आँखों में न आँसू आएगा और न ही उसके शरीर में कंपन होगा। लेखिका ने नारी की इन कमजोरियों के कारण उसे निस्पंद शव कहा है। वे उसकी निष्क्रियता की प्रशंसा करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। क्योंकि अपनी सहनशीलता, त्याग और बलिदान की प्रशंसा सुनते–सुनते वह इसे अपने धर्म का अंग मान बैठी है। लेखिका इस जड़ता से उसकी मुक्ति चाहती है।

इस निबंध में महादेवी जी ने नारी की दुर्दशा के लिए उसकी स्वयं की कमजोरियों की अपेक्षा पुरुष प्रधान समाज के हथकण्डों को अधिक उत्तरदायी ठहराया है। हिंदू समाज ने अपनी प्राचीन गौरव–गाथा का उसे प्रदर्शन मात्र बनाकर रख दिया है। स्त्री को मूक और असहाय रूप से इस गौरव के भार को वहन करना पड़ रहा है। पूँजीवादी समाज में धन की प्रभुता उसके लिए जितनी घातक सिद्ध हुई, धर्म और अधिकार की प्रभुता भी उसके लिए उतनी ही घातक, पीड़ादायक सिद्ध हुई है। समाज में धनार्जन का दायित्व मिल जाने से पुरुष को पूँजीपतित्व अपने आप प्राप्त हो गया, सम्पत्ति की अधिक शक्ति के कारण अधिकार भी उसे सहज रूप से मिल गया। शास्त्र और दूसरे सभी प्रकार के सामाजिक नियमों का निर्माता होने के कारण वह स्वयं को अधिक–से–अधिक स्वतंत्र और स्त्री को कठिन–से–कठिन बंधन में रखने में समर्थ हो गया। सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक उपकरणों से निर्मित पुरुष प्रधान व्यवस्था का

यह तंत्र इतना ठोस और कारगर साबित हुआ कि उसमें ढलकर स्त्री केवल दासी या सेविका के रूप में ही निकलने लगी। अपने अपमान के प्रति विद्रोह तो क्या, अपनी दशा के विषय में प्रश्न करना भी उसके लिए जीवन में यातना और मृत्यु के बाद नरक मिलने का साधन मान लिया गया। आज के वैज्ञानिक और यंत्र–युग में दासता के इस पुराने किंतु दृढ़ यंत्र के निर्माण–कौशल पर महादेवी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा है कि 'इसमें मूक यंत्रणा सहने वाला व्यक्ति ही सहायता देने वाले के कार्य में बाधा डालता रहा है।' यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी संस्कारग्रस्तता, रूढ़िवादिता और अज्ञान के कारण नारी–मुक्ति का विरोध स्वयं नारियाँ ही कर रही हैं। बाल विवाह, पुनर्विवाह, विधवा–विवाह के संदर्भ में इसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

बाल्यावस्था से ही लड़की अपने आपको पराये घर की वस्तु मानने लगती है, जिसमें न जाने की इच्छा भी उसके लिए पाप है। महादेवी जी ने इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया है कि विवाह के व्यवसाय में लड़की की इच्छा और उसकी योग्यता का कोई स्वतंत्र मूल्य नहीं है। उसका सारा कौशल पति के प्रदर्शन तथा गर्व की वस्तु बन जाता है। उसके सारे गुण उसे अपने–आपको पति की इच्छानुकूल बनाने के लिए ही आवश्यक हैं, दूसरों के कल्याण–कार्यों के लिए नहीं। जिस गृह को बचपन से उसका गृह माना जाता है, वहाँ उसे अन्न–वस्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य अधिकार प्राप्त नहीं होता। जिस पति के लिए उसका जीवन समर्पित होता है, उस पति के जीवन पर भी यदि उसका कुछ स्वत्व होता तो नारी की दासता में भी प्रभुता का सुख प्रवाहित होने लगता।

निबंध के अंत में महादेवी जी ने 'जीने की कला' की समस्या का कोई सीधा समाधान तो नहीं दिया लेकिन इसके प्रति विश्वास व्यक्त किया है। इस संबंध में उनकी स्पष्ट मान्यता है कि अपने स्वार्थ के कारण पुरुष समाज का कलंक है और नारी अपनी अज्ञानमय सहिष्णुता के कारण पाषाण की तरह उपेक्षणीय। दोनों के मनुषत्व–युक्त मनुष्य हो जाने पर ही जीने की कला का विकास होगा। इसके बाद ही सहनशीलता, सक्रियता, सहानुभूति, त्याग, स्नेह आदि गुण व्यापक रूप से मानव–समाज के विकास में सहायक होंगे। जीवन को सुंदर और उपयोगी रूप प्रदान करने वालों को सिद्धांतों से संबंध रखने वाली अंतर्मुखी शक्तियों को पूरे विकास की सुविधाएँ देनी ही पड़ेंगी। जब तक आंतरिक तथा बाहरी विकास एक–दूसरे पर निर्भर होकर एक–दूसरे के साथ जुड़कर आगे नहीं बढ़ते, तब तक हम जीना नहीं जान सकते।

4.4 अंतर्वस्तु

निबंध के मूल पाठ और उसके सार को पढ़कर आपने समझ लिया होगा कि महादेवी जी ने इसमें क्या कहना चाहा है। इस भाग में हम निबंध की अंतर्वस्तु पर विचार करेंगे। महादेवी ने इस निबंध में जीने की कला को अपना विषय बनाया है, लेकिन निबंध में कला की बारीकियों के विवेचन–विश्लेषण को अंतर्वस्तु न बनाकर भारतीय समाज में नारी के शोषण और उसकी दुर्दशा के सामाजिक, धार्मिक और आचारशास्त्रीय कारणों पर प्रकाश डाला है। अतः निबंध की अंतर्वस्तु समाजशास्त्रीय रूप ग्रहण कर लेती है। फलस्वरूप इसमें महादेवी जी का जीवन विषयक चिंतन और सामाजिक विचार ही अधिक प्रकट हुआ है। 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह की भूमिका में महादेवी जी ने लिखा है कि 'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा

लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।' (पृ.5) लेकिन इस संबंध में आपको ध्यान रखना पड़ेगा कि महादेवी एक भावुक कवयित्री भी रही हैं। इसलिए निबंध में स्थान–स्थान पर अपनी निजी भावनाओं को अत्यंत भावुकतापूर्वक उन्होंने प्रतिपादित किया है। विचारों के साथ इसमें उनकी भावना का भी समुचित योगदान है। अतः यहाँ हम अंतर्वस्तु की दृष्टि से उनके विचार पक्ष और भाव पक्ष – दोनों का अलग–अलग विवेचन करेंगे।

4.4.1 विचार पक्ष

'जीने की कला निबंध 'शृंखला की कड़ियाँ' संग्रह का अंतिम निबंध है। इस संग्रह को महादेवी जी ने भारतीय नारी को समर्पित करते हुए लिखा है – 'जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त, किंतु अक्षय वात्सल्य–वरदानमयी भारतीय नारी को।' इससे स्पष्ट है कि संग्रह के अन्य निबंधों के साथ ही प्रस्तुत निबंध भी भारतीय नारी की समस्या से सम्बद्ध है। समस्या प्रधान होने के कारण इसे विचारधारात्मक निबंध भी कहा जा सकता है। इसमें महादेवी जी मुख्य रूप से एक चिंतक और विचारक के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती हैं। समस्या के विश्लेषण में उन्होंने अपनी समाजशास्त्रीय सोच का पूरा परिचय दिया है।

इस निबंध में महादेवी जी ने अपनी नारी–विषयक चिंता को अत्यंत व्यापक सामाजिक संदर्भ दिया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने सर्वप्रथम किसी कार्य के दो आवश्यक पक्षों को सामने रखा है – एक सिद्धांत पक्ष और दूसरा उसका क्रियात्मक या व्यवहार पक्ष। इन दोनों पक्षों के परस्पर सहयोग से ही किसी कार्य का समुचित संपादन संभव है। जिस तरह सिद्धांत के अभाव में कोई कार्य अंधे की छलांग मात्र बनकर रह जाता है, उसी प्रकार, उसके मानवोपयोगी व्यवहार के बिना सिद्धांत मंत्रोच्चारण करने वाले तोते की वाणी की तरह निरर्थक सिद्ध हो जाता है। इस तथ्य को महादेवी ने विस्तार के साथ, कई उदाहरणों से पुष्ट करते हुए, अत्यंत प्रभावशाली पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित किया है। इसके बाद वे अपनी मूल समस्या पर आती हैं।

जीने को एक कला मानते हुए महादेवी ने लिखा है कि 'आज तो जीने की कला न जानने का अभिशाप देश–व्यापक है, परंतु विशेष रूप से स्त्रियों ने इस अभिशाप के कारण जो सहा है, उसे सहकर जीवित रहने का अभिमान करने वाले विरले ही मिलेंगे।' संस्कार रूप में भारतीय नारी के पास वे सारे सिद्धांत और आदर्श मौजूद हैं, जिन्हें मानवीय गुणों की संज्ञा दी जाती है। वात्सल्य, ममता, स्नेह, पातिव्रत्य से लेकर आज्ञाकारिता, त्याग, सहनशीलता, सहिष्णुता, पवित्रता आदि के रूप में उसके पास भारतीय संस्कृति का एक अक्षय कोष है, जिसकी सुरक्षा किसी अन्य द्वारा संभव नहीं है। अपने इन गुणों के बावजूद वह उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारविहीन, व्यक्तित्वहीन प्राणी बनकर रह गई है। इस स्थिति के लिए एक सीमा तक नारी को उत्तरदायी मानकर अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए महादेवी जी ने लिखा है कि वह जीने की कला नहीं जानती। इसलिए वह गुणों को चरम सत्य और निरपेक्ष मानकर उन्हीं के भार से निस्सहाय की तरह दबी रहती है। अपने त्याग, बलिदान, सहिष्णुता और पवित्रता की शक्ति को पहचान कर, उनकी उपयोगिता को समझकर वह प्रतिकार, प्रतिरोध और अपने अधिकार के लिए तत्पर नहीं हो पाती। वह नहीं समझती कि इन महान मानवीय गुणों में कर्त्तव्य के साथ ही अधिकार भी समाविष्ट है।

इस निबंध में महादेवी जी ने नारी–दुर्दशा का कारण स्वयं नारियों को ही न मानकर पुरुष प्रधान भारतीय समाज के विभिन्न हथकण्डों को सबसे बड़ा कारण सिद्ध किया है। हिंदू समाज ने सीता, सती, सावित्री के आदर्श के साथ नारी–जीवन से जुड़े मानवीय गुणों का ऐसा मिश्रण तैयार किया है, जिसने नारी को अपनी प्राचीन गौरव–गाथा का प्रदर्शन मात्र बनाकर रख दिया है। पुरुष–निर्मित सारे शास्त्र, पुराण, आचार–संहिता आदि में पुरुष की अर्धांगिनी मानते हुए भी नारी को किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया गया है। अपने सहज संस्कार से नारी ने इसे अपनी मर्यादा स्वीकार कर ली है। लेकिन यह मर्यादा पुरुष प्रधान समाज द्वारा निर्धारित है, जिसे मानने के लिए उसे विवश किया गया है या विवश होना पड़ा है।

इस पूँजीवादी युग में नारी–दुर्दशा के एक नए पक्ष पर भी महादेवी ने विचार किया है। सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने के कारण पुरुष को धनोपार्जन का दायित्व संभाल लेने के बाद धन की सत्ता के साथ ही उसे अधिकार की सत्ता भी सहज ही प्राप्त हो गई। इसके साथ ही, धर्म और सामाजिक विधि–विधानों का निर्माता होने के कारण वह अपने–आपको अधिक स्वच्छंद रखने के साथ नारी को कठिन–से–कठिन बंधन में बांधने में समर्थ हो सका है। अपने युग के संदर्भ में महादेवी जी ने इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया है कि नारी को बांध रखने का सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक उपकरणों से बना हुआ यह यंत्र इतना पूर्ण और कारगर साबित हुआ है कि उसमें ढलकर स्त्री केवल सफल दासी के रूप में ही निकल सकी। उसकी योग्यता, कला, उसके सारे गुण – कोमलता, सौंदर्य, करुणा, त्याग, पवित्रता आदि उसके व्यक्तित्व के अंग और समाज–कल्याण के लिए न होकर केवल पुरुष (पति) को इच्छानुकूल बनाने वाले साधन मात्र बनकर रह गए। उसे पुरुष के मनोरंजन और उसकी वंश–वृद्धि का उपकरण मात्र बना दिया गया।

इस निबंध की अंतर्वस्तु को हम संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहें तो कह सकते हैं कि नारी को न पुत्री के रूप में अधिकार है, न माता के रूप में, न पत्नी के रूप में और न बहन के रूप में ही। विधवा के रूप में तो उसकी जो दारुण स्थिति है, वह अवर्णनीय है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी के इस निबंध में उनके नारी विषयक सामाजिक चिंतन और विचारों की प्रधानता है।

4.4.2 भाव पक्ष

हमने पहले ही इस तथ्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया है कि महादेवी जी एक भावुक कवयित्री रही हैं। इस निबंध में भी उनकी निजी भावना लगातार चिंतन और विचारों पर अपना दबाव बनाए रखती है। इस संबंध में आपकी जानकारी के लिए जो दूसरी आवश्यक बात है, वह यह कि भाव और विचार में परस्पर विरोध नहीं; वे एक–दूसरे के पूरक हैं। अनुभव ही विचारों का आधार होता है। अनुभव निजी संदर्भों तक सीमित रखने का भाव रहता है, लेकिन वही समाज के बाहरी संबंधों के बीच कट–छँट और सँवर कर विचार, बुद्धि और विवेक का रूप धारण कर लेता है। भाव के साथ हर स्थिति में कर्त्तव्य का भी एक हल्का बोध समाहित रहता है लेकिन वही जब विवेक–युक्त विचार का रूप धारण करता है, तो कर्त्तव्य–बोध अधिक व्यापक और तीव्र हो जाता है। महादेवी के संबंध में भी भाव और विचार की यही स्थिति है। इस संदर्भ में एक तीसरी बात भी आपको ध्यान में रखनी होगी। महादेवी एक स्त्री थीं,

जिन्हें की अकाल मृत्यु के बाद लंबे समय तक विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ा था। जीवन में उन्होंने बहुत–सी उत्पीडित स्त्रियों और विधवाओं की सहायता भी की थी और संस्मरणों और रेखाचित्रों में उन्हें अमर भी बनाया है। इसलिए नारी–समस्या, विशेषकर की दुर्दशा के कारणों पर अत्यंत तर्कसंगत ढंग से विचार करते हुए भी मार्मिक स्थलों पर वे पर्याप्त भावुक हो जाती हैं।

इसे अच्छी तरह समझने के लिए निबंध के कुछ भाव–विह्वल प्रसंगों पर विचार करना आवश्यक है 'जीर्ण–से–जीर्ण कुटीर में बसने वालों में भी कदाचित ही कोई ऐसा अभागा निर्धन होगा जिसके उजड़े आंगन में एक भी सहनशीला, त्यागमयी, ममतामयी स्त्री न हो।' वस्तुतः यहाँ चिंतन या विचार की अभिव्यक्ति न होकर आत्मानुभव आधारित भाव ही व्यक्त है। इसे स्त्री की गरिमा का तटस्थ विश्लेषण नहीं कहा जा सकता। इस संदर्भ में दूसरा उदाहरण है 'स्त्री किस प्रकार अपने ह्रदय को चूर–चूर कर पत्थर की देव–प्रतिमा बन सकती है यह देखना हो तो हिंदू गृहस्थ की दुधमुंही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए, जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने ह्रदय के समान प्रिय इच्छाएँ कुचल–कुचल कर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को आमानुषिक, यंत्रणाओं को सहने का अभ्यस्त बना लेती है। वस्तुतः यह एक बाल विधवा का (जिसने अपने पति को जाना–समझा भी नहीं) भावना–प्रसूत करुण चित्र है। हिंदू कन्या, हिंदू गृहणी, हिंदू माँ, हिंदू बहन आदि के ऐसे तमाम चित्र इस निबध में हैं, जो अनुभव–प्रसूत भावना–प्रधान ही कहे जाएंगे। लेकिन इस प्रकार के भावात्मक स्थल निबंध के चिंतन और विचार–प्रधान स्वरूप को कहीं खण्डित नहीं करते। इसके विपरीत, ऐसे स्थल विचार पक्ष को पुष्ट करते हुए उसे सरस, आकर्षक और पठनीय बनाते हैं।

4.5 परिवेश

प्रस्तुत निबंध में व्यक्त स्त्री–विषयक मान्यताओं को लेकर आपके मन में आशंका हो सकती है, क्योंकि आज का सामाजिक–राजनीतिक परिवेश काफी बदल चुका है। यह निबंध 1934 में लिखा गया था। उस समय भारत एक पराधीन देश था। जहाँ एक ओर स्वाधीनता आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था, वहीं दूसरी ओर अछूतोद्धार आंदोलन, नारी–मुक्ति आंदोलन के साथ ही समाज–सुधार के बहुत से आंदोलन भी चल रहे थे। इसके साथ ही अनाथाश्रम, विधवाश्रम, सेवाश्रम, वेश्या–सुधार आश्रम के रूप में अनेक प्रकार के आश्रमों की स्थापना का देश–व्यापी प्रयास हो रहा था। उस काल में स्त्रियों की स्थिति काफी सोचनीय थी। पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, पुनर्विवाह, विधवा–विवाह आदि विषयों के पक्ष–विपक्ष में तमाम तरह की दलीलें दी जा रही थीं। स्त्री–शिक्षा के साथ ही राजनीति और नौकरियों में उसके प्रवेश को लेकर भी काफी विवाद की स्थिति थी। 'चाँद', 'माया' आदि जैसी पत्रिकाएँ इसके लिए खुला मंच बनी हुई थीं। ऐसे वातावरण में 'चाँद' में प्रकाशित नारी विषयक महादेवी की टिप्पणियाँ पर्याप्त महत्व रखती हैं। यह निबंध भी उन टिप्पणियों की ही एक कड़ी है। उस समय तक शिक्षा, सामाजिक कार्य, राजनीतिक आंदोलन, सरकारी नौकरियों आदि में नारी के लिए कोई स्थान नहीं था। परिवार और समाज में वह पूरी तरह उपेक्षित थी।

स्वाधीनता के बाद, विशेष रूप से भारतीय संविधान के निर्माण के बाद उसे सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर अधिकार की गारंटी की गई। इसके बावजूद व्यवहार में उसके

साथ प्रायः भेद बरता जाता रहा। शोषण, उत्पीड़न और प्रताड़ना की परंपरा अब काफी शिथिल हुई है, फिर भी महादेवी ने जिन समस्याओं को उठाया है, वे अब भी प्रासंगिक हैं। सिद्धांत और व्यवहार की जिस अभेद्य खाईं का उन्होंने प्रतिपादन किया है, वह आज भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। शिक्षा, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की नौकरियों में उनकी भागीदारी बढ़ी है। आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी के बावजूद वे परंपरागत संस्कारों के पंजे से पूरी तरह मुक्त नहीं हुई हैं। उसकी योग्यता, कला, शिक्षा आदि अब भी अधिकांशतः पति की प्रतिष्ठा का उपकरण बना हुआ है। बावजूद इसके नारी की स्थिति अब वैसी नहीं है, जैसी महादेवी के इस निबंध के रचनाकाल में थी। 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह की भूमिका में महादेवी ने स्वयं इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया है, 'भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राणवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं।.....समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए।' (पृ.6) महादेवी की इस मान्यता को हम ध्यान में रखें तो आज भी उनकी नारी–विषयक मान्यता की प्रासंगिकता है। इस निबंध के माध्यम से महादेवी जी ने आज के नारी–मुक्ति आंदोलन के लिए एक ठोस जमीन प्रस्तुत की है।

आप इस चीज को अच्छी तरह जानते हैं कि आज भी पुरुष के कंधे–से–कंधा मिलाकर समान अधिकार का उपयोग करने वाली नारियों की संख्या नगण्य है। क्योंकि पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था का ढाँचा आज भी इतना दृढ़ है कि वह आसानी से नारी को मुक्ति की सांस नहीं लेने देगा। लोकसभा में उनके लिए 30 प्रतिशत आरक्षण का मामला इसका ज्वलंत उदाहरण है, जो अनेक अवरोधों का सामना कर रहा है। इस प्रकार, निबंध के युगीन सामाजिक परिवेश को वर्तमान युग के सामाजिक–राजनीतिक परिवेश के आमने–सामने रखकर देखें तो हम महादेवी जी के आग्रह–अनुरोधों से अब भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

4.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

इकाई 2 में हरिशंकर परसाई पर विचार करते हुए हमने देखा है कि निबंध में निबंध लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक अवकाश होता है। महादेवी के संदर्भ में भी यह बात पूर्णतः सत्य है। उदारता, सहानुभूति, परदुखकातरता, करुणा और सेवा–भाव उनकी जीवन–शैली का अभिन्न अंग है। उनके समूचे गद्य साहित्य के साथ इस निबंध में भी उनके व्यक्तित्व की ये विशेषताएँ उजागर हुई हैं।

महादेवी जी के व्यक्तित्व की प्रथम और मूलभूत विशेषता है, नारी–सुलभ कोमल हृदय और कवि–सुलभ भावुकता। प्रस्तुत निबंध में अमानुषिक यंत्रणाओं के बीच पत्थर की प्रतिमा बनी युवती बाल विधवा का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने कोमल हृदय और कवि–सुलभ भावुकता को अत्यंत जीवंत ढंग से प्रस्तुत किया है। पतिव्रता हिंदू अर्धांगिनी द्वारा शराबी, दुराचारी और पशु से भी नीचे गिरे हुए पति के प्रति समर्पण का भाव देख उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। पिता के संपूर्ण ऐश्वर्य को भोगने वाले संपन्न भाई की कलाई में बिना ईर्ष्या के सहज भाव से राखी बांधने वाली दुखियारी दरिद्र बहन उनके हृदय को विदीर्ण कर देती है। अपने अनेक कुपुत्रों के अपमान और उपेक्षा को भूलकर एक ममतामयी, वात्सल्य भावना की प्रतिमा माँ द्वारा उनकी कल्याण–कामना करते देख महादेवी का भाव–प्रवण नारी हृदय भाव–विह्वल हो जाता

है। ऐसे स्थलों पर उनके हृदय की कोमलता सभी बाह्य बंधनों को तोड़कर उन्मुक्त भाव से प्रवाहित हुई है।

अपनी संपूर्ण कोमलता और सहृदयता के साथ अन्याय के प्रतिकार या विरोध का भाव भी महादेवी के व्यक्तित्व का आवश्यक अंग रहा है। हिंदू समाज–व्यवस्था और उसके दृढ़ तंत्र पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने लिखा है, 'मनुष्य को न नष्ट कर उसकी मनुष्यता को इस प्रकार नष्ट कर देना कि वह उस हानि को जीवन का सबसे उज्ज्वल, सबसे बहुमूल्य और सबसे आवश्यक लाभ समझने लगे।' इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष प्रधान भारतीय समाज व्यवस्था ने उसे सहनशीलता, त्याग, तप और पवित्रता की ऐसी मूर्ति बना दिया है, जिसकी जीवंतता और सार्थकता समाप्त हो गई है। यहाँ सामाजिक तंत्र की क्रूरता और अन्याय पर अत्यंत महीन और बारीक ढंग से आक्रोश व्यक्त किया गया है। इससे महादेवी के नारी सुलभ कोमल, किंतु अन्याय के प्रतिकार के दृढ़ व्यक्तित्व का प्रकाशन हुआ है। महादेवी की जीवन–शैली को देखते हुए कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व अत्यंत संयत और संतुलित है। उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता उनकी रचना–शैली के माध्यम से उद्घाटित हुई है। महादेवी की शैलीगत विशेषताओं की विस्तृत चर्चा हम यथास्थान आगे करेंगे, लेकिन यहाँ व्यक्तित्व के संदर्भ में उसका संकेत आवश्यक है। प्रायः कहा जाता है कि 'शैली ही व्यक्तित्व है'। महादेवी के संदर्भ में भी यह पूर्णतः सत्य है। अपनी प्रतिरोध–प्रतिकार, स्वीकृति–अस्वीकृति, आग्रह–अनुरोध, विधि–निषेध की बात को वे इतने संयत, संतुलित एवं कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती हैं कि उसका प्रभाव अपने आत्मीय जन द्वारा कही गई बात की तरह पड़ता है। शैली के इस गुण को प्राचीन साहित्य–शास्त्रियों ने 'कान्ता सम्मित उपदेश' की संज्ञा दी है। कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार अपनी प्रिय पत्नी की सलाह पति बिना किसी दबाव के प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है, उसी प्रकार महादेवी जी की बात भी पक्ष और विपक्ष – दोनों तरह के लोगों द्वारा प्रेमपूर्वक सुनी जाती है। इसके लिए कुछ उदाहरण आपके लिए अधिक उपयोगी हो सकते हैं। सिद्धांतनिष्ठ रूढ़िवादी लोगों की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है, 'यदि हम बिना सिद्धांत समझे उनका अनुपयुक्त प्रयोग करते रहें, तो हमारी क्रिया बिना अर्थ समझे मंत्रपाठी शुक की तरह निरर्थक हो उठेगी।' वस्तुतः यह सोदाहरण यंत्रणा या राय सिद्धांतनिष्ठ व्यक्ति को भी आहत नहीं करती, बल्कि प्रिय लगती है। इसी तरह स्त्रियों की नासमझी पर कटाक्ष करते हुए वे कहती हैं कि इन्हें त्याग के, बलिदान के और स्नेह के नाम पर सब कुछ आता है, परंतु जीने की वह कला नहीं आती जो इन अलौकिक गुणों को सजीव और सार्थक कर देती है।' यह आग्रह या सीख स्त्रियों को बुरी न लगकर उनके लिए प्रेरणादयक बन जाती है। निबंध में ऐसे बहुत सारे प्रसंग हैं, जिनमें कथन शैली के माध्यम से महादेवी के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं।

बोध प्रश्न

अब तक आपने निबंध के मूल पाठ के साथ ही उसका सार, उसकी अंतर्वस्तु, परिवेश और निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का अध्ययन कर लिया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में उप–संख्या लिखकर दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उसे मिलाकर जाँचें।

7) मंत्रपाठी शुक वाणी से महादेवी ने किस तथ्य की अभिव्यक्ति की है?

   क) तोते की बुद्धिमत्ता को व्यक्त किया है।

ख) वाणी की पवित्रता को दर्शाया है।

ग) कर्मविहीन ज्ञान की निरर्थकता का संकेत किया है।

घ) ज्ञान के महत्व को प्रकाशित किया है। ( )

8) जीवन के वे कौन से दो पक्ष हैं जो जीने की कला के लिए आवश्यक हैं?

क) प्रेम और सहानुभूति।

ख) सिद्धांत और उनका सही व्यवहार।

ग) त्याग और तपस्या।

घ) धैर्य और साहस। ( )

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के नीचे दिए गए रिक्त स्थान में उत्तर दें और उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँचें।

1) निबंध में किस प्रकार नारी–दुर्दशा के लिए एक सीमा तक नारियों को भी जिम्मेदार बताया गया है? अपना उत्तर पाँच पंक्तियों में दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भावों और विचारों के आपसी संबंध को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) निबंध के रचना–युगीन भारतीय परिवेश को ध्यान में रखकर सिद्ध करें कि महादेवी ने नारी समस्या का यथार्थ चित्रण किया है। उत्तर आठ पंक्तियों में सीमित हो।

.....

.....

.....

.....

.....

4) महादेवी के व्यक्तित्व की तीन प्रमुख विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.7 संरचना–शिल्प

अब हम प्रस्तुत निबंध के संरचना–शिल्प पर विचार करने जा रहे हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्य की अन्य गद्य विधाओं से निबंध के संरचना–शिल्प में काफी अंतर है। निबंध को गद्य की कसौटी माना जाता है। एक चुस्त–दुरुस्त और सुगठित विधा के कारण निबंध में भाषा और शैली, दोनों के विषय में लेखक को पर्याप्त सावधानी बरतनी पड़ती है। इस दृष्टि से रचनाकार अधिक स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर सकता। यद्यपि आप हरिशंकर परसाई के संदर्भ में देख चुके हैं कि उन्होंने अपनी व्यंग्यात्मकता के दबाव के कारण निबंध की भाषा–शैली के मान्य सिद्धांतों की अवहेलना करके भी अपने रचना–कौशल का पूर्ण परिचय दिया है।लेकिन निबंध के लिए प्रायः भाषा का मिश्रित और बोलचाल वाला रूप वर्जित है। महादेवी जी ने इस दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आदर्शों का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है।

संरचना–शिल्प की दृष्टि से भाषा और शैली पर अलग–अलग विचार कर हम निबंध की विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे।

4.7.1 भाषा

चूँकि निबंध एक सुगठित और सुचिंतित रचना है, इसलिए इसमें भाषा के व्याकरण–सम्मत, स्तरीय और परिनिष्ठित रूप को स्वीकार करना पड़ता है। महादेवी ने हिंदी गद्य के तत्सम प्रधान संस्कृत–निष्ठ रूप का आग्रह छोड़कर हिंदी के अपने तद्भव–तत्सम युक्त स्तरीय रूप को स्वीकार किया है। इसे प्रसाद गुण (सरल) सम्पन्न साधु (सहज) भाषा की संज्ञा दी जा सकती है। इसको एक उदाहरण के माध्यम से आप आसानी से समझ सकते हैं –

'प्रत्येक कार्य के प्रतिपादन तथा प्रत्येक वस्तु के निर्माण में दो आवश्यक अंग हैं – तद्विषयक विज्ञान (विशेष ज्ञान) और उस विज्ञान का क्रियात्मक प्रयोग। बिना एक के दूसरा अंग अपूर्ण ही रहेगा, क्योंकि बिना प्रयोग के ज्ञान प्रमाणहीन है और बिना ज्ञान के प्रयोग आधारहीन।'

यहाँ प्रत्येक, कार्य, प्रतिपादन, निर्माण, तद्विषयक, विज्ञान, प्रमाणहीन, आधारहीन जैसे संस्कृत के सत्सम से लगने वाले शब्द बहुत सारे तद्भव शब्दों के साथ जुड़कर हिंदी की प्रकृति के अनुकूल सहज भाषा का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। यह सहजता ही महादेवी की भाषा को प्रवाहशील बनाती है, जिसमें शब्द–विन्यास का महत्वपूर्ण योगदान है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध को गद्य की कसौटी माना है तो संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कहकर गद्य को कवियों की कसौटी स्वीकार किया है। महादेवी या किसी भी कवि की सफल काव्य–भाषा का आधार उसकी गद्य–भाषा की प्रवीणता ही है। लेकिन एक कवि के गद्य में उसकी काव्यात्मक भाषा के योगदान को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। महादेवी जब किसी मार्मिक प्रसंग का विश्लेषण करने लगती हैं, तो उनकी कवि–सुलभ भावुकता अत्यंत सहज रूप से काव्यात्मक प्रभाव से उसे सुशोभित कर देती है –

'स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर–चूर कर पत्थर की देव–प्रतिमा बन जाती है, यह देखना हो तो हिंदू गृहस्थ की दुधमुंही बालिका से शापमयी युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए.....जो सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं को सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इसपर भी दूसरों के अमंगल के भय से आँखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।'

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महादेवी की गद्य–भाषा निबंध–रचना की सभी अपेक्षाओं को पूरी करने वाली व्याकरण–सम्मत, तद्भव–तत्सम शब्दों से युक्त अत्यंत सहज भाषा है। लेकिन जीवन के मार्मिक प्रसंगों में वह काव्यात्मकता का दामन भी थाम ही लेती है।

4.7.2 शैली

लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के संदर्भ में हमने महादेवी की निबंध–शैली पर संक्षेप में विचार कर लिया है। यहाँ उनकी शैली के स्वरूप का कुछ विस्तार से परिचय आवश्यक है। वैसे हरिशंकर परसाई की शैली पर (इकाई 2) विचार करते हुए हमने निबंध के लिए मुख्यतः तीन शैलियों – वर्णनात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक शैली का उल्लेख किया था। लेकिन परसाई के संदर्भ में उनकी व्यंग्यात्मक शैली की हमने विस्तार के साथ चर्चा की थी। उपर्युक्त शैलियों के साथ, उन्हीं में अंतर्भूत कुछ और भी शैलियाँ हैं, जिन्हें लाक्षणिक शैली, सांकेतिक शैली, चित्रात्मक शैली आदि नाम दिए गए हैं। गंभीर चिंतन, विचार–प्रधान या समस्या–प्रधान निबंधों में इनका उपयोग प्रायः नहीं होता। जहाँ तक महादेवी के इस निबंध का संबंध है, इसका विषय समस्या–मूलक होने के कारण इसमें प्रमुख रूप से विवेचनात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है।

विवेचनात्मक शैली की मूलभूत विशेषता है कि इसमें बुद्धि, विवेक और तर्क–वितर्क की प्रधानता होती है। विषय की व्याख्या, उसके विश्लेषण, उसके पक्ष–विपक्ष का खण्डन–मण्डन करते हुए प्रायः भावना या अनुभूति का सहारा नहीं लिया जाता या अपेक्षाकृत बहुत कम लिया जाता है। लेकिन इस निबंध की विवेचनात्मक शैली में हमें भावनात्मक आग्रह का स्वर स्थान–स्थान पर तीव्रता से प्रकट होता हुआ दिखाई देता है। वैसे 'जीने की कला' निबंध का आरंभ कला के सिद्धांत और व्यवहार पक्ष की परस्पर निर्भरता से होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए महादेवी ने चित्रकला को उदाहरण के रूप में लिया है, और उसके माध्यम से अन्य कलाओं के लिए सिद्धांत और व्यवहार –दोनों की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इसके बाद महादेवी जी 'जीने की कला' विषय पर आती हैं।

'जीने की कला' को कला सिद्ध करते हुए महादेवी जी ने अन्य कलाओं की तरह उसमें भी सिद्धांत और व्यवहार पक्ष की अनिवार्यता पर जोर दिया है। विषय का विवेचन करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि जीवन के लिए निर्धारित सिद्धांत उचित अवसर पर उपयुक्त प्रयोग के बिना निरर्थक होकर अनावश्यक बोझ बन जाते हैं। इस प्रक्रिया में अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए उन्होंने कई उदाहरण भी दिए हैं। मंत्रोच्चार करने वाले तोते की वाणी की निरर्थकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने सिद्धांतों के सही अर्थ की जानकारी और कल्याणकारी प्रयोग के अभाव में उन्हें निरर्थक और अहितकारी बताया है। इसी तरह जीवन के लिए स्वीकृत कुछ प्रमुख सिद्धांतों – 'सत्यं ब्रूयात', क्षमता, दया, स्वामिभक्ति आदि का भी उदाहरण के रूप में उपयोग किया है। लेकिन इनके उपयुक्त और कल्याणकारी प्रयोग के महत्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है कि किसी निर्दोष की प्राण–रक्षा के लिए बोला गया असत्य सत्य से श्रेष्ठ माना जाएगा। इसी तरह किसी अत्याचारी को क्षमा करने वाले व्यक्ति से उसे दण्ड देने वाला क्रोधी व्यक्ति संसार के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है और एक क्रूर स्वामी की अन्यायपूर्ण आज्ञा का पालन करने वाले सेवक से उसका विरोध करने वाला सेवक अधिक स्वामिभक्त कहलाएगा। जीवन के लिए निर्धारित अन्य सिद्धांतों के संबंध में यही सत्य है और रहेगा भी।

जीवन में सिद्धांत और व्यवहार की इस वास्तविकता का विवेचन–विश्लेषण करने के बाद महादेवी जी नारी–जीवन के अभिशाप की मूल समस्या पर आती हैं। उन्होंने पूरे विवेचन विश्लेषण के साथ बताया है कि भारतीय नारी त्याग, तप, बलिदान, सहनशीलता, सहिष्णुता, पवित्रता, स्नेह, ममता आदि की प्रतिमूर्ति है। इन भारतीय मूल्यों और आदर्शों को निष्ठापूर्वक वहन करते हुए भी आज वह समाज में शोषित और प्रताड़ित हो रही है। क्योंकि वह इन मूल्यवान सिद्धांतों के वास्तविक महत्व और उनकी शक्ति से अनभिज्ञ है। इसलिए वह जीने की कला नहीं जानती। माँ के रूप में, पत्नी के रूप में, बहन और पुत्री के रूप में घर परिवार और बाहर – सभी जगह उसे यातना का शिकार बनना पड़ता है। इस वास्तविकता को उन्होंने तर्कसंगत ढंग से पूरे विवेचन–विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है।

नारी समस्या की गंभीरता और उसके मूल कारणों की समाजशास्त्रीय व्याख्या के बावजूद वे अत्यंत मार्मिक स्थलों पर भाव–विह्वल होकर भावात्मक शैली का भी प्रयोग करने लगती हैं। पतिव्रता, सद्गृहिणी, आज्ञाकारी पुत्री, ममतामयी माँ, स्नेहिल बहन, सतीत्व और संयम के नाम पर यंत्रणा झेलने वाली बाल–विधवा आदि के प्रसंगों में वे अत्यंत भावुक होकर प्रायः चित्रात्मक और भावात्मक शैली का प्रयोग करने लगती हैं। ऐसे प्रसंगों में वे 'कौन ऐसा कठोर होगा जिसकी आँखों में आँसू न आ जाएँ', 'किसका हृदय विदीर्ण नहीं हो जाएगा' आदि जैसे भावोच्छास–युक्त वाक्यों का प्रयोग करने से नहीं चूकतीं। पूरे निबंध में स्थान–स्थान पर प्रयुक्त होने वाली भावात्मक शैली और स्वानुभूत तथ्य विवेचनात्मक शैली के नीरस विवेचन–विश्लेषण में सरसता लाने के साथ ही निष्कर्षों को यथार्थ और अधिक प्रामाणिक भी बना देते हैं।

महादेवी की विवेचनात्मक शैली में सिद्धांत निरूपण या सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या का विशेष प्रयास न होकर उनकी व्यवहारात्मकता पर ही अधिक जोर है। इसलिए तर्क–वितर्क और बौद्धिकता के स्थान पर उन्होंने स्वानुभूत अनुभवों का सहारा अधिक लिया है। अतः नारी उत्पीड़न की समस्या की गंभीरता ही पाठक को अधिक आंदोलित करती है। यही उनका लक्ष्य भी रहा है, जिसमें वे पूरी तरह सफल हुई हैं।

4.8 शीर्षक और प्रतिपाद्य

वैसे निबंध में शीर्षक को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता। कभी–कभी तो उसे अपने विचारों के प्रतिपादन का बहाना मात्र बना लिया जाता है। लेकिन विषयनिष्ठ निबंधों के लिए शीर्षक के विषय में निबंधकार को पर्याप्त सावधानी बरतनी पड़ती है। आप ऊपर–ऊपर से देखें तो यही लगेगा कि शीर्षक से इस निबंध की अंतर्वस्तु तथा प्रतिपाद्य का कोई विशेष संबंध नहीं है। लेकिन इस निबंध का गहन अध्ययन करने के बाद आप समझ गए होंगे कि महादेवी जी ने 'जीने की कला' शीर्षक को प्रतिपाद्य के साथ किस कौशल से जोड़ा है। इस शीर्षक के संबंध में जो दूसरी महत्वपूर्ण बात है, वह यह कि इस निबंध को इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली 'चाँद' पत्रिका की सम्पादकीय टिप्पणी के रूप में 1934 में लिखा गया था। ऐसी कई टिप्पणियों को एकत्र कर 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक से 1942 में उसे पुस्तकाकार रूप दिया गया। इस संग्रह के विभिन्न शीर्षकों को आप देखें तो पत्रकारिता और उसके युगीन दबाव का अनुभव आप स्वयं कर सकेंगे। 'हमारी शृंखला की कड़ियाँ', 'नारीत्व का अभिशाप', 'युद्ध और नारी', 'घर और बाहर', 'हिंदू स्त्री का पत्नीत्व : जीवन का व्यवसाय', 'स्त्री के अर्थ–स्वातंत्र्य का प्रश्न', 'समाज और व्यक्ति' तथा 'जीने की कला।' 1930–40 के मध्य स्वाधीनता आंदोलन के साथ ही नारी–मुक्ति आंदोलन का भी बोलबाला था। 'हिंदू स्त्री का पत्नीत्व', 'नारीत्व का अभिशाप' आदि विषयों पर महादेवी जी लिख चुकी थीं। इन रचनाओं में भी उन्होंने नारी के जीवन पर अनेक कोणों से प्रकाश डाला था। इस निबंधात्मक टिप्पणी को 'जीने की कला' शीर्षक देकर पत्रिका के पाठकों को आकृष्ट करने का प्रयास भी इसमें निहित है, जो पत्रकारिता की एक अनिवार्य आवश्यकता है। लेकिन कला को नारी–जीवन की शैली से जिस प्रकार महादेवी ने जोड़ा है, उससे शीर्षक प्रतिपाद्य के साथ सार्थक ढंग से जुड़ जाता है।

जहाँ तक इस निबंध के प्रतिपाद्य का प्रश्न है, आप 'पूस की रात' कहानी और 'वैष्णव की फिसलन' निबंध के प्रतिपाद्य को पढ़कर इसका आशय समझ गए होंगे। किसी एक निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर ही लेखक कोई रचना करता है। वह उद्देश्य ही रचना का प्रतिपाद्य होता है। इस निबंध में भी महादेवी जी का एक निश्चित उद्देश्य रहा है, जिसे इसका प्रतिपाद्य कहा जा सकता है।

नारी जीवन के अभिशाप के लिए सबसे पहले नारी को ही जिम्मेदार साबित करते हुए लेखिका ने पूरी सहानुभूति के साथ उसे सचेत और जागरूक बनाने का प्रयास किया है। सतीत्व, पातिव्रत्य, त्याग, बलिदान, सहनशीलता, करुणा, स्नेह, ममता के ऊँचे आदर्शों के खूँटे से बँधकर जिस प्रकार उसने अपने–आपको असहाय बना दिया है, उसे छोड़कर वह इन आदर्शों के मानवीय महत्व और लक्ष्य को समझे। उपुर्यक्त आदर्श कर्त्तव्य के बंधन मात्र न होकर अधिकार के साधन भी हैं। उसे इन सिद्धांतों या आदर्शों को अपने पैरों की बेड़ियाँ न बनाकर इन्हें अपने जीवन के विकास और उत्थान के लिए उपयोग में लाना चाहिए। इस तथ्य का प्रतिपादन निबंध में अनेक संदर्भों और उदाहरणों द्वारा किया गया है।

इस निबंध के प्रतिपाद्य का एक दूसरा भी पक्ष है, जिसका संबंध पुरुष और पुरुष प्रधान समाज के विधि–निषेधों और उसके विभिन्न हथकण्डों से है। इस पक्ष का विवेचन–विश्लेषण करते हुए लेखिका ने पुरुष समुदाय को सावधान किया है कि वह अपनी हरकतों से बाज आए। इसमें पहला हथकण्डा है – सीता, सती, सावित्री आदि जैसी नारियों के आदर्श और महान मानवीय गुणों को नारियों से जोड़कर उसे अपनी

प्राचीन गौरवगाथा का प्रदर्शन मात्र बना देना। इस गौरव के बोझ को नारी मूक और निरीह भाव से वहन करती आ रही है। पुरुष समुदाय के इस षड्यंत्र का भी लेखिका ने पर्दाफाश किया है। इस संबंध में पुरुष समुदाय के जिस दूसरे हथकण्डे को लेखिका ने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है, वह है, पूँजीवादी युग में धन, अधिकार और धर्म की सत्ता का पुरुषों के हाथ में होना। धन और अधिकार के बल पर आज वह शास्त्र और समाज के नियमों का निर्माता बनकर अपने को अधिक–से–अधिक स्वच्छंद रखकर नारी को कठिन–से–कठिन बंधन में बांधने में समर्थ बन गया है। इस स्थिति का खुलासा कर महादेवी जी ने केवल पुरुष समुदाय को ही सावधान नहीं किया है वरन नारी समुदाय को भी इस हथकण्डे के प्रति जागरूक बनाया है।

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत निबंध का प्रतिपाद्य भारतीय नारी–जीवन के अभिशाप के विभिन्न पक्षों–पहलुओं का उद्‌घाटन करते हुए उनके कारणों से अवगत कराकर नारी समुदाय को जागरूक बनाना है। यहाँ लेखिका ने अपनी ओर से नारी समस्या के लिए कोई समाधान नहीं प्रस्तुत किया है। यह कमी आपको महसूस हो सकती है। लेकिन 'शृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक संग्रह में 'अपनी बात' के अंतर्गत लेखिका ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है और ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए।' (पृ.6) आज से लगभग साठ वर्ष पहले व्यक्त की गई यह मान्यता आज ज्वलंत रूप से एक सच्चाई बनी हुई है, जो हम सबके लिए विचारणीय है।

बोध प्रश्न

अब तक आप पूरी इकाई का अध्ययन कर चुके हैं। इकाई से संबंधित प्रश्नों के उत्तर कोष्ठकों में दें और उन्हें इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँचें।

9) इस निबंध की भाषा में किस तरह के शब्दों की प्रधानता है?

   क) तद्‌भव–तत्सम से युक्त

   ख) तत्सम

   ग) तद्‌भव

   घ) उर्दू ( )

10) इस निबंध में किस शैली की प्रधानता है?

   क) भावात्मक शैली

   ख) विवेचनात्मक शैली

   ग) वर्णनात्मक शैली

   घ) व्यंग्यात्मक शैली ( )

11) इस निबंध का प्रतिपाद्य क्या है? सबसे सही उत्तर कोष्ठक में निर्दिष्ट करें।

   क) नारी–समस्या का चित्रण

   ख) नारी को जागरूक बनाना

   ग) नारी–समस्या का समाधान

   घ) नारी को उच्च आदर्शों की शिक्षा देना। ( )

12) महादेवी की विवेचनात्मक शैली में नीचे दिए गए कुछ तथ्य सही हैं और कुछ गलत। निशान लगाकर बताएँ की कौन सही है और कौन गलत।

क) सिद्धांत निरूपण किया गया है। (सही / गलत)

ख) सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की गई है। (सही / गलत)

ग) स्वानुभूत अनुभवों का अधिक सहारा लिया गया है। (सही / गलत)

घ) व्यवहार पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है। (सही / गलत)

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर उन्हें जाँचें।

5) इस निबंध की भाषा संबंधी विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें। .

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) इस निबंध की शैली संबंधी किन्हीं तीन विशेषताओं का चार पंक्तियों में उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

7) इस निबंध के प्रतिपाद्य के सबसे महत्वपूर्ण पक्ष को चार पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4.9 सारांश

'जीने की कला' शीर्षक निबंध से संबंधित इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित तथ्यों को अच्छी तरह समझकर अपनी भाषा में व्यक्त कर सकते हैं –

- महादेवी के कवि व्यक्तित्व और गद्यकार व्यक्तित्व के अंतर पर इस इकाई में विस्तार से विचार किया गया है। उनकी जीवन–शैली का वास्तविक प्रतिनिधित्व

उनका गद्य साहित्य ही करता है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद इस तथ्य को आप अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं।

- निबंध की अंतर्वस्तु के विचार–पक्ष और भाव–पक्ष की विशेषताओं को समझने के साथ ही आप विचार और भाव के आपसी संबंध का भी विश्लेषण कर सकते हैं।
- कवि सुलभ भावुकता, नारी सुलभ कोमलता और सहृदयता महादेवी के व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद इस तथ्य को आप अच्छी तरह समझ कर अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- निबंध के रचनाकालीन सामाजिक परिवेश को इस इकाई के माध्यम से समझने के बाद आप महादेवी के विचारों का वर्तमान संदर्भ में सही मूल्यांकन कर सकते हैं।
- इस इकाई में संरचना–शिल्प के संदर्भ में महादेवी की गद्य भाषा को उनकी काव्य भाषा से भिन्न हिंदी की प्रकृति के अनुकूल प्रयोग पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इस तथ्य को समझकर आप स्वयं उसपर समुचित विचार अपनी भाषा में कर सकते हैं।
- वैसे तो महादेवी की शैली विवेचनात्मक है, लेकिन इसके लिए तर्क–वितर्क और व्याख्या–विश्लेषण की अपेक्षा उन्होंने स्वानुभूत भावों को ही विशेष रूप से आधार बनाया है। अतः उनकी विवेचनात्मक शैली में भावात्मक शैली का समावेश अत्यंत कुशलता के साथ हुआ है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इसे अच्छी तरह समझ कर विवेचित–विश्लेषित कर सकते हैं।
- निबंध के शीर्षक के महत्व को रेखांकित करते हुए उसे प्रतिपाद्य से जोड़ने का विशेष प्रयास इस इकाई में किया गया है। इसे समझकर आप निबंध के प्रतिपाद्य को आसानी से अपनी भाषा में व्यक्त कर सकते हैं।

4.10 शब्दावली

सापेक्ष	:	एक–दूसरे पर निर्भर, परस्पर निर्भर।
तूलिका	:	रंगने की कूची, ब्रश।
तत्संबंधी	:	उससे संबंधित।
ज्ञातव्य	:	जानने का विषय, जानने योग्य।
मंत्रपाठी शुक	:	मंत्र पढ़ने वाला तोता। तोते के संबंध में यह वास्तविकता है कि जो रटा दिया जाए उसे वह बोलता रहता है। निष्क्रिय ज्ञान की आलोचना करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि 'पढ़ा–लिखा सुवा (तोता) विलाथी (बिल्ली) खायी।' तात्पर्य यह कि तोते को रटा दिया गया है कि 'बिल्ली आए तो भाग जाए'। लेकिन बिल्ली के आने पर जब तक उसके द्वारा वह खा नहीं लिया जाता तब तक यही रटता रहता है कि बिल्ली आए तो भाग जाना'– स्वयं भागता नहीं। अतः मंत्रपाठी शुक का अर्थ हुआ कर्मशून्य निरर्थक ज्ञान।
टीका	:	अर्थ को स्पष्ट करने वाला, कुंजी या भाष्य।
सत्यं ब्रूयात	:	सत्य बोलो।
हृदयंगम	:	हृदय का अंग बनाना, दिल से महसूस कराना।

क्रोधजित	:	क्रोध को जीतने वाला या वश में करने वाला।
कृपण	:	कंजूस।
निदर्शन	:	दर्शन कराने वाला, प्रकट करने वाला।
विरत	:	उदासीन।
आहुति	:	बलिदान।
युगजीर्ण	:	युगों पुरानी, जर्जर, कमजोर।
अर्धांगिनी	:	पत्नी,
विडम्बना	:	मजाक, विरोधी–स्थिति, उपहास
क्रीतदासी	:	खरीदी गई सेविका।
मद्यप	:	शराबी।
परिचर्या	:	सेवा।
जन्मांतर	:	एक–जन्म से दूसरे जन्म तक।
इंगित	:	इशारा, संकेत
आश्चर्याभिभूत	:	आश्चर्य से भर जाना।
क्वचित कुमाता न भवति	:	कोई भी कुमाता नहीं होती। क्योंकि माँ पुत्रों की कठोर उपेक्षा के बावजूद उनकी कल्याण–कामना ही करती है।
अन्वेषक	:	खोज करने वाला, शोध करने वाला।
निस्पंद	:	स्थिर, कंपनहीन
पक्षाघात	:	लकवा
सहिष्णुता	:	सहनशीलता
निरीह	:	असहाय, बेचारा
गर्हित	:	घातक, पीड़ादायक
उपार्जन	:	कमाई
यंत्रणा	:	पीड़ा
चिरनिवेदित	:	बहुत पहले से निवेदित या समर्पित
स्वत्व	:	अधिकार
स्पृहणीय	:	चाही जाने योग्य
अंतर्मुखी	:	अंतःकरण या मन में रहने वाली।
बहिर्मुखी	:	बाहर की ओर उन्मुख या सामाजिक व्यवहार में आने वाली।
झंझा	:	आँधी, तूफान
मलय–समीर	:	चंदन की गंध से युक्त शीतल, मंद वायु
कंटकाकीर्ण	:	काँटों से भरा हुआ।

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

'शृंखला की कड़ियाँ', महादेवी वर्मा, भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग (भूमिका भाग तथा नारी विषयक अन्य निबंधों के लिए)

महादेवी का गद्य साहित्य : विश्लेषण और स्वरूप, डॉ. गोवर्द्धन सिंह, अनुभव प्रकाशन, 105/727, श्री नगर, कानपुर।

महादेवी वर्मा : काव्य और जीवन दर्शन, संपा. शची रानी गुर्टू, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

महादेवी : चिंतन व कला, संपा. इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–110 002.

4.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ग
2) ख
3) ग
4) ग
5) ख
6) ख
7) ग
8) ख
9) क
10) ख
11) ख
12) क (गलत)
13) ख (गलत)
14) ग (सही)
15) घ (सही)

अभ्यास

1) भारतीय नारी ने अपने लिए निर्धारित सिद्धांतों–आदर्शों के व्यावहारिक महत्व को समझे बिना ही उन्हें अपने पैरों की बेड़ियाँ बना डाला। उसने त्याग, सहनशीलता, पातिव्रत्य, ममता, स्नेह, बलिदान आदि गुणों का अंध–भाव से पालन करते हुए इन्हें अपना धर्म मान लिया है। इसलिए उसे पुरुष प्रधान समाज के अत्याचारों को बलि–पशु की तरह मूक भाव से झेलना पड़ता है।

2) व्यक्तिगत अनुभव से जुड़े भाव ही व्यापक सामाजिक संदर्भों से संयुक्त होकर विचार की संज्ञा प्राप्त करते हैं। अनुभूत अनुभव निजी संबंधों तक सीमित रहने

वाला भाव होता है, लेकिन वही जब समाज के बाहरी संबधों और दूसरों के अनुभवों के बीच कट–छंट और सँवर कर बुद्धि और विवेक का रूप धारण कर लेता है तो विचार की संज्ञा प्राप्त करता है। इसलिए भाव और विचार, एक–दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं, अर्थात एक–दूसरे पर आश्रित हैं।

3) भाग 4.5 (परिवेश) में दी गई सामग्री के आधार पर इसका सही उत्तर आप स्वयं लिख सकते हैं।

4) महादेवी के व्यक्तित्व की प्रथम विशेषता है नारी हृदय की कोमलता। वे किसी भी दुखद मार्मिक प्रसंग पर करुणा से अभिभूत हो जाती हैं। उनके व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है असहाय और उत्पीडित नारी के प्रति असीम सहानुभूति, जिसके उदाहरणों से यह निबंध भरा पड़ा है। उनके व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध प्रतिकार और विरोध की प्रवृत्ति। इस निबंध में उनके व्यक्तित्व की ये तीनों विशेषताएँ प्रमुखता के साथ उद्घाटित हुई हैं।

5) भाषा के तत्सम संस्कृतनिष्ठ रूप का आग्रह छोड़कर महादेवी ने तद्भव और तत्सम से संयुक्त शब्दावली को ही अपने निबंध का आधार बनाया है। बहुत से संस्कृत के तत्सम से लगने वाले शब्द तद्भव शब्दों के साथ इस कौशल से रखे गए हैं कि वे हिंदी की वास्तविक प्रकृति के अनुकूल सहज, सरल और प्रवाहमय भाषा का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा पूर्णतः व्याकरण–सम्मत है।

6) महादेवी की शैली की प्रमुख विशेषता है, उसकी विवेचनात्मकता। दूसरी विशेषता है, विवेचन के साथ भावात्मकता का कुशल संयोग। तीसरी विशेषता है, तर्क–वितर्क और खण्डन–मण्डन की बौद्धिकता के स्थान पर विषय की पुष्टि के लिए विभिन्न उदाहरणों और स्वानुभूत जीवन तत्वों का सहारा लेना।

7) इस निबंध का मुख्य प्रतिपाद्य भारतीय नारी–जीवन के अभिशापों के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करते हुए उनके वास्तविक कारणों से अवगत करा कर नारी समुदाय को जागृत करना है। इस प्रक्रिया में उन्होंने पुरुष समुदाय द्वारा अपनाए गए विभिन्न हथकण्डों के प्रति उन्हें सावधान भी किया है। नारी स्वयं अपनी योग्यता से अधिकारी बनकर ही अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकेगी, यह महादेवी जी का अंतिम निष्कर्ष है।

इकाई 5 आत्मकथा : जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 आत्मकथा : 'जूठन' का वाचन

5.3 सार

5.4 अंतर्वस्तु

5.5 चरित्र–विश्लेषण

5.6 परिवेश

5.7 संरचना–शिल्प

5.7.1 भाषा

5.7.2 शैली

5.8 शीर्षक

5.9 प्रतिपाद्य

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपका परिचय महादेवी वर्मा के एक निबंध के माध्यम से हिंदू समाज में भारतीय नारी के यातनामय जीवन के अभिशाप से कराया गया है। इस इकाई में आप हिंदू समाज के एक जागरूक दलित साहित्यकार की आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से अछूत जातियों के उत्पीड़न और उनके साथ होने वाले अमानुषिक अत्याचारों का अध्ययन करने जा रहे हैं। वस्तुतः आज नारी–मुक्ति और दलित–मुक्ति के आंदोलन दोनों ही साहित्य के केंद्र में आ चुके हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आत्मकथा नामक गद्य विधा की विशेषताएँ समझ सकेंगे;
- आत्मकथाकार के जीवन के यातनापूर्ण प्रसंगों से दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा को समझ और व्यक्त कर सकेंगे;
- आत्मकथा में व्यक्त लेखकीय चरित्र और व्यक्तित्व को समझ सकेंगे;
- आत्मकथा के संरचना–शिल्प की विशेषताओं की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश के एक महत्वपूर्ण अभिशाप – अस्पृश्यता की समस्या के साथ ही असमानता मूलक हिंदू धर्म–व्यवस्था की विसंगतियों को भी रेखांकित कर सकेंगे और

- आत्मकथा के प्रतिपाद्य को अच्छी तरह से विवेचित–विश्लेषित करने की क्षमता प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

आत्मकथा हिंदी साहित्य के संस्मरण, जीवनी, कथा–साहित्य से भिन्न एक स्वतंत्र और महत्वपूर्ण गद्य–विधा है। संस्मरण अपने जीवन से सम्बद्ध एक विशिष्ट स्थिति या प्रसंग तक सीमित होता है। महादेवी द्वारा लिखे गए 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि ग्रंथ संस्मरण साहित्य के अच्छे उदाहरण हैं। जीवनी महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर दूसरों द्वारा लिखी जाती है। कथा–कहानी में कल्पित पात्रों को आधार बनाया जाता है। लेकिन आत्मकथा स्वयं अपने बारे में लिखी जाती है, इसलिए इसमें जीवनी और कथा–साहित्य की भाँति अनुमान और कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं होता। अतः आत्मकथा स्वयं अपने बारे में ईमानदारी से लिखा गया एक प्रामाणिक दस्तावेज माना जा सकता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ काफी महत्वपूर्ण हैं।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्यकारों द्वारा आत्मकथा–लेखन की परंपरा काफी नयी है। हिंदी में जो थोड़ी–बहुत आत्मकथाएँ लिखी गई हैं, उनमें अपने व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने का ही प्रयास अधिक दिखाई देता है। हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा इसका प्रमाण है। उनकी आत्मकथा के अंतिम खंड पर टिप्पणी करते हुए दिबेन ने लिखा है कि यह आत्मकथा बच्चन की अपेक्षा उनकी कुतिया की अधिक हो जाती है। लेकिन बहुत सारे दलित साहित्यकारों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ उक्त तथ्य को गलत सिद्ध करती हैं। मराठी के दलित साहित्यकार दया पवार की आत्मकथा 'बलुतं' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस दृष्टि से हिंदी के दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' एक सार्थक प्रयास माना जा सकता है। इस श्रृंखला की नई कड़ी के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई आत्मकथा 'जूठन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सूरजपाल चौहान की दलित जीवन से सम्बद्ध आत्मकथा 'तिरस्कृत' हाल ही में प्रकाशित हुई है जिसे दलित आत्मकथा की दिशा में एक सशक्त कदम माना जा सकता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 को मुजफ्फरपुर जनपद के बरला गाँव (उत्तर प्रदेश में स्थित) में एक अभावग्रस्त चूहड़ या भंगी परिवार में हुआ था। अपनी अत्यंत विषम और यातनापूर्ण परिस्थितियों को बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक झेलते हुए इस साहसी व्यक्ति ने अपनी प्रतिभा के बल पर पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते हुए अंततः ऑर्डिनेंस फैक्टरी के सम्मानित पद को प्राप्त करने में सफलता हासिल की। महाराष्ट्र की चन्द्रपुर, उत्तर प्रदेश की देहरादून और मध्य प्रदेश की जबलपुर स्थित ऑर्डिनेंस फैक्टरियों में काम करते हुए भी ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हैं। हिंदी कविता, कहानी, आलोचना के साथ ही आत्मकथा के लेखन में भी इन्होंने सफलतापूर्वक दलित साहित्य का प्रतिनिधित्व किया है। इनके पाँच कविता संग्रह, चार कहानी संग्रह और तीन आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनकी आत्मकथा 'जूठन' का आरंभिक अंश आपके वाचन के लिए दिया जा रहा है। उसे पढ़कर आप स्वयं इनकी पीड़ा और अभावग्रस्त दलित जीवन की यातना का अनुभव कर सकेंगे। इसके साथ ही आप पूरे देश के अछूत जीवन की अमानवीय और अपमानजनक स्थिति का भी अनुभव कर सकेंगे।

5.2 आत्मकथा : 'जूठन' का वाचन

हमारा घर चंद्रभान तगा के घेर से सटा हुआ था। उसके बाद कुछ परिवार मुसलमान जुलाहों के थे। चंद्रभान तगा के घेर के ठीक सामने एक छोटी–सी जोहड़ी (जोहड़ का स्त्रीलिंग) थी, जिसने चुहड़ों के बगड़ (बस्ती) और गाँव के बीच एक फासला बना दिया था। जोहड़ी का नाम डब्बोवाली था। डब्बोवाली नाम कैसे पड़ा कहना मुश्किल है। हाँ, इतना जरूर है कि इस डब्बोवाली जोहड़ी का रूप एक बड़े गड्डे के समान था, जिसके एक ओर तगाओं के पक्के मकानों की ऊँची दीवारें थीं। जिनसे समकोण बनाती हुई झींवरों के दो–तीन परिवारों के कच्चे मकानों की दीवारें थीं। उसके बाद फिर तगाओं के मकान थे। जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियाँ, बड़ी–बूढ़ी यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी–फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी पर्दों में रहने वाली त्यागी महिलाएँ, घूँघट काढे, दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शौचालय में निवृत्ति पाती थीं। तमाम शर्म–लिहाज छोड़कर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थीं। इसी जगह गाँव भर के लड़ाई–झगड़े, गोलमेज कॉन्फ्रेंस की शक्ल में चर्चित होते थे। चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग–धडंग बच्चे, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण, जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण–व्यवस्था को आदर्श–व्यवस्था कहने वालों को दो–चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।

उसी बगड़ में हमारा परिवार रहता था। पाँच भाई, एक बहन, दो चाचा, एक ताऊ का परिवार। चाचा और ताऊ अलग रहते थे। घर में सभी कोई न कोई काम करते थे। फिर भी दो जून की रोटी ठीक ढंग से नहीं चल पाती थी। तगाओं के घरों में साफ–सफाई से लेकर, खेती–बाड़ी, मेहनत–मजदूरी सभी काम होते थे। ऊपर रात–बेरात बेगार करनी पड़ती। बेगार के बदले में कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। बेगार के लिए ना कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गाली–गलौज, प्रताड़ना अलग। नाम लेकर पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े', बराबर या उम्र में छोटा है तो 'अबे चूहड़े के' यही तरीका या संबोधन था।

अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस का छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।

हमारे मोहल्ले में एक ईसाई आते थे। नाम था सेवक राम मसीही। चूहड़ों के बच्चों को घेरकर बैठे रहते थे। पढ़ना–लिखना सिखाते थे। सरकारी स्कूलों में तो कोई घुसने नहीं देता था। सेवक राम मसीही के पास सिर्फ मुझे ही भेजा गया था। भाई तो काम करते थे। बहन को स्कूल भेजने का सवाल ही नहीं था।

मास्टर सेवक राम मसीही के खुले, बिना कमरों, बिना टाट–चटाई वाले स्कूल में अक्षर–ज्ञान शुरू किया था। एक दिन सेवक राम मसीही और मेरे पिताजी में कुछ खटपट हो गई थी। पिताजी मुझे लेकर बेसिक प्राइमरी विद्यालय गए थे जो कक्षा पाँच तक था। वहाँ मास्टर हरफूल सिंह थे। उनके सामने मेरे पिताजी ने गिड़गिड़ाकर कहा

था, 'मास्टरजी, थारी मेहरबान्नी हो जागी जो म्हारे इस जाकत (बच्चा) कूबी दो अक्षर सिखा दोगे।'

मास्टर हरफूल सिंह ने अगले दिन आने को कहा था। पिताजी अगले रोज फिर गए। कई दिन तक स्कूल के चक्कर काटते रहे। आखिर एक रोज स्कूल में दाखिला मिल गया। उन दिनों देश को आजादी मिले आठ साल हो गए थे। गाँधी जी के अछूतोद्धार की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी। सरकारी स्कूलों के द्वार अछूतों के लिए खुलने शुरू तो हो गए थे, लेकिन जनसामान्य की मानसिकता में कोई विशेष बदलाव नहीं आया था। स्कूल में दूसरों से दूर बैठना पड़ता था, वह भी जमीन पर। अपने बैठने की जगह तक आते–आते चटाई छोटी पड़ जाती थी। कभी–कभी तो एकदम पीछे दरवाजे के पास बैठना पड़ता था। जहाँ से बोर्ड पर लिखे अक्षर धुंधले दिखते थे।

त्यागियों के बच्चे 'चुहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी–कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब–सी यातनापूर्ण जिंदगी थी, जिसने मुझे अंतर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बावेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सजा देते थे। तरह–तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ, और मैं भी उन्हीं कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था। उनके अनुसार, स्कूल आना मेरी अनधिकार चेष्टा थी।

मेरी ही कक्षा में राम सिंह और सुक्खन सिंह भी थे। राम सिंह जाति में चमार था और सुक्खन सिंह झींवर। राम सिंह के पिताजी और माँ खेतों में मजदूरी करते थे। सुक्खन सिंह के पिताजी इंटर कॉलेज में चपरासी थे। हम तीनों साथ–साथ पढ़े, बड़े हुए, बचपन के खट्टे–मीटे अनुभव समेटे थे। तीनों पढ़ने में हमेशा आगे रहे। लेकिन जाति का छोटापन कदम–कदम पर छलता रहा।

बरला गाँव में कुछ मुसलमान त्यागी भी थे। त्यागियों को भी तगा कहते थे। मुसलमान तगाओं का व्यवहार भी हिंदुओं जैसा ही था। कभी कोई अच्छा साफ–सुथरा कपड़ा पहनकर यदि निकले तो फब्तियाँ सुननी पड़ती थीं। ऐसी फब्तियाँ जो बुझे तीर की तरह भीतर तक उतर जाती थीं। ऐसा हमेशा होता था। साफ–सुथरे कपड़े पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लड़के कहते, 'अबे चूहड़े का, नए कपड़े पहनकर आया है।' मैले–पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओ तो कहते, 'अबे चूहडे के, दूर हट, बदबू आ रही है।'

अजीब हालात थे। दोनों ही स्थितियों में अपमानित होना पड़ता था। चौक्षी कक्षा में थे। हेडमास्टर बिशम्बर सिंह की जगह कलीराम आ गए थे। उनके साथ एक और मास्टर आए थे। उनके आते ही हम तीनों के बहुत बुरे दिन आ गए थे। बात–बेबात पर पिटाई हो जाती थी। राम सिंह तो कभी–कभी बच भी जाता था, लेकिन सुक्खन सिंह और मेरी पिटाई तो आम बात थी। मैं वैसे भी काफी कमजोर और दुबला–पतला था उन दिनों।

सुक्खन के पेट पर पसलियों के ठीक ऊपर एक फोड़ा हो गया था, जिससे हर वक्त पीप बहती रहती थी। कक्षा में वह अपनी कमीज ऊपर की तरफ इस तरह मोड़कर रखता था, ताकि फोड़ा खुला रहे। एक तो कमीज पर पीप लगने का डर था, दूसरे मास्टर की पिटाई के समय फोड़े को बचाया जा सकता था

एक दिन मास्टर ने सुक्खन सिंह को पीटते समय उस फोड़े पर ही एक घूँसा जड़ दिया। सुक्खन की दर्दनाक चीख निकली। फोड़ा फूट गया था। उसे तड़पता देखकर मुझे भी रोना आ गया था। मास्टर हम लोगों को रोता देखकर लगातार गालियाँ बक रहा था। ऐसी गालियाँ जिन्हें यदि शब्दबद्ध कर दूँ तो हिंदी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा। क्योंकि मेरी एक कहानी 'बैल की खाल' में एक पात्र के मुँह से गाली दिलवा देने पर हिंदी के कई बड़े लेखकों ने नाक–भौं सिकोड़ी थी। संयोग से गाली देने वाला पात्र ब्राह्मण था। ब्राह्मण यानी ब्रह्म का ज्ञाता और गाली....।

अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ–बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।

एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?'

'ओमप्रकाश', मैंने डरते–डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।

'चूहड़े का है?' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।

'जी'

'ठीक है....वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा...फटाफट लग जा काम पे।'

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिए। तभी वे खुद चलकर आए और बोले, 'इसके बाद मैदान भी साफ कर दे।'

लंबा–चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था, जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी था। धूल से चेहरा, सिर अँट गया था। मुँह के भीतर धूल घुस गई थी। मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था। हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी थी। पानी पीने तक की इजाज नहीं थी। पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा। तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था। वैसे भी घर में भाइयों का मैं लाड़ला था।

दूसरे दिन स्कूल पहँचा। जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया। पूरे दिन झाड़ू देता रहा। मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा।

तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, 'अबे, ओ चूहड़े के, ... कहाँ घुस गया.....अपनी माँ...'

उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर–थर काँपने लगा था। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, 'मास्साब, वो बैट्ठा है कोणे में।'

हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली। उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, 'जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू....नहीं तो..... में मिर्ची डालके स्कूल से बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा।'

भयभीत होकर मैंने तीन दिन पुरानी वही शीशम की झाड़ू उठा ली। मेरी तरह ही उसके पत्ते सूखकर झरने लगे थे। सिर्फ बची थीं पतली–पतली टहनियाँ। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे थे। रोते–रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा। स्कूल के कमरों की खिड़की, दरवाजों से मास्टरों और लड़कों की आँखें छिपकर तमाशा देख रही थीं। मेरा रोम–रोम यातना की गहरी खाईं में लगातार गिर रहा था।

मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे। मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देखकर ठिठक गए। बाहर से ही आवाज देकर बोले, 'मुंशी जी, यो क्या कर रा है?' वे प्यार से मुझे मुंशी जी ही कहा करते थे। उन्हें देखकर मैं फफक पड़ा। वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए। मुझे रोता देखकर बोले, 'मुंशी जी....रोते क्यों हो? ठीक से बोल, क्या हुआ है?'

मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं। हिचक–हिचककर पूरी बात पिताजी को बता दी कि तीन दिन से रोज झाड़ू लगवा रहे हैं। कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते।

पिताजी ने मेरे हाथ से झाड़ू छीनकर दूर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की गर्मी उतर आई थी। हमेशा दूसरों के सामने तीर–कमान बने रहने वाले पिताजी की लंबी–लंबी घनी मूंछे गुस्से में फड़फड़ाने लगी थीं। चीखने लगे, 'कौण–सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है....'

पिताजी की आवाज पूरे स्कूल में गूंज गई थी, जिसे सुनकर हेडमास्टर के साथ सभी मास्टर बाहर आ गए थे। कलीराम हेडमास्टर ने गाली देकर मेरे पिताजी को धमकाया। लेकिन पिताजी पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ। उस रोज जिस साहस और हौसले से पिताजी ने हेडमास्टर का सामना किया, मैं उसे कभी भूल नहीं पाया। कई तरह की कमजोरियाँ थीं पिताजी में लेकिन मेरे भविष्य को जो मोड़ उस रोज उन्होंने दिया, उसका प्रभाव मेरी 'शख्सियत पर पड़ा।

हेडमास्टर ने तेज आवाज में कहा था, 'ले जा इसे यहाँ से....चूहड़ा होके पढ़ाने चला है.....जा चला जा....नहीं तो हाड़–गोड़ तुड़वा दूंगा।'

पिताजी ने मेरा हाथ पकड़ा और लेकर घर की तरफ चल दिए। जाते–जाते हेडमास्टर को सुनाकर बोले, 'मास्टर हो.....इसलिए जा रहा हूँ.....पर इतना याद रखिए मास्टर..... यो चूहड़े का यहीं पढ़ेगा.....इसी मदरसे में। और यो ही नहीं, इसके बाद और भी आवेंगे पढ़ने कू।'

बोध प्रश्न

'आत्मकथा' का मूल पाठ आपने पढ़ लिया होगा। पठित अंशों के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर को कोष्ठकों में संख्या का निर्देश करके बताएँ और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से उसे मिलाकर जाँच लें।

1) सेवक राम मसीही क्या करते थे?

   क) ईसाई धर्म का प्रचार करते थे।

   ख) दीन–दुखिया लोगों की सेवा करते थे।

   ग) चूहड़ों के बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाते थे।

   घ) खेती–बाड़ी करते थे। ( )

2) हेडमास्टर कलीराम ने स्कूल में बालक ओमप्रकाश को क्या काम सौंपा था?

क) श्रमपूर्वक पाठ तैयार करने का।

ख) स्कूल में अंदर और बाहर झाड़ू लगाने का।

ग) अपनी सेवा का।

घ) स्कूल के बच्चों की निगरानी का। ( )

3) लेखक की उस कहानी का नाम बताएँ, जिसमें एक पात्र के मुँह से गाली दिलवाने के कारण हिंदी के कई बड़े लेखकों ने नाक–भौं सिकोड़ी थी?

क) 'सलाम'

ख) 'बैल की खाल'

ग) 'शव यात्रा'

घ) 'जंगल की रानी' ( )

4) पठित अंश के आधार पर निम्नलिखित गद्यांश में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

बरला गाँव में कुछ.....त्यागी भी थे। त्यागियों को भी.....कहते थे। मुसलमान..... का व्यवहार भी.....जैसा था।

पिताजी को विश्वास था, गाँव के त्यागी मास्टर कलीराम की इस हरकत पर उसे शर्मिंदा करेंगे। लेकिन हुआ ठीक उल्टा। जिसका दरवाजा खटखटाया यही उत्तर मिला, 'क्या करोगे स्कूल भेजके' या 'कौवा बी कबी हंस बण सके', 'तुम अनपढ़ गँवार लोग क्या जाणो, विद्या ऐसे हासिल ना होती।', 'अरे! चूहड़े के जाकत कू झाड़ू लगाने कू कह दिया तो कोण–सा जुल्म हो गया', 'या फिर झाड़ू ही तो लगवाई है, द्रोणाचार्य की तरियों गुरु–दक्षिणा में अँगूठा तो नहीं माँगा' आदि–आदि।

पिताजी थक–हार निराश लौट आए, बिना खाए–पिए रात भर बैठे रहे। पता नहीं किस गहन पीड़ा को भोग रहे थे मेरे पिताजी। सुबह होते ही उन्होंने मुझे साथ लिया और प्रधान सगवा सिंह त्यागी की बैठक में पहुंच गए।

पिताजी को देखते ही प्रधान बोले. 'अबे, छोटन.....क्या बात है? तड़के ही तड़के आ लिया'

'चौधरी साहब, तम तो कहो ते सरकार ने चूहड़े–चमारों के जाकतों (बच्चों) के लिए मदरसों के दरवाजे खोल दिए हैं। और यहाँ तो हेडमास्टर मेरे इस जाकत कू पढ़ाने के बजाए क्लास से बाहर लाके दिन भर झाड़ू लगवावे है। जिब यो दिन भर मदरसे में झाड़ू लगावेगा तो इब तम ही बताओ पढ़ेगा कब?' पिताजी प्रधान के सामने गिड़गिड़ा रहे थे। उनकी आँखों में आँसू थे। मैं पास खड़ा पिताजी को देख रहा था।

प्रधान ने मुझे अपने पास बुलाकर पूछा, 'कोण–सी किलास में पढ़े है?'

'जी चौथी में।'

'म्हारे महेन्द्र की किलास में ही हो?'

'जी।'

प्रधान जी ने पिताजी से कहा, 'फिकर ना कर कल मदरसे में इसे भेज देणा।'

अगले रोज डरते–डरते मैं स्कूल पहुँचा, डरा–डरा कक्षा में बैठा रहा, हर क्षण लगता था अब आया हेडमास्टर....अब आया। जरा–सी आहट पर दिल घबराने लगता था। उसके बाद स्थिति सामान्य हो गई थी। लेकिन कलीराम हेडमास्टर को देखते ही मेरी रूह काँप जाती थी। लगता, जैसे सामने से मास्टर नहीं कोई जंगली सूअर थूथनी उठाए चिंचियाता चला आ रहा है।

गेहूँ की फसल कटने के वक्त मोहल्ले के सभी लोग तगाओं के खेतों में गेहूँ काटने जाते थे। तपती दोपहर में गेहूँ काटना बहुत कष्टप्रद और कठिन होता है। सिर पर बरसती धूप। नीचे तपती जमीन, नंगे पाँव में कटे पौधों की जड़ें शूल की तरह तलवों में चुभती थीं। उनसे भी ज्यादा चुभन होती थी सरसों और चने की जड़ों से। चना काटने में एक कठिनाई और थी। चने के पत्तों पर खटाई होती है जो काटते समय पूरे शरीर पर चिपक जाती है। नहाने पर भी कम नहीं होती। कटाई करने वाले अधिकतर चूहड़े या चमार ही होते थे, जिनके तन पर कपड़े सिर्फ नाम भर के होते थे। पाँव में जूता होने का तो सवाल ही नहीं होता था। नंगे पाँव फसल कटने तक बुरी तरह घायल हो जाते थे।

फसल–कटाई को लेकर अक्सर खेतों में हुज्जत चलती रहती थी। मजदूरी देने में ज्यादातर तगा कंजूसी बरतते थे। काटने वालों की मजबूरी थी। जो भी मिलता, थोड़ी–बहुत ना–नुकर के बाद लेकर घर लौट आते। घर आकर कुढ़ते रहते या तगाओं को कोसते रहते। लेकिन भूख के सामने विरोध दम तोड़ देता था। हर साल फसल–कटाई को लेकर मोहल्ले में बैठकें होतीं। सोलह पूली पर एक पूली मेहनताना लेने की कसमें खाई जातीं। लेकिन कटाई शुरू होते ही बैठकों के तमाम फैसले, कसमें हवा हो जाते थे। इक्कीस पूली पर एक पूली मजूरी मिलती थी। एक पूली में एक किलो से भी कम गेहूँ निकलते थे। भारी से भारी पूली में एक किलो गेहूँ नहीं निकलता था। यानी दिन भर की मजदूरी एक किलो गेहूँ से भी कम, कटाई के बाद बैलगाड़ी या झोटा बुग्गी (भैंसा बुग्गी) में लदाई, उतराई अलग। उसका कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। देर–सबेर खलिहानों में बैल हाँकने की बेगार सभी को करनी पड़ती थी। उन दिनों गेहूँ सफाई के 'क्रेशर' नहीं हुआ करते थे। बैलों को गोलाई में घुमा घुमाकर गेहूँ के पौधों को भूसे की शक्ल में बदला जाता था। फिर भूसे से गेहूँ छाज से हवा में उड़ाकर अलग किए जाते थे। यह एक काफी लंबा और थका देने वाला काम था, जिसे अधिकतर चमार या चूहड़े ही करते थे।

मेरी माँ इन सब मेहनत–मजदूरियों के साथ–साथ आठ–दस तगाओं (हिंदू–मुसलमान) के घर तथा घेर (मर्दों का बैठकखाना तथा मवेशियों को बाँधने की जगह) में साफ–सफाई का काम करती थी। इस काम में मेरी बहन, बड़ी भाभी तथा जसबीर और जनेसर (दो भाई) माँ का हाथ बँटाते थे। बड़ा भाई सुखबीर तगाओं के यहाँ वार्षिक–नौकर की तरह काम करता था।

प्रत्येक तगा के घेर में दस से पंद्रह मवेशी (गाय, भैंस और बैल) सामान्य बात थी। उनका गोबर उठाकर गाँव से बाहर कुरड़ियों पर या उपले बनाने की जगह डालना पड़ता था। प्रत्येक घेर से रोज पाँच–छह टोकरे गोबर निकलता था। सर्दी के महीनों में यह काम बहुत कष्टदायक होता था। गाय, भैंस और बैलों को सर्दी से बचाने के लिए बड़े–बड़े दालानों में बाँधा जाता था, जिनमें गन्ने की सूखी पाती या फूस बिछा होता था। रात भर जानवरों का गोबर और मूत्र पूरे दालान में फैल जाता था। दस–पंद्रह दिनों में एक बार पाती बदली जाती थी या उसके ऊपर सूखी पाती बिछा

दी जाती थी। इतने दिनों में दालानों में भरी दुर्गंध से गोबर–ढूँढ़के निकालना बहुत तकलीफदेह होता था, दुर्गंध से सिर भिन्ना जाता था।

इन सब कामों के बदले मिलता था दो जानवर पीछे फसल के समय पाँच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज। दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर (लगभग 12–13)किलो अनाज दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची–खुची रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी। कभी–कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी।

शादी ब्याह के मौकों पर, जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बड़े–बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरो में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे–खुचे टुकड़े, एक आधा मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी–बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी कहा जाता था कि भुक्खड़ (भूखे) लोग आ गए हैं बारात में जिन्हें कभी खाने को कुछ नहीं मिला। सारा चट कर गए। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े–बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे।

पत्तलों से जो पूरियों के टुकड़े एकत्र होते थे उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था। चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था। अक्सर मुझे पहरे में बैठाया जाता था। क्योंकि सूखने वाली पूरियों पर कव्वे, मुर्गियाँ, कुत्ते अक्सर टूट पड़ते थे। जरा–सी आँख बची कि पूरियाँ साफ, इसलिए डंडा लेकर चारपाई के पास बैठना पड़ता था।

ये सूखी पूरियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थीं। इन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था। उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था। कभी–कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बन जाता था, जिसे सभी बहुत चाव से खाते थे।

आज जब मैं इन सब बातों के बारे में सोचता हूँ तो मन के भीतर काँटे उगने लगते हैं, कैसा जीवन था?

दिन–भर मर–खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं। कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं।

जब मैं छोटा था, माँ के साथ जाता था। माँ–पिताजी का हाथ बँटाने। तगाओं (त्यागियों) के खाने को देखकर अक्सर सोचा करता था कि हमें ऐसा खाना क्यों नहीं मिलता? आज जब सोचता हूँ तो जी मितलाने लगता है।

अभी पिछले वर्ष मेरे निवास पर सुखदेव त्यागी का पोता सुरेंद्र आया था, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में। गाँव से मेरा पता लेकर आया था। रात में रुका।

मेरी पत्नी ने उसे यथासंभव अच्छा खाना खिलाया। खाना खाते–खाते वह बोला, 'भाभी जी, आपके हाथ का खाना तो बहुत जायकेदार है। हमारे घर में तो कोई भी ऐसा खाना नहीं बना सकता है।'

उसकी बात सुनकर मेरी पत्नी तो खुश हुई, 'लेकिन मैं काफी देर तक विचलित रहा। बचपन की घटनाएँ स्मृति का दरवाजा खटखटाने लगीं।

सुरेंद्र तब पैदा भी नहीं हुआ था। उसकी बड़ी बुआ यानी सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी थी। उनके यहाँ मेरी माँ सफाई करती थी। शादी से दस–बारह दिन पहले से माँ पिताजी ने सुखदेव सिंह त्यागी के घर–आँगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे। बेटी की शादी का मतलब गाँव–भर की इज्जत का सवाल था। कहीं कोई कमी न रह जाए। गाँव भर से चारपाइयाँ ढो–ढोकर जनवासे में इकट्ठी की थीं पिताजी ने।

बारात खाना खा रही थी। माँ टोकरा लिए दरवाजे से बाहर बैठी थी। मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही है, वह हमें भी खाने को मिलेगी।

जब सब लोग खाना खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा, 'चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए....म्हारे जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते।'

सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है.....ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।'

सुखदेव सिंह त्यागी के वे शब्द मेरे सीने में चाकू की तरह उतर गए थे, जो आज भी अपनी जलन से मुझे झुलसा रहे हैं।

उस रोज मेरी माँ की आँखों में दुर्गा उतर आई थी। माँ का वैसा रूप मैंने पहली बार देखा था। माँ ने टोकरा वहीं बिखेर दिया था। सुखदेव सिंह से कहा था, 'इसे ठाके अपने घर में धर ले। कल तड़के बारातियों को नाश्ते में खिला देणा.....।'

हम दोनों भाई–बहनों का हाथ पकड़ के तीर की तरह उठकर चल दी थी। सुखदेव सिंह माँ पर हाथ उठाने के लिए झपटा था, लेकिन मेरी माँ ने शेरनी की तरह सामना किया था। बिना डरे।

उसके बाद माँ कभी उनके दरवाजे पर नहीं गई और जूठन का सिलसिला भी उस घटना के साथ बंद हो गया था।

वही सुखदेव सिंह मेरे निवास पर एक बार आया था। मेरी पत्नी ने गाँव–देहात के बुजुर्ग के नाते उनका आदर–सत्कार किया था। उसने मेरे घर खाना भी खाया था। लेकिन जब वह चला गया तो मेरे भतीजे संजय खैरवाल, जो बी.एस.सी. का छात्र है, ने बताया कि चाचा जी, उन्होंने सिर्फ आपके घर खाया है, हमारे घर तो पानी भी नहीं पिया था।

बोध प्रश्न

पठित मूल पाठ के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

5) 'द्रोणाचार्य की तरियों (तरह) गुरु–दक्षिणा में अंगूठा तो नहीं माँगा।' यह कथन किसका है?

   क) सेवाराम मसीही का।

   ख) कलीराम हेडमास्टर का।

   ग) शिकायत सुनने के बाद गाँव वालों का।

   घ) ग्राम–प्रधान सगवा सिंह का। ( )

6) हेडमास्टर कलीराम की गाँव वालों से शिकायत करने पर लेखक के पिता को क्या उत्तर मिले? निम्नलिखित उत्तरों में से एक गलत है, उसे निर्दिष्ट करें –

   क) सुराज मिल जाने पर उसे ऐसा करने की हिम्मत कैसे हुई।

   ख) कौवा बी कबी हंस बण सके।

   ग) तुम अनपढ़ गंवार लोग क्या जाणो, ऐसे विद्या हासिल ना होती।

   घ) चूहड़े के जाकत को झाड़ू लगाने को कह दिया तो कौण–सा जुलम हो गया? ( )

7) 'दिनभर मर–खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं। कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं।' इस कथन द्वारा लेखक ने अपने किस भाव को व्यक्त किया है।

   क) संतोष–भाव को।

   ख) सहनशीलता को।

   ग) घृणा और आक्रोश को।

   घ) उदारता को। ( )

8) पठित अंश के आधार पर निम्नलिखित गद्यांश के रिक्त स्थानों की पूर्ति करें – पिताजी ने मेरे हाथ से.....दूर फेंक दी। उनकी आँखों में आग की गर्मी.....थी। हमेशा दूसरों के सामने.....बने रहने वाले पिताजी की लंबी–लंबी.....गुस्से में.....थीं।

5.3 सार

आत्मकथा के एक छोटे और आरंभिक अंश का आपने अध्ययन किया है। पिछली इकाइयों में जिस तरह आपने कहानी और निबंध के सार का अध्ययन किया है, वैसा यहाँ नहीं मिलेगा। एक होनहार व्यक्ति के पाँचवीं कक्षा तक की परीक्षा पास करने तक की ही चर्चा इस छोटे से अंश में हो सकी है। लेकिन इसके माध्यम से भी कई महत्वपर्ण तथ्य रेखांकित हुए हैं। सबसे पहले लेखक ने बरला गाँव के वातावरण और उसकी चौहद्दी का चित्र प्रस्तुत किया है, जो संपूर्ण भारतीय गाँवों की स्थिति को स्पष्ट करता है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित इस ग्राम–व्यवस्था में भंगियों, चमारों, धोबियों, कुम्हारों तथा अनेक अछूत जाति के लोगों को उच्च समझी जाने वाली जातियों से अलग–थलग और थोड़ी दूरी पर गंदी बस्तियों में अत्यंत कठोर परिस्थितियों में जीवन बिताने के लिए विवश किया जाता है। इसका एक जीता जागता और एक गलाजत भरा चित्र उपस्थित करने के बाद लेखक ने अपनी

प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण–व्यवस्था को आदर्श–व्यवस्था कहने वालों को दो–चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।' (पृ.11) यह टिप्पणी लेखक की जीवन–दृष्टि को संकेतित करती है, जो पूरी आत्मकथा में स्थान–स्थान पर अत्यंत तीव्रता और आक्रोश के साथ व्यक्त हुई है।

गाँव का पूरा खाका प्रस्तुत करने के बाद लेखक ने अपनी जाति (चूहड़ा या भंगी) के प्रति ऊँची जाति, विशेष कर त्यागियों के दुर्व्यवहार की भी चर्चा की है। बेगार, गाली–गलौज और घोर प्रताड़ना के साथ 'ओ चूहड़े', 'अबे चूहड़े' जैसे संबोधन का जिक्र करते हुए लेखक ने बताया है कि उनकी जिंदगी कुत्ते–बिल्ली जैसे जानवरों से भी बदतर बना दी गई थी। चूहड़े का स्पर्श भी पाप समझा जाता था। उस समय देश को आजादी मिले आठ साल हो गए थे। सर्वत्र गांधी जी के अछूतोद्धार की प्रति–ध्वनि सुनाई पड़ती थी। कानूनी तौर पर सरकारी स्कूलों के द्वार अछूतों के लिए खोल दिए गए थे। लेकिन जनसामान्य की मानसिकता अभी पहले जैसी ही बनी हुई थी। इसलिए स्कूल में प्रवेश पाने की कठिनाई के कारण लेखक को पढ़ने–लिखने के लिए उसके पिता ने सेवाराम मसीही की शरण में भेजा। वहाँ से भी किसी खटपट के कारण उसे अलग होना पड़ा। बड़ी मुश्किल से सरकारी स्कूल में उसे दाखिला मिल सका। वहाँ अध्यापकों से लेकर ऊँची जाति के विद्यार्थियों द्वारा उसे जिस प्रकार से प्रताड़ित किया जाता था, उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। हेडमास्टर कलीराम लेखक को पढ़ाई से अलग कर स्कूल के अंदर और बाहर की सफाई का भार सौंप देते थे। इससे इनकार करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है। अपने पिता के प्रोत्साहनपूर्ण साहस के सहारे वह सारी यातनाओं को झेलकर भी पाँचवीं की परीक्षा पास कर लेता है।

अपनी शिक्षा–दीक्षा की अमानवीय परिस्थितियों के साथ ही लेखक ने फसलों की कटाई–बुवाई बड़ी जातियों के घरों और पशुशालाओं की सफाई के बदले मिलने वाली अधिक गाली और कम मजदूरी को बड़े मार्मिक ढंग से दर्शाया है। आत्मकथा के निर्धारित अंश के अंत में लेखक ने जूठन की अमानवीय प्रथा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। शादी–ब्याह के मौकों पर जब मेहमान और बाराती खाना खा रहे होते हैं तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े–बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते हैं। खाने की समाप्ति के बाद जूठी पत्तलें उनके टोकरों में डाल दी जाती हैं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी करके कुछ खा लेते हैं और शेष भविष्य के लिए सुखाकर सुरक्षित रख लेते हैं। सुखदेव सिंह की लड़की की शादी पर जूठन की आस में ही लेखक के माँ–बाप और भाई–बहनों ने एक पखवाड़े तक उनके यहाँ रात–दिन बेगारी की थी। इसका जिक्र करते हुए लेखक ने लिखा है, 'बारात खाना खा रही थी। माँ टोकरा लिए दरवाजे के पास बैठी थी। मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही थी, वह हमें भी खाने को मिलेगी।' भोजन की समाप्ति के बाद जब चौधरी सुखदेव सिंह दिखाई दिए तो। उसकी माँ ने कहा – चौधरी जी एक पत्तल में कुछ डालकर हमारे बच्चों को दे दो। वे भी तो इसी दिन का इंतजार कर रहे थे। इसपर चौधरी सुखदेव सिंह ने टोकरे की ओर इशारा करके कहा कि 'टोकरा भर जूठन ले जा रही है...ऊपर से जाकतों (बच्चों) के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा.. ...और चलती बन।' माँ ने इस अपमान का प्रतिकार करते हुए टोकरा वहीं बिखेर दिया और सुखदेव सिंह से कहा कि उसे उठाकर अपने घर में रख लो और सुबह बारातियों

को नाश्ते में खिला देना। यह सुनकर सुखदेव सिंह माँ पर झपटा लेकिन शेरनी की तरह माँ ने उसका सामना किया। इस घटना के बाद लेखक के परिवार से जूठन का सिलसिला समाप्त हो गया। वस्तुतः इस घटना के कारण ही लेखक ने आत्मकथा को 'जूठन' शीर्षक दिया है, जो इसकी अंतर्वस्तु के साथ ही उसके प्रतिपाद्य को भी रेखांकित करता है। उच्च और सम्मानित पद पर नौकरी प्राप्त करने के पच्चीस–तीस वर्ष बाद सुखदेव सिंह अपने पोते को लेखक के घर भेजता है, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में और स्वयं उसके घर जाकर सम्मानपूर्वक भोजन करता है। इस प्रकार 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा की समूची अंतर्वस्तु का संकेत निर्धारित अंश से मिल जाता है। लेकिन इस आत्मकथा के संपूर्ण महत्व को आप पूरी रचना को पढ़ने के बाद ही समझ सकेंगे। अतः हमारा आग्रह है कि आप एक बार 'जूठन' को अवश्य पढ़ें।

'जूठन' में आत्मकथाकार के जीवन की बहुत सारी घटनाएँ, उसके विद्यार्थी जीवन से लेकर नौकरी पेशे में रहते हुए इतने सारे अनुभव हैं, जिन्हें जाने–बूझे बिना दलित समस्या की गंभीरता और सामाजिक महत्व को नहीं समझा जा सकता। ऐसी कुछ घटनाओं का उल्लेख आपके लिए उपयोगी हो सकता है। उदाहरण के लिए, पाँचवीं के बाद के स्कूल–जीवन की एक घटना को लिया जा सकता है। कक्षा में अध्यापक मनोयोगपूर्वक द्रोणाचार्य का पाठ पढ़ा रहे थे। उनकी गरीबी का मार्मिक चित्रण करते हुए उन्होंने द्रोणाचार्य द्वारा अपने पुत्र अश्वत्थामा को भूख से तड़पते हुए देख पानी में आटा घोल कर पिलाने की घटना का जिक्र कर सभी विद्यार्थियों को करुणाभिभूत कर दिया। इसपर किशोर लेखक ने प्रश्न किया कि 'अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का माँड। फिर किसी भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया?' इस प्रश्न से क्रुद्ध अध्यापक ने अपने उत्तर में उसे मुर्गा बनाकर शीशम की छड़ी से प्रहार करते हुए कहा कि 'चूहड़े के, तू द्रोणाचार्य से बराबरी करे है.....ले तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूँगा.....' उसने मेरी पीठ पर सटाक–सटाक छड़ी से महाकाव्य रंग दिया था। यह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है। भूख और असहाय जीवन के क्षणों में सामंती सोच का यह महाकाव्य मेरी पीठ पर ही नहीं, मेरे मस्तिष्क के रेशे–रेशे पर अंकित है।' (पृ.34–35)

अपने विद्यार्थी जीवन में ही लेखक का अम्बेडकर साहित्य से परिचय हुआ। इसके बाद गांधी जी के अछूतोद्धार और उनकी उदारता के प्रति भी उसमें संदेह जागृत हुआ। इसकी चर्चा करते हुए उसने लिखा है, गांधी जी ने "हरिजन" नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीय धारा से नहीं जोड़ा, बल्कि हिंदुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। उनके हितों की रक्षा की।' (पृ.89) महाराष्ट्र के अंबरनाथ और चन्द्रपुर में अपने ट्रेनिंग और सेवाकाल में ओमप्रकाश वाल्मीकि के मराठी दलित साहित्य और उसके महत्वपूर्ण रचनाकारों से परिचय ने उन्हें नई चेतना प्रदान की इसके बीज उनके देहरादून के कॉलेज जीवन में ही अंकुरित हो चुके थे। इसी का परिणाम 'जूठन' शीर्षक उनकी आत्मकथा है। अपनी कहानियों, कविताओं, आलोचनात्मक टिप्पणियों के माध्यम से वे दलित साहित्य को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए निरंतर कार्यरत हैं। इस संदर्भ में ही उनकी आत्मकथा की अंतर्वस्तु और उसके प्रतिपाद्य का सही ढंग से मूल्यांकन किया जा सकता है।

5.4 अंतर्वस्तु

आपने इस आत्मकथा के मूल पाठ और सार को पढ़कर यह समझ लिया होगा कि इसकी अंतर्वस्तु पर कहानी और निबंध की तरह विचार तथा भाव–पक्ष को अलग–अलग करके विवेचित–विश्लेषित नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत अनुभूतियों की गहनता और जीवंतता ने उनके विचारों को पूरी तरह अपने अनुशासन में बांध कर रखा है। इस दृष्टि से देखा जाए तो आत्मकथाकार के अपने जीवन की पीड़ा, यातना और पग–पग पर उपस्थित होने वाले विरोध भाव आदि दलित जीवन की यंत्रणा–मुक्ति के उद्देश्य से परिचालित हैं। अतः यह आत्मकथा स्वयं की व्यथा–कथा बन जाती है। इस आत्मकथा में आरंभ से अंत तक लेखक ने स्वयं के माध्यम से दलित जीवन की असहायता, विवशता और हर तरह के अत्याचारों के साथ सवर्णों या ऊँची जातियों द्वारा स्वीकृत वर्ण–व्यवस्था, ब्राह्मण वर्चस्व, सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था, सामंती मानसिकता आदि के प्रति विद्रोह भावना के रूप में अपनी तीव्र मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। इसलिए आत्मकथा की अंतर्वस्तु असमानतामूलक जाति पर आधारित भारतीय समाज–रचना की एक गंभीर समस्या अर्थात् दलित जीवन की त्रासदी मानी जा सकती है।

वैचारिक दृष्टि से देखें तो इस आत्मकथा में लेखक का सामाजिक चिंतन भी स्थान–स्थान पर उजागर हुआ है। लेकिन चिंतनगत निष्कर्ष के आधार उसके जीवनानुभव ही बने हैं। चिंतन के लिए चिंतन अर्थात् मुक्त चिंतन में उसका विश्वास नहीं है। उसने खुलकर अछूत और दलित जीवन की त्रुटियों को भी उजागर किया है। भूत–प्रेत, देवी–देवता, झाड़–फूंक, भगत–ओझा, टोना–टोटका में उसका विश्वास, कर्म–फल और भाग्य के प्रति उसकी आस्था आदि उसके जीवन के अभिशाप को और तीखा बनाती हैं। इसके लिए लेखक ने अशिक्षा और रूढ़िवादिता को कारण अवश्य बताया है, लेकिन शिक्षित और सम्पन्न होने के बावजूद अछूतों द्वारा अपने जातिसूचक 'सरनेम' को छिपाने के पीछे के मानसिक द्वंद्व को दर्शाता है, तथा अलगाव के डर, जातिवादी मानसिकता के कारण अदलितों द्वारा दलितों के किए जाने वाले तिरस्कार और हेय दृष्टि से बचने का यह एक प्रयास भी है। जाति प्रथा से जूझने के लिए समानतामूलक समाज की आवश्यकता को लेखक ने शिद्दत से महसूस किया है। सामाजिक बदलाव से ही इस समस्या का समाधान होने की संभावना और यही दलित जीवन के उद्धार का एकमेव मार्ग हो सकता है। लेखक को दलित मुक्ति का जो मार्ग अभिप्रेत है वही दलित जीवन में व्याप्त भयानक शोषण और उत्पीड़न को दूर करने का एकमात्र सही कदम है। ऊँची जातियों के स्तर तक पहुँचने की होड़ का भी उसने खुलकर चित्रण किया है। इससे लगता है कि मात्र शिक्षा और आर्थिक स्तर में सुधार के माध्यम से ही दलित जीवन का उद्धार वह संभव नहीं मानता। लेखक ने समस्या का जो भयावह रूप उजागर किया है वह कई स्तरों पर, कई कोणों से इससे मुक्ति पाने के लिए प्रेरित करता है।

5.5 चरित्र–विश्लेषण

आत्मकथा रचनाकार के चरित्र का एक प्रामाणिक दस्तावेज होती है। लेकिन इसके लिए एक आवश्यक शर्त है कि रचनाकार अपने बारे में लिखते हुए पूरी ईमानदारी का परिचय दे। इसदृष्टि से जहाँ तक ओमप्रकाश वाल्मीकि का प्रश्न है इन्होंने प्रायः पूरी ईमानदारी का परिचय दिया है। बचपन, किशोरावस्था के विद्यार्थी जीवन से लेकर

नौकरीपेशा में कार्यरत होने तक के अपने सारे अनुभवों और जीवन–यापन संबंधी घटनाओं, प्रसंगों, विषम स्थितियों अपनी आशाओं–आकांक्षाओं पर कहीं भी इन्होंने पर्दा नहीं डाला है। इनकी कमजोरियाँ, क्षमताएँ–अक्षमताएँ इस आत्मकथा में ईमानदारी से व्यक्त हुई हैं।

अनेक विषम और विरोधी परिस्थितियों के बावजूद लेखक ने कभी हिम्मत नहीं छोड़ी। जीवन की दौड़ में एक सफल व्यक्ति बनने के बाद भी उसने अपनी इनसानियत को कायम रखा और इनसानी सरोकारों के प्रति समर्पित रहा है। एक साहित्यकार ही नहीं वरन् एक सांस्कृतिक–सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी सक्रियता का परिचय दिया है। जातीय विषमता से ग्रस्त भारतीय समाज में जो एक परोक्ष या प्रत्यक्ष संघर्ष की स्थिति है, उसे वर्ग–संघर्ष कहें या जातीय संघर्ष, उसमें इन्होंने खुलकर हिस्सा लिया है। इस उत्कट संघर्ष की भावना का बीज उनके गाँव के आरंभिक जीवन में पड़ गया था। अपने विषमताग्रस्त ग्रामीण माहौल का चित्र उपस्थित करने के बाद उन्होंने निष्कर्ष दिया है, 'अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे (चूहड़े) जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।' इस उद्धरण में चित्रित स्थिति स्वाधीनता के बाद 1955–56 ई. की है, लेकिन प्रतिक्रिया 1995–96 की है। क्या चालीस वर्षों में इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ? यह एक प्रश्न है, जिसपर विचार करना लेखक की ईमानदारी और उसके चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है। जब एक लंबे समय के बाद चौधरी सुखदेव सिंह का पोता सुरेंद्र लेखक के घर जाकर रात को ठहरता है और उसकी पत्नी के हाथों बने हुए भोजन की तारीफ करते हुए खाना खाता है तथा स्वयं चौधरी का लेखक के घर जाकर भोजन करना इस बात का संकेत करता है कि अस्पृश्यता का बंधन 35–40 वर्षों में काफी शिथिल पड़ा है। इस परिवर्तन को लेखक ने अपनी रचना में कहीं भी महत्व के साथ रेखांकित नहीं किया है। अतः कहीं–कहीं उसका क्रोध या आक्रोश ईर्ष्या का रूप भी लेते हुए दिखाई देता है।

उपर्युक्त तथ्य के बावजूद आज भी भारतीय समाज में अछूत और दलित की अपमानजनक स्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता। इस पिछड़े हुए समुदाय के प्रति लेखक की असीम सहानुभूति उसके उदार चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। उससे प्रेरणा ग्रहण कर हम इस दलित समस्या के प्रति सक्रिय नहीं तो कम–से–कम अपना बौद्धिक और भावनात्मक समर्थन देने के लिए विवश हो जाते हैं। इस आत्मकथा में इसे लेखकीय चरित्र की सार्थकता मानी जा सकती है।

5.6 परिवेश

पिछली इकाई में महादेवी जी के निबंध 'जीने की कला' का परिवेशगत अध्ययन करते हुए हमने इस तथ्य को विस्तार से देखा है कि रचना के मूल्यांकन के लिए परिवेश की जानकारी काफी महत्वपूर्ण होती है। यदि हम 1930–35 के भारतीय सामाजिक परिवेश को नजरअंदाज कर दें तो आज के संदर्भ में महादेवी जी की नारी समस्या विषयक मान्यताएँ काफी अतिरंजित लग सकती हैं। इस तथ्य को हम कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि रचनात्मक विधाओं के साथ आलोचना पर भी समान रूप से लागू होते हुए देखते हैं। आत्मकथा जैसी पूर्णतः आत्मनिष्ठ विधा के लिए तो तद्युगीन

सामाजिक परिवेश की जानकारी और अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। भारतीय समाज–व्यवस्था वर्ण–व्यवस्था से विकृत रूप धारण कर धीरे–धीरे जाति–व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। आरंभ में यह पेशेवर जाति–व्यवस्था ग्रामाश्रित समाज–व्यवस्था की ठोस आधारशिला बनी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य पेशेवर जातियाँ – लोहार, बढ़ई, कहार, नाई, बरई (तंबोली) आदि अपेक्षाकृत कम नीची समझी जाने वाली जातियाँ गाँव में एक साथ रहती थीं। ये सभी जातियाँ एक–दूसरे पर निर्भर थीं, किसी एक के बिना दूसरे का काम चलना संभव नहीं था। इसके साथ ही डोम, धरकार, भंगी, चमार, चांडाल आदि अनेक अछूत का समुदाय भी था, जो ग्रामाश्रित व्यवस्था का अविभाज्य अंग था। लेकिन इन्हें मूल गाँव से कुछ दूरी पर अलग बस्ती में रहने के लिए मजबूर किया गया था। जाति–व्यवस्था के विधि–निषेधों का कड़ाई से पालन करना दलितों के लिए अनिवार्य बना दिया गया था। इस व्यवस्था द्वारा स्थापित मान्यताओं के विरोध या अतिक्रमण पर दलितों को मृत्युदण्ड तक की सज़ा प्रायः दी जाती रही है। सवर्ण एवं उच्च जातियों के लोगों को यह स्वीकार नहीं कि अछूत और दलित जातियों के लोग उनके बीच निवास करें। उनके निवास–स्थल को प्रायः बस्ती के नाम से जाना जाता है। गांधी जी ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया था, लेकिन दलितों द्वारा 'हरिजन' शब्द का विरोध किया गया क्योंकि यह शब्द दलितों को हरि के जन कहकर अधिक घृणित स्थिति में पहुंचा देता है। अवैध संतान या जन के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया गया था। अतः इसका दलितों द्वारा विरोध होना स्वाभाविक ही था।

ग्रामीण सवर्ण समुदाय द्वारा बस्ती की अछूत जातियों पर निर्मम अत्याचार एक कठोर सच्चाई बन गई थी, जो आज भी किसी–न–किसी रूप में जारी है। सवर्णों द्वारा इन्हें पशु से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश किया जाता रहा है। आर्थिक अधिकार से लेकर इन्हें सभी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। हिंदू धर्म के अनेक ग्रंथों, स्मृतियों, संहिताओं की रचना इस अमानवीय व्यवस्था को उचित ठहराने के लिए की गई थी। ऐसी अछूत और दलित जातियों की सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि इन्हें भी हिंदू मान लिया गया था। सवर्णों के अत्याचार और झूठे हिंदूपन से मुक्ति पाने के लिए इन जातियों ने कभी–कभी और कहीं–कहीं पर सामूहिक रूप से स्वेच्छापूर्वक इस्लाम, ईसाई, बौद्ध आदि धर्मों को स्वीकार किया। धर्मांतरण की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बहुत सारे हिंदू आंदोलन भी चले। लेकिन हिंदू धर्म की असमानता और अन्याय पूर्ण व्यवस्था को बदलने का कोई ईमानदार प्रयास नहीं किया गया। इसके साथ ही धर्मान्तरण से भी दलितों को अन्याय और शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकी। क्योंकि जाति–व्यवस्था पर आधारित ग्राम व्यवस्था ने इन्हें पुनः शूद्रों की कोटि में ही डालकर गाँव की सीमा से बाहर रखा और अपने शोषण के सिलसिले को भी बरकरार रखा।

'जूठन' आत्मकथा के लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि भी एक ऐसी ही शूद्र या दलित जाति (भंगी) से संबध रखते हैं, जिसे शूद्रों में भी अति शूद्र या दलितों में अति–दलित माना जाता रहा है। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के माध्यम से दलित जातियों के प्रतिनिधि कबीर ने हिंदू वर्ण–व्यवस्था और मुस्लिम स्तर भेद के लिए दोनों समुदायों को धिक्कारते–ललकारते हुए लिखा –

'जो तू बामन बामनि जाया। आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।'

'जो तू तुरुक तुरकनी जाया। अंदर खतना क्यों न कराया।'

मध्यकाल में संत नामदेव, रैदास, सधना, सेना नाई, रज्जब, गरीबदास, दादू जैसे प्रखर कवियों–संस्कृतिकर्मियों की एक पूरी जमात निर्गुण भक्तिधारा के रूप में प्रवाहित हुई थी, जिसकी तीखी धार को कुण्ठित कर हिंदू व्यवस्था ने अपने में समाहित कर लिया। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग और लोकतांत्रिक व्यवस्था में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय दलित आंदोलन की धार को कुंठित करना बहुत कठिन है। फिर भी इसे असंभव नहीं कहा जा सकता। इस व्यावसायिकता के युग में सवर्ण मानसिकता के सत्ताधारी समुदाय में लोभ–लाभ के बहुत सारे हथकण्डे हैं, जिनसे दलित वर्ग के प्रतिनिधि संस्कृति कार्मियों को पर्याप्त सावधान रहने की जरूरत है। परिवेशगत इस दबाव के कारण ही अतिरिक्त सावधानी के प्रयास में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा में कहीं–कहीं अधिक कटु होकर अपने मानवीय कर्म का ही संपादन करते हैं, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उसका दुरुपयोग नहीं करते। इस आत्मकथा में व्यक्त तीखी प्रतिक्रियाओं को आपको इस आशय के प्रकाश में ही देखना चाहिए।

बोध प्रश्न

इकाई में दिए गए मूल पाठ, उसके सार, चरित्र–विश्लेषण, उसकी अंतर्वस्तु और उसके परिवेश का अध्ययन करने के बाद आप आत्मकथा से सम्बद्ध बहुत से प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। यहाँ कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, जिनके उत्तर कोष्ठकों में उचित संख्या के निर्देश द्वारा दें और इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

9) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा में लेखक ने किस सामाजिक समस्या को सबसे महत्वपूर्ण माना है?

   क) शिक्षा की समस्या को।

   ख) अस्पृश्यता की समस्या को।

   ग) दहेज की समस्या को।

   घ) गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को। ( )

10) लेखक ने अपने जातीय दृष्टिकोण द्वारा किस तथ्य को अधिक महत्वपूर्ण माना है?

   क) समन्वय की भावना को।

   ख) अछूतों के प्रति सहानुभूति को।

   ग) उदारता को।

   घ) अपने व्यावहारिक लाभ को। ( )

11) सवर्णों के उत्पीड़न से बचने के लिए दलित और अछूत जातियों ने कौन–सा रास्ता अपनाया?

   क) सामूहिक प्रतिकार का।

   ख) सामूहिक धर्मांतरण का।

   ग) अनुनय–विनय का।

   घ) प्रशासन की सहायता का। ( )

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

1) अम्बेडकर साहित्य को पढ़ने के बाद लेखक ने महात्मा गांधी के अछूतोद्धार के संदर्भ में अपनी क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उत्तर तीन पंक्तियों में दें और उसे इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

.....

.....

.....

.....

2) इस आत्मकथा की अंतर्वस्तु की मुख्य विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) इकाई में दिए गए चरित्र–विश्लेषण के आधार पर लेखक के चरित्र की मूलभूत विशेषताओं को छह पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 संरचना–शिल्प

साहित्य की एक विधा के रूप में आत्मकथा के संरचना–शिल्प का कलात्मक होना एक अनिवार्य शर्त है। लेकिन इस कलात्मकता की कोई एक निश्चित कसौटी नहीं है। इसे आप हरिशंकर परसाई और महादेवी के निबंधों के संरचना–शिल्प के अंतर को देखकर अच्छी तरह समझ गए होंगे। यहाँ हम एक दलित लेखक की आत्मकथा के संरचना–शिल्प पर विचार करने जा रहे हैं। आत्मकथा में साहित्यिक कलात्मकता जितनी आवश्यक है, उससे कहीं अधिक आवश्यक उसकी प्रामाणिकता है, जो पाठक को अपने सहीपन की प्रतीति भी कराए। इस तथ्य को ध्यान में रखकर हम इस आत्मकथा की भाषा शैली पर अलग–अलग विचार कर संरचना–शिल्प की विशेषताओं को आसानी से समझ सकते हैं।

5.7.1 भाषा

आत्मकथा की भाषा में भी वे सारी विशेषताएँ आ जाती हैं, जो कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं के लिए निर्धारित की गई हैं। परिवेश और वातावरण, पात्रानुकूलता, भावानुकूलता, विषयानुकूलता, पात्रों के संवाद आदि ऐसे तत्व हैं, जो आत्मकथा में भी उपेक्षणीय नहीं हैं। यह आत्मकथाकार पर निर्भर करता है कि वह भाषा के किस स्वरूप का कब और कैसे इस्तेमाल करे। यह भी संभव है कि आत्मकथा लेखक अपनी निश्चित और स्तरीय परिनिष्ठित भाषा का ही शुरू से अंत तक प्रयोग करे। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भाषा के संबंध में वातावरण, परिवेश और पात्रानुकूलता के साथ ही अपनी निश्चित भाषा के भी कुशल प्रयोग का परिचय दिया है।

अपने गांव के वातावरण के चित्रण में वाल्मीकि ने घेर (पुरुषों की बैठक और पशुशाला), तगा (त्यागी जाति), चूहड़ा (भंगी), बगड़ (बस्ती), जोहड़ी (बावड़ी) आदि ठेठ स्थानीय बोली के शब्दों का प्रयोग किया है। अपने बचपन से लेकर स्कूली जीवन के चित्रण में उन्होंने विभिन्न पात्रों के संवादों की भाषा को भी ज्यों–का–त्यों आंचलिक लहजे में प्रस्तुत किया है। गाँव के त्यागियों की प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए, त्यागियों की सामंती मानसिकता के चित्रण में लेखक ने उनके कथनों को ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत किया है। 'कौवा बी (भी) कबी (कभी) हंस बण सके,' 'अरे! चूहड़े के जाकत (बच्चा, बेटा) कू (को) झाडू लगाणे कू कह दिया तो कोण सा जुल्म हो गया!' इससे ग्रामीण परिवेश और अभिजात मानसिकता – दोनों का समुचित प्रभावांकन हुआ है। इस तरह के कई प्रसंगों में लेखक ने बोली के स्थानीय रूप का अविकल प्रयोग कर स्थिति को जीवंत बनाया है। सुखदेव सिंह त्यागी और अपनी माँ के बीच होने वाली नोंक–झोंक को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है – 'चौधरी जी, ईब (अब) तो सब खाणा खाके चले गए...म्हारे (हमारे) जाकतों (बच्चों) कू भी एक पत्तल पर धर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते (कर रहे थे)।' इस पर चौधरी की क्रूरता भरी वाणी है, 'टोकरा भर तो जूठन ले जा री है.....ऊप्पर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी।' यह सुनकर टोकरा बिखेरते हुए माँ का जवाब है, 'इसे ठाके (उठाकर) अपने घर में धर ले। कल तड़के बरातियों को नास्ते में खिला देणा।' भाषा के ऐसे प्रयोगों द्वारा लेखक ने यथार्थ को अधिक प्रामाणिक बनाने के कौशल का परिचय दिया है।

संवादों में स्थानीय रंगत के समावेश के साथ ही लेखक ने अछूत जातियों के रूढ़िवादी संस्कारों, दवा–दारू और उचित उपचार की जगह बीमारी में प्रेत–बाधा के ढोंग को उजागर करने के लिए झाड़–फूंक, टोने–टोटके, ताबीज, भभूत की निरर्थकता को सिद्ध करते हुए उनसे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। भगत, पुच्छा, पौन, ओपरा (भूत की लपेट), बादी देवता आदि शब्द और इनसे सम्बद्ध मान्यताएँ अछूतों में ही अधिक प्रचलित थीं, जो अछूतों के जीवन को और पीछे घसीट रही थीं।

आत्मकथा में अन्य सामान्य प्रसंगों के वर्णन–विवरण, विवेचन–विश्लेषण में लेखक ने हिंदी की स्तरीय भाषा के मान्य शब्दों का ही प्रयोग किया है। सब मिलाकर इस आत्मकथा की भाषा प्रसंगानुकूल, अभिव्यक्ति के लिए सक्षम और प्रभावांकन के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

5.7.2 शैली

आत्मकथा की अपेक्षाओं के अनुकूल 'जूठन' की शैली वर्णनात्मक ही है। स्थान–स्थान पर स्थितियों और घटनाओं का विवरण देते हुए आत्मकथा की शैली में चित्रात्मकता भी दिखाई देती है। गंभीर स्थितियों के वर्णन के बाद लेखक को कहीं–कहीं एक तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विवेचन–विश्लेषण का भी सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इससे वर्णनात्मक शैली में किसी प्रकार का गुणात्मक अंतर नहीं आने पाया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा की वर्णनात्मक शैली को नीरस विवरणों से बचाने का हमेशा ध्यान रखा है। इसके लिए उन्होंने स्थान–स्थान पर संवादों की योजना करके उसे जीवंत और सरस बनाने का प्रयास किया है। आत्मकथा के आरंभिक अंश की भाषा पर विचार करते हुए संवादों की योजना से आने वाली जीवंतता पर हमने पर्याप्त चर्चा कर ली है। यहाँ आगे आने वाले कुछ संवादों की इस दृष्टि से चर्चा उचित जान पड़ती है। महाराष्ट्र के चन्द्रपुर में रहते हुए एक ब्राह्मण कुलकर्णी परिवार की लड़की सविता वाल्मीकि को ब्राह्मण समझकर प्रेम करने लगी थी। यहाँ लेखक और उसके बीच की वार्ता आत्मकथा में कहानी की सरसता का संचार करती है –

लेखक – मेरे बारे में तुम्हारी क्या राय है?

सविता – आई, बाबा तुम्हारी तारीफ करते हैं.....तुम्हें अच्छा मानते हैं।

लेखक – मैंने तुम्हारी राय पूछी थी।

सविता – अच्छे लगते हो। (उसने मेरी बाँह पर अपने शरीर का भार डाल दिया था)

लेखक – अच्छा, यदि मैं एस.सी. (सेड्यूल कास्ट) हूँ....तो भी.....?

सविता – तुम एस.सी. कैसे हो सकते हो?

लेखक – क्यों? यदि हुआ तो?

सविता – तुम ब्राह्मण हो?

लेखक – यह तुमसे किसने कहा?

सविता – बाबा ने।

लेखक – गलत कहा.....मैं एस.सी. हूँ। मैंने उत्तर प्रदेश के चूहड़ा परिवार में जन्म लिया है।

सविता – तुम झूठ बोल रहे ले।

लेखक – नहीं, सवि.....यह सच है....जो तुम्हें जान लेना चाहिए।

इस वास्तविकता को जानकार 'वह रोने लगी। मेरा एस.सी. होना जैसे कोई अपराध था। वह काफी देर सुबकती रही। हमारे बीच अचानक फासला बढ़ गया था। हजारों साल की नफरत हमारे दिल में भर गई थी। एक झूठ को हमने संस्कृति मान लिया था।' यहाँ उद्धृत संवाद और इस प्रकार की टिप्पणी से आत्मकथा की शैली को रोचक, जीवंत और गंभीर बनाने का प्रयास किया गया है।

एक कुशल कहानीकार और कवि होने के नाते ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कई प्रकार से अपनी वर्णन–शैली को रोचक और गंभीर बनाया है। वर्णनों के बीच जगह–जगह पर

शिक्षकों की भूमिका, पाठ्यक्रमों की निरर्थकता, वर्ण–व्यवस्था की क्रूरता, तथाकथित समाज–सुधारकों और सत्ता हथियाने के चक्कर में पड़े नेताओं के हथकण्डों पर की गई लेखक की टिप्पणियाँ उसकी विश्लेषण–क्षमता को भी रेखांकित करती हैं। दलित जाति के तीव्र अहसास की पीड़ा उसे प्रायः भावुक बना देती हैं। जाति–व्यवस्था की विकृतियों और धर्मशास्त्रों द्वारा उनकी पुष्टि से खिन्न लेखक का आक्रोश वर्णनात्मक शैली की सीमा का उल्लंघन कर भावात्मकता में प्रवेश कर जाता है। इसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा –

'तरह–तरह के मिथक रचे गए – वीरता के, आदर्शों के, कुल मिलाकर क्या परिणाम निकले? पराजय, निराशा, निर्धनता, अज्ञानता, संकीर्णता, कूपमंडूकता, धार्मिक जड़ता, पुरोहितवाद के चंगुल में फँसा, कर्मकांड में उलझा समाज, जो टुकड़ों में बँटकर कभी यूनानियों से हारा, कभी शकों से। कभी हूणों से, कभी अफगानों से, कभी मुगलों, फ्रांसीसियों और अंगरेज़ों से हारा, फिर भी अपनी वीरता और महानता के नाम पर कमजोर और असहायों को पीटते रहे। घर जलाते रहे। औरतों को अपमानित कर उनकी इज्जत से खेलते रहे। आत्मश्लाघा में डूबकर सच्चाई से मुँह मोड़ लेना, इतिहास से सबक न लेना, आखिर किस राष्ट्र के निर्माण की कल्पना है।' आक्रोश और भावावेश के नाम पर उपर्युक्त उद्धरण में व्यक्त सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता। इस तरह की भावात्मक शैली के माध्यम से वाल्मीकि ने अपने पाठकों को जाति–पाँत और छुआ–छूत के मुद्दों पर गंभीरता से सोचने के लिए विवश किया है। अपनी वर्णनात्मक शैली में इस प्रकार की भावोत्तेजक विधि का प्रयोग कर उन्होंने अपनी शैली को कलात्मक ही नहीं प्रभावोत्पादक भी बनाया है। अतः कलात्मकता और प्रभावोत्पादकता – दोनों ही दृष्टियों से इस आत्मकथा की शैली सार्थक और सफल मानी जा सकती है।

5.8 शीर्षक

आपने पिछली इकाइयों में कहानी और निबंध के अध्ययन में उनके शीर्षकों के महत्व को अच्छी तरह समझ लिया है। एक साहित्य–विधा के रूप में आत्मकथा के लिए भी शीर्षक का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस इकाई में भी हमने अंतर्वस्तु और सार का अध्ययन करते हुए इस रचना के शीर्षक के महत्व की ओर संकेत किया है। आगे आत्मकथा के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए भी इसके शीर्षक के महत्व को रेखांकित किया जाएगा।

इस रचना के लिए 'जूठन' शीर्षक की सार्थकता पर विचार करने के पूर्व भारतीय समाज की एक अत्यंत अमानवीय प्रथा का संक्षिप्त परिचय आपके लिए उपयोगी होगा। लगभग पूरे भारत में यह प्रथा रही है कि सवर्ण एवं सम्पन्न परिवारों द्वारा आयोजित उत्सवों, शादी विवाह, मृत्यु–भोज आदि के अवसरों पर आमंत्रित लोगों के खाने के बाद उनकी थाली या पत्तलों पर बची हुई जूठन को अछूतों को उनके द्वारा किए गए काम के मेहनताने के रूप में दिया जाता रहा है। उनके लिए शादी–विवाह का महत्व इस 'जूठन' (जूठे अन्न) की मात्रा पर निर्भर करता था। महीनों और कभी–कभी जीवन–पर्यन्त बेगार का उनके लिए यह तोहफा मान लिया गया था। इसका जिक्र बड़े विस्तार से लेखक ने आत्मकथा में किया है, 'शादी ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजों के बाहर बड़े–बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे। बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में

डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जाकर वे जूठन इकट्ठी कर लेते थे। पूरी के बचे–खुचे टुकड़े, एक आधा मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी–बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी कहा जाता था कि भुक्खड़ (भूखे) लोग आ गए हैं बारात में, जिन्हें कभी खाने को कुछ नहीं मिला। सारा चट कर गए। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े–बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे।' जूठन को सुखाकर किस प्रकार सुरक्षित किया जाता था और उसे गाढ़े समय में किस तरह भिगोकर उबाला जाता था – चटखारे लेकर खाया जाता था, इसका भी वर्णन लेखक ने किया है। जूठन एकत्र करने के प्रसंग में लेखक की माँ और चौधरी सुखदेव सिंह त्यागी के बीच हुई नोंक–झोंक के बाद उसके परिवार से जूठन का सिलसिला खत्म हो गया था।

वैसे देखा जाए तो यही आधार है, जिससे आत्मकथा का शीर्षक 'जूठन' रखा गया है। लेकिन पूरी आत्मकथा को पढ़ने के बाद लगेगा कि यह शीर्षक अत्यंत व्यापक और सांकेतिक भी है। यह शीर्षक इस तथ्य को भी संकेतित करता है कि शूद्र समुदाय सवर्णों के लिए जूठन के समान था, हिंदू समाज की तलछट था, जिसे कूड़ा समझा जाता था। बेगार उनका धर्म मान लिया गया था और गाली–गलौज से लेकर घोर प्रताड़ना तक को उनका अधिकार।

उनका नाम लेकर पुकारने की जरूरत नहीं समझी जाती थी, जिसका जिक्र करते हुए लेखक ने लिखा है, 'उम्र में बड़ा हो तो' 'ओ चूहड़े; बराबर या उम्र में छोटा हो तो 'अबे चहड़े के' यही तरीका था सम्बोधन का। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय बैल को छूना बुरा नहीं था लेकिन जब चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लगता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।' वस्तुतः ये सारे तथ्य जूठन शीर्षक द्वारा संकेतित हुए हैं। जूठन के प्रति समाज की यह मानसिकता लेखक को आत्मकथा के अंत तक झेलनी पड़ती है। अतः 'जूठन' शीर्षक इस आत्मकथा के लिए अत्यंत उपयुक्त और सार्थक है। यह शीर्षक आत्मकथा के प्रतिपाद्य को भी अत्यंत कलात्मक ढंग से संकेतित करता है। इसके साथ ही यह दलित समुदाय की अस्मिता या उसकी पहचान के संकट को भी रेखांकित करता है।

5.9 प्रतिपाद्य

कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि की तरह आत्मकथा का भी एक निश्चित उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य ही उसका प्रतिपाद्य माना गया है। यह बात अपनी जगह सही है कि इस रचना में लेखक की अपनी कथा है, जो स्वयं उसकी ही कलम से लिपिबद्ध हुई है। लेकिन इसे लेखक के जीवन का रोजनामचा मात्र नहीं कहा जा सकता। अपने पूरे जीवन के विस्तार में लेखक को जिन प्रिय–अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ा है, जिन व्यक्तियों, जिन घटनाओं ने उसे प्रभावित किया है, जिनके माध्यम से उसकी दृष्टि का निर्माण हुआ है, वे सभी आत्मकथा में आई हैं। अपने जीवन–यापन के दौरान होने वाले अनुभव, व्यक्तिगत और सामाजिक क्रियाएँ, उसकी मूल्य–दृष्टि का निर्माण करती हैं। यही वह मूल्य दृष्टि है, जिसके आधार पर वह अपना, अपने जैसे लोगों का और पूरे समाज का मूल्यांकन करता है। यह

मूल्यांकन–दृष्टि चूंकि पूरे सामाजिक संदर्भ में विकसित या अर्जित होती है, अतः इसे सामाजिक दृष्टि भी कहा जा सकता है। इस सामाजिक दृष्टि के प्रकाश में ही वह अपनी व्यक्ति स्थिति और समाज–स्थिति का निरीक्षण–परीक्षण करता है। इसके बाद ही उसका निजी जीवन आत्मकथा का विषय बन पाता है।

इस संदर्भ में विचार करें तो आप स्पष्ट रूप से देखेंगे कि इस आत्मकथा में लेखक के जीवन में उसके अछूत होने के सामाजिक अभिशाप की पीड़ा ही विषय बनी है। लेकिन मात्र अपनी निजी पीड़ा से अभिभूत होकर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उसे दूसरों के सामने प्रकट करने के उद्देश्य से आत्मकथा की रचना नहीं की है। यदि अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति को वे महत्व देते तो अपना सरनेम हटाकर उसे पूरा कर सकते थे और तब आत्मकथा लिखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। इस आत्मकथा के विस्तृत सार और उसकी अंतर्वस्तु के विवेचन–विश्लेषण से आपको इसके उद्देश्य का संकेत अवश्य मिल गया होगा। उसके आधार पर यह आसानी से कहा जा सकता है कि रचना का मूल और प्रथम प्रतिपाद्य भारतीय समाज के एक काफी बड़े समुदाय की, जिन्हें अछूत मान लिया गया है, मुक्ति का प्रयास है। इसके लिए लेखक ने अपनी आत्मकथा में जगह जगह जाति–पाँति पर आधारित समाज–व्यवस्था, उसके लिए जिम्मेदार वर्ण–व्यवस्था, आभिजात्यवादी सामंती मानसिकता आदि का तीव्र विरोध किया है। इस प्रक्रिया में उसने जाति–व्यवस्था के झूठ, उसकी कृत्रिमता और सवर्ण समुदाय के सचेत षडयंत्र का भी पर्दाफाश किया है। अपने व्यक्तिगत अनुभव के दंश से पीड़ित होकर उसने लिखा है, 'भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण घटक है। 'जाति' पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है। पैदा होना व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता। यदि होता तो मैं भंगी के घर पैदा क्यों होता? जो स्वयं को इस देश की महान सांस्कृतिक धरोहर का अलमबरदार कहते हैं क्या वे अपनी मर्जी से उन घरों में पैदा हुए हैं? हाँ, इसे जस्टी–फाई करने के लिए अनेक धर्मशास्त्रों का सहारा वे जरूर लेते हैं। वे धर्मशास्त्र, जो समता, स्वतंत्रता की हिमायत नहीं करते, बल्कि सामंती प्रवृत्तियों को स्थापित करते हैं।' इससे स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था की अतार्किकता, उसकी कृत्रिमता ही नहीं, उसे पुष्ट करने वाले धर्मशास्त्रों की निरर्थकता और अप्रासंगिकता को भी लेखक ने उद्घाटित किया है।

अपने मूल उद्देश्य के प्रतिपादन में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने केवल सवर्णों की सामंती मानसिकता पर ही चोट नहीं की है। उन्होंने अछूतों और नीची जातियों में प्रचलित अशिक्षाजन्य अंधविश्वास पर आधारित रूढ़ियों, कुसंस्कारों, झाड़–फूंक, टोना–टोटका, भूत–प्रेत आदि से संबद्ध मान्यताओं की आलोचना कर उनमें व्यापक जागृति की अनिवार्यता को भी रेखांकित किया है। यह उनके प्रतिपाद्य का एक दूसरा पक्ष है, जो अछूतोद्धार के मार्ग में बाधक है।

इस दृष्टि से एक तीसरे पक्ष की ओर भी वाल्मीकि की दृष्टि गई है। अछूत कही जाने वाली जातियों में ऐसे बहुत सारे लोगों का उल्लेख वाल्मीकि ने किया है, जो पढ़–लिखकर अच्छी स्थिति में हो गए हैं और अपनी जाति पर परदा डालने की कोशिश करते हैं। इनमें उनके कई रिश्तेदार, उनकी भतीजी, हमसफर मित्र और मोहनदास नैमिशराय जैसे दलित कवि लेखक भी सम्मिलित हैं। इससे आहत होकर उन्होंने लिखा है, 'दलित आंदोलन से जुड़े रचनाकारों, बुद्धिजीवियों, कार्यकर्ताओं को अपने अंतर्द्वंद्वों से लगातार जूझना पड़ रहा है।' इसका और अधिक खुलासा करते हुए उन्होंने लिखा है, 'इस 'सरनेम' (वाल्मीकि) के कारण मुझे जो दंश मिले हैं, उनको बयान करना कठिन है। परायों की बात तो छोड़िए, अपनों ने जो पीड़ा दी है, वह

अकथनीय है। परायों से लड़ना जितना आसान है, अपनों से लड़ना उतना ही दुष्कर।' यह तथ्य भी अछूत अथवा दलित जीवन की समस्या की गंभीरता को ही रेखांकित करता है, जिसमें बेटा भी अपने बाप को पहचानने से इनकार कर सकता है।

इस प्रकार 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा दलित और अछूत समझी जाने वाली जातियों के एक प्रतिनिधि रचनाकार की आत्मकथा है, जिसमें अछूतों के उद्धार की आवश्यकता को एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर कोष्ठकों में संख्या निर्दिष्ट करके दें और उन्हें इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

12) गाँव के स्थानीय वातावरण को जीवंत और आदर्श बनाने के लिए आत्मकथा में किस प्रकार के शब्दों का सहारा लिया गया है?

क) तद्भव शब्दों का।

ख) बोली के ठेठ शब्दों का।

ग) देशज शब्दों का।

घ) तत्सम शब्दों का। ( )

13) ग्रामीण पात्रों के संवादों में भाषा के किस रूप का प्रयोग किया गया है?

क) तद्भव–प्रधान रूप का।

ख) स्थानीय बोली के ठेठ रूप का।

ग) तत्सम प्रधान रूप का।

घ) मिश्रित भाषा का। ( )

14) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा में किस शैली की प्रधानता है?

क) भावात्मक शैली की।

ख) वर्णनात्मक शैली की।

ग) विवेचनात्मक शैली की।

घ) व्यंग्यात्मक शैली की। ( )

15) आत्मकथा का मुख्य प्रतिपाद्य क्या है?

क) अपने जीवन में भोगी गई पीड़ा का बोध कराना।

ख) ग्रामीण जनता के पिछड़ेपन को दिखाना।

ग) देश–व्यापी अछूत समस्या की गंभीरता पर प्रकाश डालना।

घ) विभिन्न जातियों के बीच आपसी मेल–जोल की जरूरत पर बल देना।

( )

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थानों में दें और उन्हें इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाकर जाँच लें।

4) 'जूठन' की भाषा की प्रमुख विशेषताओं को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) 'जूठन' की वर्णनात्मक शैली को लेखक ने किस प्रकार कलात्मक और प्रभावोत्पादक बनाया है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) 'जूठन' शीर्षक की सार्थकता को चार पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7) 'जूठन' के प्रतिपाद्य को आठ पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.10 सारांश

'जूठन' शीर्षक आत्मकथा से संबंधित इस इकाई का अध्ययन आपने कर लिया होगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित तथ्यों को समझकर अपनी भाषा में लिख सकते हैं-

- एक साहित्यिक विधा के रूप में आप इस विधा की प्रमुख विशेषताओं को समझकर अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- इसमें आत्मकथा के सार और उसकी अंतर्वस्तु का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। इसको पढ़ने के बाद आप आत्मकथाकार के जीवन के यातनापूर्ण प्रसंगों के माध्यम से दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा को समझकर अपनी भाषा में व्यक्त कर सकते हैं।
- आत्मकथा में व्यक्त लेखक के चरित्र और व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- इस इकाई में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश पर विचार करते हुए जाति व्यवस्था के रूप में एक सामाजिक अभिशाप को भी रेखांकित किया गया है। छुआछूत की भावना पर आधारित इस अभिशाप की गंभीरता का आप विवेचन–विश्लेषण कर सकते हैं।
- भाषा और शैली को आधार बनाकर आत्मकथा के संरचना–शिल्प पर भी इसमें विचार किया गया है। इसे पढ़ने के बाद आप आत्मकथा के संरचना–शिल्प की विशेषताओं को अपनी भाषा में लिख सकते हैं।
- आत्मकथा का शीर्षक 'जूठन' कई दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसे पढ़ने के बाद आप इस रचना के संदर्भ में शीर्षक की सांकेतिकता, व्यापकता और सार्थकता पर अच्छी तरह प्रकाश डाल सकते हैं।
- आत्मकथा के रूप में यह रचना आत्मकथाकार के जीवन का रोजनामचा मात्र न होकर एक गंभीर सामाजिक लक्ष्य से भी प्रेरित है। अतः इसे पढ़कर आप रचना के मूल प्रतिपाद्य को अच्छी तरह अपनी भाषा में विवेचित–विश्लेषित कर सकते हैं।

5.11 शब्दावली

तगा	:	त्यागी (जातिसूचक)
घेर	:	पशुशाला और पुरुषों की बैठक
जोहड़ी	:	बावड़ी
चुहड़ों	:	भंगी (भंगियों)
बगड़	:	बस्ती
थारी	:	तुम्हारी
जागी	:	जाएगी
जातक	:	बच्चा, बेटा
कूबी	:	को भी

तुनकमिजाजी	:	छोटी–सी बात पर रुष्ट हो जाना
फब्तियाँ	:	ताने, छींटाकशी
अभिजात्यता	:	कुलीनता
वजूद	:	अस्तित्व
रा है	:	रहा है
शख्सियत	:	व्यक्तित्व
क	:	के लिए
कबी	:	कभी
कू	:	को
तरियों	:	तरह
तम	:	तुम
यो	:	वह
जिब	:	जब
म्हारे	:	मेरे, हमारे
हुज्जत	:	कहा–सुनी, नोक–झोंक
बुग्गी	:	गाड़ी
छाज	:	सूप
कुरडियों	:	घूरों, कूड़े के ढेरों
जनवासा	:	बारात के ठहरने का स्थान
ईब	:	अब
कर रे ते	:	कर रहे थे
री	:	रही
ठाके	:	उठाकर

5.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

श्री राज किशोर (सम्पादक) : हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

रमणिका गुप्ता (सम्पादक) : दलित चेतना : साहित्य, नवलेखन प्रकाशन,हजारीगा

डॉ. जयप्रकाश कर्दम (सम्पादक) : दलित साहित्य : (वार्षिकी),2001, अकादमिकप्रतिक्षा प्रकाशन, दिल्ली

5.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ग
2) ख
3) ख

4) मुसलमान, तगा, त्यागियों, हिंदुओं

5) ग

6) क

7) ग

8) झाड़ू छीनकर, उतर आई, तीर–कमान, घनी मूंछें, फड़फड़ाने लगीं

9) ख

10) ख

11) ख

12) ख

13) ख

14) ख

15) ग

अभ्यास

1) अम्बेडकर को पढ़ लेने के बाद लेखक की यह धारणा बनी थी कि गांधी जी ने हरिजन नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीयधारा में नहीं जोड़ा, बल्कि हिंदुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया। अपने इस कार्य द्वारा उन्होंने सवर्ण हिंदुओं के हितों की रक्षा की।

2) यह आत्मकथा लेखक की अपनी व्यथा–कथा मात्र न रहकर समस्त भारतीय अछूत जीवन की व्यथा–कथा भी बन जाती है। इस आत्मकथा में लेखक ने आरंभ से अन्त तक स्वयं के माध्यम से दलित जीवन की असहायता, विवशता और अनेक प्रकार के अत्याचारों के साथ सवर्णों या ऊँची जातियों द्वारा स्वीकृत वर्ण–व्यवस्था, ब्राह्मणवाद राजनीतिक व्यवस्था के सहारे पलने वाली सामंती मानसिकता पर अपना गहरा आक्रोश प्रकट किया है।

3) आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का चरित्र एक साहसी, कर्मठ, संघर्षशील और इनसानियत से भरपूर व्यक्ति के रूप में उभरा है। अनेक विषम और विरोधी परिस्थितियों में भी कभी उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। जीवन की दौड़ में एक सफल व्यक्ति बन जाने के बाद भी उन्होंने अपने इनसानी सरोकार को कायम रखा। एक साहित्यकार ही नहीं, वरन् एक सांस्कृतिक–सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी उन्होंने अपनी संघर्षशीलता का परिचय दिया है। उच्च जातियों और निम्न जातियों के बीच चल रहे परोक्ष या प्रत्यक्ष संघर्ष में उसने निम्न जातियों के पक्ष में अपनी संघर्ष–क्षमता का पूरा परिचय देकर अपने प्रतिबद्ध व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है।

4) 'जूठन' में वातावरण, परिवेश और पात्रानुकूलता का पूरा ध्यान रखते हुए लेखक ने अपने वर्णनों–चित्रणों में अधिकांशतः खड़ी बोली गद्य के स्तरीय रूप का प्रयोग किया है। अपने गाँव के वातावरण को यथार्थ और जीवंत बनाने के लिए उसने तगा, बगड़, जोहड़ी आदि शब्दों के प्रयोग के साथ ही ग्रामीण पात्रों के संवादों की भाषा में गाँव की ठेठ (आंचलिक) बोली का प्रयोग किया है।

5) लेखक ने 'जूठन' की वर्णनात्मक शैली को नीरस विवरणों से बचाने के लिए जगह–जगह संवादों की योजना, गंभीर प्रसंगों में विवेचन–विश्लेषण और भावपूर्ण प्रसंगों में भावात्मक शैली का सहारा लिया है। इन विधियों से आत्मकथा की वर्णनात्मक शैली में कलात्मकता और प्रभावात्मकता का अत्यंत कुशलता से समावेश किया गया है।

6) आत्मकथा में 'जूठन' शीर्षक एक अमानवीय सामाजिक चलन और उससे जुड़ी हुई एक मार्मिक घटना पर आधारित है। लेकिन इस प्रचलन और घटना के साथ ही जूठन शीर्षक अछूत समुदाय की अपनी अस्मिता के संकट को भी रेखांकित करता है। अतः यह अत्यंत सार्थक और सांकेतिक भी है। इससे हाशिये पर डाली गयी जातियों का बोध भी होता है।

7) 'जूठन' शीर्षक आत्मकथा का मूल प्रतिपाद्य भारतीय समाज में दलित या अछूत समुदाय के उत्पीड़न और इससे मुक्ति की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इसके लिए जहाँ एक ओर लेखक ने ब्राह्मणवादी सामंती मानसिकता का घोर विरोध किया है, वहीं अछूत समुदाय के अंधविश्वास, उसकी रूढ़िवादी और कुसंस्कारग्रस्तता की भी सहानुभूतिपूर्वक आलोचना की है। लेकिन सब मिलाकर अछूतों अथवा दलितों के लिए सामाजिक समता और न्याय की अनिवार्यता ही इस रचना का प्रमुख प्रतिपाद्य बनी है।

इकाई 6 कविताएँ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सूरदास

- 6.2.1 काव्य–वाचन
- 6.2.2 भाव पक्ष
- 6.2.3 संरचना शिल्प
- 6.2.4 प्रतिपाद्य
- 6.2.5 संदर्भ सहित व्याख्या

6.3 तुलसीदास .

- 6.3.1 काव्य–वाचन ,
- 6.3.2 भाव पक्ष
- 6.3.3 संरचना शिल्प
- 6.3.4 प्रतिपाद्य
- 6.3.5 संदर्भ सहित व्याख्या

6.4 मैथिलीशरण गुप्त

- 6.4.1 काव्य–वाचन
- 6.4.2 भाव पक्ष
- 6.4.3 संरचना शिल्प
- 6.4.4 प्रतिपाद्य
- 6.4.5 संदर्भ सहित व्याख्या

6.5 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

- 6.5.1 काव्य–वाचन
- 6.5.2 भाव पक्ष
- 6.5.3 संरचना शिल्प
- 6.5.4 प्रतिपाद्य
- 6.5.5 संदर्भ सहित व्याख्या

6.6 महादेवी वर्मा

- 6.6.1 काव्य–वाचन
- 6.6.2 भाव पक्ष
- 6.6.3 संरचना शिल्प
- 6.6.4 प्रतिपाद्य
- 6.6.5 संदर्भ सहित व्याख्या

6.7 सारांश

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

6.8 उपयोगी पुस्तकें
6.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप कविताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी काव्य–परंपरा की मुख्य प्रवृत्तियों को बता सकेंगे;
- सूरदास एवं तुलसीदास के काव्य के आधार पर भक्ति–काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- सूरदास एवं तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ बता सकेंगे;
- आधुनिक काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- छायावाद की मुख्य विशेषताएँ बता सकेंगे और
- निराला एवं महादेवी वर्मा के काव्य की विशेषताएँ बता सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम आपको कुछ कविताएँ वाचन के लिए दे रहे हैं। सूरदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा की कुछ कविताओं के माध्यम से आप हिंदी की भक्तिपरक और आधुनिक कविताओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

कविता आरंभ से ही साहित्य की महत्वपूर्ण विधा रही है। कविता के माध्यम से कवि अपने भावों और विचारों को व्यक्त करता है। कविता पद्यबद्ध होती है, लेकिन गद्य और पद्य किस बिंदु पर अलग–अलग होते हैं, यह कहना मुश्किल है। लय को पद्य का मूल तत्व माना जाता है किंतु लयबद्ध होने से ही कोई रचना कविता नहीं हो जाती। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि किसी भी रचना में भावावेग, कल्पना और लालित्य (सौंदर्य) हो तो उसे कविता कहा जा सकता है।

कविता का विषय क्या हो, वह छंदोबद्ध हो या छंदमुक्त हो, उसकी भाषा बोलचाल के नजदीक हो या आलंकारिक हो, इस पर कोई भी निर्णय देना आसान नहीं है। वस्तुतः कविता की विषय–वस्तु और रचना–विधान उस युग की आवश्यकताओं से तय होते हैं। दो भिन्न–भिन्न युगों की रचनाओं के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि कविता की विषय–वस्तु ही नहीं, उसके शिल्प और भाषा में भी अंतर आ जाता है। आगे हम हिंदी काव्य–धारा के कुछ प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन से आप इस युग की काव्यधारा की विशिष्टता और कवियों के रचनागत वैशिष्ट्य को पहचान सकेंगे। आप कविताओं की विषय–वस्तु, भाषा, छंद और शिल्प की विशेषताओं से भी परिचित होंगे।

6.2 सूरदास

हिंदी कविता का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। इस एक हजार वर्ष में भिन्न–भिन्न तरह की कविताओं के कई दौर आए। जैसे आरंभ में वीरता, शृंगार, धर्म

आदि विभिन्न भावों को आधार बनाकर काव्य लिखा गया। इस आरंभिक युग (1000–1350 ई.) की कविता को कोई निश्चित नाम देना संभव नहीं है। वैसे इस युग के आदिकाल, आरंभिककाल, वीरगाथाकाल आदि अनेक नाम दिए गए। इनमें आदिकाल नाम ही अधिक प्रचलित है। बाद में भक्तिपरक रचनाओं का युग आया। भक्ति काव्य के बाद राजा महाराजाओं का मन बहलाने वाला दरबारी काव्य लिखा गया। इस काव्य की विषय–वस्तु अधिकांश श्रृंगार तक ही सीमित थी और काव्य की बनी–बनाई रूढ़ियों और रीतियों का ही पालन किया गया। इसलिए इसे रीति काव्य (1650–1850 ई.) कहा गया। इसके बाद आधुनिक चेतना और जीवन–मूल्यों से युक्त आधुनिक काव्य की शुरुआत हुई।

भक्ति काव्य : जैसा कि आप जानते होंगे कि सूरदास का संबंध भक्ति काव्य से है। ईश्वर के प्रति प्रेम की अनुभूति को भक्ति कहते हैं। लेकिन संपूर्ण भक्ति काव्य एक–सा नहीं है। जो भक्त–कवि ईश्वर को निर्गुण–निराकार मानते थे और अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते थे, वे निर्गुणमार्गी भक्त कवि कहलाए। इनमें भी जिन्होंने धार्मिक रूढ़ियों और पाखंड पर चोट की, उन्हें ज्ञानमार्गी कहा गया। कबीर इस धारा के प्रमुख कवि थे। जिन कवियों ने लौकिक प्रेम–कथाओं के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम को अभिव्यक्ति दी, उन्हें प्रेममार्गी कहा गया। सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी इस धारा के प्रमुख कवि थे। जो कवि ईश्वर को सगुण और साकार मानते थे और जो यह मानते थे कि ईश्वर अवतार लेता है और अपनी लीलाओं द्वारा लोक का मंगल करता है, वे सगुणमार्गी कहलाए। इनमें कृष्ण की लीलाओं पर आधारित काव्य की रचना करने वाले 'कृष्णोपासक' कवि कहलाए और जिन्होंने रामकथा पर आधारित काव्य की रचना की वे 'रामोपासक' कवि कहलाए। कृष्णोपासक काव्य–धारा के प्रमुख कवि सूरदास हैं और रामोपासक काव्य–धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास हैं।

जीवन–परिचय : महाकवि सूरदास का जन्म कब हुआ और वे कहाँ पैदा हुए, आज निश्चयपूर्वक यह कहना मुश्किल है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुमान के अनुसार सूरदास का जन्म सन् 1483 और मृत्यु सन् 1563 के आसपास हुई होगी। सन् 1523 के आसपास वे वल्लभाचार्य के शिष्य बने।

रचनाएँ : सूरदास की लिखी हुई कई कृतियों का उल्लेख किया जाता है। किंतु उनकी प्रामाणिक कृतियाँ दो ही कही जाती हैं – 'सूरसागर' और 'सूरसारावली' । एक अन्य पुस्तक 'साहित्य लहरी' का भी उल्लेख मिलता है, किंतु उसकी प्रामाणिकता पर संदेह किया जाता है।

पृष्ठभूमि : सूरदास भक्ति आंदोलन के दौर के कवि थे। उस काल में वीरगाथात्मक और श्रृंगारपरक रचनाओं को महत्व नहीं दिया जाता था। ईश्वरीय भक्ति से प्रेरित होकर जो रचनाएँ की जाती थीं उन्हें ही श्रेयस्कर माना जाता था। सूरदास पर आरंभ में दैन्य भक्ति (ईश्वर के प्रति अपनी दीनता व्यक्त करना) का प्रभाव था, किंतु महाप्रभु वल्लभाचार्य से प्रेरित होकर वे कृष्ण लीला के गायन की ओर उन्मुख हुए। कृष्ण–लीला में भी उनका झुकाव बाल–लीला, किशोरवय से संबंधित लीलाएँ, राधा एवं गोपिकाओं के प्रति उनके प्रेम (संयोग और वियोग) का वर्णन ही मुख्य विषय रहा है।

6.2.1 काव्य–वाचन

यहाँ हमने बाल वर्णन, विनय और वियोग (भ्रमर गीत) से संबंधित तीन पद दिए हैं। आगे आप इन पदों का वाचन करेंगे। ये पद ब्रजभाषा में हैं। इसलिए इन्हें समझने में

आपको कठिनाई आ सकती है। इसको ध्यान में रखते हुए कठिन शब्दों के अर्थ नीचे दिए गए हैं।

बाल लीला : पहला पद बाल लीला का है। सूरदास ने कृष्ण की बाल लीलाओं का मनोहारी चित्रण किया है। घुटनों के बल चलते हुए कृष्ण की बाल चेष्टाएँ, मक्खन लेने के लिए मचलते कृष्ण, अपनी क्रीड़ाओं द्वारा नंद और यशोदा को रिझाते और पुलकित करते हुए कृष्ण इस प्रकार के पदों के प्रमुख विषय बने हैं। निम्नलिखित पद में भी कृष्ण का ऐसा ही मनोहारी रूप वर्णित हुआ है। धूल से भरे, मुख पर दही का लेप किए और हाथों में मक्खन के लिए कृष्ण के इस रूप पर सूरदास स्वयं मोहित हैं–

सोभित कर **नवनीत**[1] लिए।
घुटुरुनि चलत **रेनु**[2] तन–मंडित मुख **दधि**[3] लेप किए।।

चारु[4] कपोल, **लोल**[5] लोचन, **गोरोचन**[6] तिलक दिए।
लट लटकनि **मनु**[7] मत्त **मधुप**[8] गन मादक मधुहिं पिए।।

कठुला[9] कंठ ब्रज केहरि **नख,**[10] **राजत**[11] रुचि हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत **कल्प**[12] जिए।।

1) ताजा मक्खन 2) धूल 3) दही 4) सुंदर 5) चंचल 6) पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ जो गाय के पित्त से निकलता है 7) मानो 8) भ्रमर 9) बच्चों को पहनायी जाने वाली माला 10) सिंह का नख 11) सुशोभित 12) सौ कल्प (पुराणों में ब्रह्मा के एक दिन को व्यक्त करने वाला शब्द)

विनय पद : सूरदास आरंभ में दैन्य भक्ति के अनुकूल पद रचते थे। दैन्य भक्ति में कवि ईश्वर के सामने अपनी दीनता प्रकट करता है। वह अपने को पापी और दीन मानता है और ईश्वर को सर्वशक्तिमान तथा कृपालु। वह ईश्वर से अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है। सूरसागर के इस पहले पद में भी यही भाव व्यक्त हुआ है।

चरन कमल **बंदौं**[1] हरि **राई**[2]।
जाकी[3] कृपा पंगु **गिरि**[4] लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई।।
बहिरौ सुने गूँग पुनि बोलै **रंक**[5] चलै सिर **छत्र**[6] धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार–बार बंदौं **तिहि**[7] **पाई**[8]।।

1) प्रणाम करना) 2) राजा 3) जिसकी 4) पर्वत 5) गरीब 6) राजा का छत्र 7) उनके 8) पैर

भ्रमर गीत : सूरसागर का महत्वपूर्ण अंश है – भ्रमरगीत। उद्धव के ज्ञान के अंहकार को तोड़ने के लिए कृष्ण ने उनको ब्रज भेजा था, यह कहकर कि वे ज्ञान द्वारा राधा और गोपियों को विरह से मुक्त कराएँ। किंतु गोपियाँ उपदेश सुनने की बजाय उद्धव को मधुकर कहकर, उसके ज्ञान के अहंकार का मजाक उड़ाती हैं।

निरगुन[1] कौन देस को **बासी**[2]
मधुकर[3] कहि समुझाइ **सौंह**[4] दै, **बूझति**[5] साँच न हाँसी।।
को है जनक, कौन है जननी, कौन **नारि**[6], को दासी।
कैसो **बरन**[7] भेस है कैसो, **केहि**[8] रस में अभिलासी।।
पावैगों पुनि कियो आपनो जो रे, कहैगो **गाँसी**[9]।।

सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।

1 निर्गुण (निर्गुण–निराकार ईश्वर) 2 निवासी (रहने वाला) 3 भंवरा और उद्धव 4 सौगंध 5 समझना 6 स्त्री (पत्नी) 7 रंग 8 किस 9 गाँस या कपट की बात

6.2.2 भाव पक्ष

सूरदास की कविता को भाव पक्ष की दृष्टि से मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – (1) दैन्य भाव, (2) लीला गायन, (3) शृंगार चित्रण। इन तीनों पर अलग–अलग विचार करके आप सूरदास के भाव–पक्ष की विशेषताओं को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

दैन्य भाव : विनय के पदों में सूरदास ने अपनी दीनता और ईश्वर की महत्ता तथा उदारता का वर्णन किया है। चरण कमल बंदौ हरि राई में भगवान की महत्ता का पूरा उद्घाटन हुआ है। अपने विनय के पदों में सूरदास ने प्रायः 'हौं हरि सब पतितन को नायक', 'प्रभु मैं सब पतितन को टीको', 'अब के नाथ मोहिं लेहु उधारि' आदि जैसे दीनतासूचक भावों के साथ भगवान की परम दयालुता का भाव व्यक्त किया है। इस प्रकार के पदों में कवि ने एक परम भक्त के रूप में अपनी मुक्ति की याचना की है। अपने आरंभिक जीवन में ही सूरदास ने दैन्यभक्ति से परिपूर्ण पदों की रचना की थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रेरणा से वे सख्य उपासक बन गए। सख्य भाव का अर्थ है, सखा या मित्र भाव। इस भाव से सूरदास ने कृष्ण–लीला का विस्तार से गायन किया है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे।

लीला गायन : कृष्ण की लीलाओं के गायन में सूरदास ने भागवत पुराण की कथा को ही आधार बनाया है। लेकिन इसे भागवत का अनुवाद नहीं कहा जा सकता। इसमें कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। लीला–गायन को भी अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें पहला है कृष्ण के बाल सौंदर्य और उनकी शिशु–क्रीड़ाओं का वर्णन, दूसरा है, किशोर कृष्ण का नटखटपन और तीसरा है, ग्वाल–बाल और गोपियों के साथ नोंक–झोंक और छेड़–छाड़ का वर्णन।

कृष्ण के बाल रूप का चित्रण करते हुए सूरदास ने उनके पालने (झूले) से लेकर आंगन में विचरने, घर की देहरी लांघने तक की क्रीड़ाओं का अत्यंत विशद और विस्तृत वर्णन किया है। बाल जीवन की जितनी मनोदशाएँ हो सकती हैं, उसकी जितनी आकर्षक क्रियाएँ हो सकती हैं, सबका अत्यंत सहज–स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में सूरदास को अद्‌भुत सफलता मिली है। इन वर्णनों की मार्मिकता को देखकर बाद के काव्यशास्त्रियों ने वात्सल्य को (बच्चों के प्रति प्रेम भाव को) एक नया रस स्वीकार किया है। कृष्ण की किशोरावस्था के चित्रण में सूरदास ने उनके गाय चराने, ग्वाल–बालों के साथ खेलने, उनसे झगड़ने, माँ यशोदा से उनकी शिकायत करने से लेकर मक्खन, दही आदि की चोरी का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया है। इसी क्रम में राधा और ब्रज की गोपियों के साथ उनकी ताक–झाँक, नोक–झोंक और तकरार भी आरंभ हो जाती है, जो आगे चलकर प्रगाढ़ प्रेम में बदल जाती है। इन सबका अत्यंत विस्तृत चित्रण सूरदास ने अत्यंत कौशल के साथ किया है।

शृंगार चित्रण : कृष्ण और गोपियों के बीच गहन परिचय आगे चलकर प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। वस्तुतः सूरदास का शृंगार चित्रण भी एक प्रकार से कृष्ण

लीला का ही एक विशिष्ट अंग है। इसमें यमुना–स्नान में चीरहरण, वंशी–वादन, दान–लीला, मान– लीला, रास–लीला आदि के माध्यम से कृष्ण का राधा और गोपियों के प्रति प्रेम का चित्रण हुआ है। यह प्रेम लोक–लाज और पारिवारिक मर्यादा की अवहेलना करते हुए स्वच्छंदता का परिचय देता है। इसमें मिलन के अत्यंत स्पष्ट वास्तविक रूपों के बावजूद कहीं माँसलता और अश्लीलता का भाव पाठक में नहीं आने पाता है। अलौकिक प्रेम के रूप में इसको सूरदास ने एक नई मर्यादा प्रदान की है।

श्रृंगार के संयोग पक्ष के चित्रण की भाँति ही उसके वियोग पक्ष के चित्रण में भी सूरदास को पूरी सफलता मिली है। इसके लिए उन्होंने भ्रमरगीर प्रसंग का आयोजन किया है, जो हिंदी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि मानी है। वियोग–वर्णन की दृष्टि से 'भ्रमरगीत' की मार्मिकता का उद्‌घाटन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'वियोग की जितनी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे सब सूरदास के काव्य में मौजूद हैं।' (त्रिवेणी, 59) वियोग की इस गंभीरता का वास्तविक कारण है, एक लम्बा साहचर्यजन्य प्रेम। एक लम्बे समय की जान–पहचान से उत्पन्न प्रेम जिस प्रकार संयोग काल में हर सीमा को तोड़ देता है, उसी प्रकार वियोग–काल में प्राणान्तक भी सिद्ध होता है। इस दशा को सूरदास ने अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

वियोग–वर्णन के साथ ही सूरदास के 'भ्रमरगीत' का एक दूसरा भी महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके माध्यम से सूरदास ने उद्धव को निर्गुण ज्ञानमार्ग का प्रतिनिधि बनाकर निर्गुण का खंडन और सगुण का मण्डन भी कुशलतापूर्वक किया है। गोपियों के पास पहुँच कर जब उद्धव ज्ञान का संदेश देना शुरू करते हैं तभी एक भँवरा वहाँ मंडराता हुआ आता है। गोपियाँ उस भँवरे को संबोधित कर उद्धव पर टीका–टिप्पणी करती हैं। इस प्रक्रिया में वे ज्ञान को निर्गुण और निराधार बताते हुए अपने लिए निरर्थक और व्यर्थ सिद्ध करती हैं। गोपियों के हृदय का निश्छल प्रेम उनकी ग्रामीण सहज प्रकृति के साथ मिलकर एक तरफ गंभीरता का परिचय देता है, तो दूसरी तरफ अपने चुटीले व्यंग्य के कारण हास्य और विनोद की सृष्टि भी करती है। उनका सहज–सरल तर्क है कि 'लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटै' जो उद्धव को निरुत्तर कर उनके ज्ञान–गर्व को चूर कर देता है। इससे स्पष्ट है कि भ्रमरगीत प्रसंग की योजना के माध्यम से सूरदास ने एक ओर गोपियों की विरह–व्यथा का मार्मिक चित्र प्रस्तत किया है तो दूसरी ओर कबीर आदि के निर्गुण ज्ञान मार्ग का खण्डन करते हुए अपने सगुणोपासना के मार्ग का औचित्य भी सिद्ध किया है।

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सूरदास सख्य भाव के उपासक थे, जिसके लिए उन्होंने कृष्ण लीला का गायन किया है। कृष्ण के वात्सल्य और श्रृंगार के चित्रण में भी वे अपने सख्य भाव की उपासना का ही परिचय देते हैं।

6.2.3 संरचना शिल्प

आपने सूरदास के भाव–वैभव और उनकी सहज भक्ति भावना पर विचार कर लिया है। यहाँ आप उनके संरचना–शिल्प की विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस संबंध में आपको ध्यान में रखना होगा कि सूरदास ब्रजभाषा के पहले कवि हैं, बावजूद इसके उनके काव्य में ब्रजभाषा की अभिव्यक्ति क्षमता और शैली का चरमोत्कर्ष दिखाई

देता है। इस तथ्य को हम उनकी भाषा और शैली की विशेषताओं पर अलग–अलग विचार करके अच्छी तरह समझ सकते हैं।

भाषा : सूरदास की संपूर्ण काव्य–रचना ब्रजभाषा में हुई है। ब्रजभाषा की स्वाभाविक कोमलता में उन्होंने तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों के समुचित मिश्रण द्वारा और अधिक वृद्धि की है। ग्राम संस्कृति में प्रचलित शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के कुशल प्रयोग द्वारा उन्होंने ब्रज के जीवन की लोकोन्मुख संस्कृति को अत्यंत कुशलता से चित्रित किया है। अभिधा के साथ ही उसकी लक्षणा और व्यंजना जैसी शब्द–शक्तियों का सहज प्रयोग कर ब्रजभाषा जैसी एक सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली को उन्होंने आने वाली कवि पीढ़ियों के लिए काव्य–भाषा का गौरव प्रदान किया। सूर के बाद तुलसीदास को छोड़कर लगभग चार सौ वर्षों तक बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि में प्रायः ब्रजभाषा को ही काव्य–भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। भाषा की दृष्टि से हिंदी कविता के लिए सूरदास का यह महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

शैली : काव्य–रूप की दृष्टि से समस्त सूर–काव्य गीति–शैली में लिखा गया है। उनके अधिकांश पद भारत में प्रचलित विभिन्न राग–रागनियों पर आधारित हैं। लय, तुक और टेक के सहारे सूरदास ने कुशल शब्द–विन्यास और कोमलकांत मधुर शब्दावली द्वारा अपने पदों में अद्भुत गेयता का समावेश किया है। फलस्वरूप भारत के शास्त्रीय संगीत में सूर–संगीत को आज सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

संगीतात्मकता के साथ ही सूरदास ने वाक् चातुर्य (वाणी का चतुराईपूर्ण प्रयोग) द्वारा अपनी शैली को अत्यंत प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है। इस प्रकार की कथन प्रणाली के माध्यम से बार–बार दोहराए जाने वाले प्रसंगों और भावों को उन्होंने नवीनता प्रदान की है। वाक् चातुर्य के साथ ही सूरदास का अलंकार विधान भी अत्यंत स्वाभाविक और उच्च कोटि का है। गंभीर मनोदशाओं, विशेष रूप से सौंदर्य के चित्रण में उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक आदि अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। सूरदास का अलंकार–विधान चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर कथ्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए हुआ है।

सूरदास के संरचना–शिल्प की, उनकी भाषा और शैली की संपूर्ण विशेषताओं को अत्यंत संक्षेप में रेखांकित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकारशास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे–पीछे दौड़ता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। संगीत के प्रवाह में कवि स्वयं बह जाता है। वह अपने को भूल जाता है। काव्य में इस तन्मयता के साथ इस शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह विरल है। पद–पद पर मिलने वाले अलंकारों को देखकर भी कोई अनुमान नहीं लगा सकता कि कवि जान–बूझकर अलंकारों का प्रयोग कर रहा है। पन्ने–पर–पन्ने पढ़ जाइए, केवल उपमाओं और रूपकों की छटा, अन्योक्तियों की ठाट, लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार – यहाँ तक कि एक ही चीज, दो–दो, चार–चार, दस–दस बार तक दुहराई जाती है, फिर भी स्वाभाविक और सहज प्रवाह कहीं आहत नहीं हुआ है।' (हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास, पृ.114) इस प्रकार सूरदास ब्रजभाषा के मध्यकालीन कवियों में काव्यगत संरचना–शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ कवि सिद्ध होते हैं।

6.2.4 प्रतिपाद्य

सूरदास भक्तिकाल की कृष्णोपासक सगुण काव्य–धारा के प्रतिनिधि भक्त कवि थे। अपनी सख्य भक्ति की भावना की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कृष्ण–लीला के गायन को अपने काम का प्रमुख प्रतिपाद्य बनाया था। कृष्ण के सगुण–साकार रूप की प्रतिष्ठा के लिए उन्हें ब्रह्म के निर्गुण–निराकार रूप का खण्डन भी करना पड़ा है। अतः ब्रह्म के स्वरूप–ज्ञान की अपेक्षा उन्होंने उससे प्रेम को अधिक महत्व दिया है। यह प्रेम भाव भक्त और भगवान के छोटे–बड़े या ऊँच–नीच की भावना पर आधारित न होकर सख्य भाव अर्थात् सखा या मित्र–भाव, बराबरी के भाव पर आधारित है। पूर्ण तल्लीनता के साथ इसे ही सूरदास ने अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया है।

कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को अपनी भक्ति भावना का प्रतिपाद्य बनाकर प्रत्यक्ष और परोक्ष – दोनों रूपों में कृष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाना भी सूरदास का उद्देश्य रहा है। फलस्वरूप कृष्ण के लोकरंजक रूप को लोगों के सामने प्रस्तुत कर कवि ने भारतीय जनता के बीच कृष्ण भक्ति का प्रचार–प्रसार भी किया है। कृष्ण से संबंधित दान लीला, मान लीला, रास लीला, चीर हरण, कुंज मिलन आदि सरस प्रसंगों और झाँकियों द्वारा सूरदास ने समस्त उत्तर भारत के साथ ही बंगाल तक कृष्ण के लोकरंजनकारी रूप को व्यापक बनाया है। इसे उनके काव्य का एक गौण प्रतिपाद्य स्वीकार किया जा सकता है।

6.2.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने सूरदास द्वारा रचित उपर्युक्त तीन पदों का वाचन और सूरदास के काव्य की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा। सूरदास के साहित्य को किस तरह पढ़ा जाना चाहिए और उसकी व्याख्या कैसी करनी चाहिए, इसके लिए हम उपर्युक्त तीन पदों में से एक पद की व्याख्या यहाँ दे रहे हैं। इसकी सहायता से आप अन्य पदों की व्याख्या भी कर सकते हैं।

पद : निरगुन कौन देस को बासी।

संदर्भ : यह महाकवि सूरदास द्वारा लिखा हुआ पद है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियाँ उनके विरह में व्याकुल रहती हैं। कृष्ण के मित्र उद्धव गोपियों को समझाने वृंदावन आते हैं और उन्हें निर्गुण–निराकार ईश्वर में विश्वास करने का उपदेश देते हैं। गोपियाँ उद्धव के मत का विरोध करती हैं और अपना पक्ष प्रस्तुत करती हैं। इसके लिए वे उद्धव को मधुकर (भ्रमर) कहकर संबोधित करती हैं।

व्याख्या : गोपियाँ उद्धव को संबोधित करते हुए कहती हैं, हे मधुकर अर्थात् उद्धव, तुम हमें समझाकर कहो कि निर्गुण किस देश का रहने वाला है। हम सौगंध देकर तुमसे सच–सच पूछ रही हैं, कोई हँसी नहीं कर रही हैं। हमें यह बताओ कि उस निर्गुण के माता–पिता कौन हैं, निर्गुण की पत्नी कौन हैं और उनकी दासी कौन हैं? उनका रंग कैसा है अर्थात् काले हैं या गोरे उनकी वेशभूषा कैसी है अर्थात् वे किस तरह के वस्त्र धारण करते हैं और किस तरह के रस (आनंद) के वे इच्छुक हैं। गोपियाँ उद्धव को चेतावनी–सी देती हुई कहती हैं कि अगर तुमने कपटपूर्ण बात की अर्थात् तुम झूठ बोलोगे तो तुम्हें ही अपनी गलत करनी (कर्म) का फलभुगतना पड़ेगा। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव गोपियों की ये बातें सुनकर चुप हो गए और ठगे रह गए, उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो गई अर्थात् उनको कोई उत्तर नहीं सूझा।

विशेषः

1) सूरदास का यह पद अत्यंत महत्वपूर्ण है। निर्गुण मत के विरुद्ध गोपियों का पक्ष यहाँ प्रस्तुत किया गया है। लेकिन गोपियों के तर्कों में बौद्धिक चतुराई और दार्शनिक जटिलता नहीं है। इन पंक्तियों से गोपियों की विनोद–वृत्ति, भोलापन, चपलता और सहज बुद्धि का पता चलता है।

2) यह पद ब्रजभाषा में है। इसकी भाषा परिमार्जित, सहज और स्वाभाविक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ देशज शब्दों (गाँसी, बूझति) का भी प्रयोग हुआ है। ठगा–सा रहना मुहावरा है। 'मधुकर' में श्लेष अलंकार है। श्लेष अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक ही शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ मधुकर का एक अर्थ भँवरा है। दूसरा अर्थ उद्धव है, क्योंकि उद्धव भी काले थे इसलिए गोपियाँ उद्धव को मधुकर कह कर संबोधित करती हैं।

3) इस पद में कबीर आदि के निर्गुण मत का खण्डन और अपने सगुण मत का समर्थन भी अत्यंत कौशल के साथ व्यक्त हुआ है।

अभ्यास

1) नीचे व्याख्या के लिए कुछ पंक्तियाँ दी गई हैं। रिक्त स्थानों में अत्यंत संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

क) बहिरौ सुने गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।

.....

.....

ख) चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।

.....

.....

ग) धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।

.....

.....

2) नीचे दी गई पंक्तियों की शिल्पगत विशेषताएँ बताइए।

क) चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।

लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।।

.....

.....

ख) सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सो सूर सबै मति नासी।

.....

.....

.....

बोध प्रश्न

1) नीचे दिए गए वाक्यांशों को व्यक्त करने वाले सही शब्द बताइए।

   क) ईश्वर के प्रति प्रेम की अनुभूति (श्रृंगार / भक्ति)

   ख) ईश्वर को निराकार मानना (निर्गुण मार्ग / सगुण मार्ग)

   ग) लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति का काव्य (ज्ञानमार्गी काव्य / प्रेममार्गी काव्य)

2) दैन्य भाव की भक्ति का तात्पर्य क्या है, दो पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

3) सूरदास के काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य बताइए।

.....

.....

4) सूरदास की काव्यभाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

5) सूरदास की शैली संबंधी दो विशेषताओं का उल्लेख दो पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

6.3 तुलसीदास

रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास भक्ति काव्य की सगुण काव्यधारा के दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं। उन्होंने मुख्यतः रामचरित को ही अपने काव्य का विषय बनाया था, इसलिए उन्हें रामोपासक कवि कहा जाता है।

जीवन परिचय : सूरदास की तरह तुलसीदास के जीवन–वृत्त को लेकर भी विवाद है। तुलसीदास का जन्म सन् 1532 में हुआ था। जन्म स्थान राजापुर (उत्तर प्रदेश) बताया जाता है। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना 1575 के आसपास की थी। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी बताया जाता है। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली था। सन् 1623 में उनका देहावसान हो गया था।

रचनाएँ : तुलसीदास को ख्याति दिलाने वाली प्रमुख रचना 'रामचरित मानस' है। राम की कथा पर आधारित यह महाकाव्य उन्होंने अवधी भाषा में रचा था। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने कई काव्य–ग्रंथों की रचना की। तुलसीदास ने उस समय की दोनों प्रमुख साहित्यिक भाषाओं अवधी और ब्रज में काव्य रचना की थी। उन्होंने उस समय प्रचलित प्रायः सभी शैलियों में काव्य लिखा। उनके द्वारा रचे गए ग्रंथ हैं – रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू, बरवै रामयण, दोहावली, वैराग्य संदीपनी, हनुमान बाहुक एवं रामाज्ञा प्रश्न।

पृष्ठभूमि : तुलसीदास सगुणमार्गी थे। उन्होंने राम के जीवन चरित को काव्य का आधार बनाया और उनकी लोक–लीलाओं का गायन किया। उनकी भक्ति सेवक–सेव्य भाव पर आधारित थी। उन्होंने अपने को राम का सेवक समझा और राम को अपना स्वामी। तुलसीदास ने अपने काव्य द्वारा लोकमंगल की भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की। उनका विश्वास था कि जब–जब धर्म का ह्रास होता है और पाप बढ़ता है, सज्जन कष्ट उठाते हैं और दुष्टों का अनाचार बढ़ता है, तब–तब भगवान मनुष्य रूप धारण करते हैं और अपनी लीला द्वारा धर्म की रक्षा और पाप का अंत करते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर रामकथा पर आधारित काव्य ग्रंथों की रचना की और अपनी मुक्ति के साथ ही लोकमंगल की कामना करते हुए विनय पत्रिका लिखी।

6.3.1 काव्य–वाचन

रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास की ख्याति का आधार है, रामचरित मानस। इस महाकाव्य में राम की कथा प्रस्तुत की गई है। राम–जन्म से लेकर राम के राज्य–तिलक तक की कथा को सात कांडों (खंडों) में विभाजित किया गया है। रामचरित मानस की रचना दोहा–चौपाई छंद में हुई है, जिसकी भाषा अवधी है। इसका पहला कांड, बालकांड है। तुलसीदास ने इसके आरंभ में विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुति की है। इसके बाद उन्होंने काव्य संबंधी अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है, जिसका एक अंश नीचे दिया जा रहा है –

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। **अहि**[1] गिरि गज सिर सोह न तैसी।।
नृप **किरीट**[2] तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।।
भगति हेतु **बिधि**[3] भवन बिहाई। सुमिरत **सारद**[4] आवति धाई।
रामचरित सर बिनु अन्हवायें। सो श्रम जाइ न कोटि उपायें।।
कवि **कोबिद**[5] अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस **कलिमलहारी**[6]।।
कीन्हें प्राकृत **जन**[7] गुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि **पछिताना**[8]।।
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।
जो बरषै बर **बारि**[9] बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू।।
जुगुति बेधि पुनि **पोहिंअहिं**[10] राम चरित बर **ताग**[11]।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग।।

1) साँप 2) मुकुट 3) ब्रह्मा 4) सरस्वती 5) पंडित 6) कलियुग रूपी मौत को हरने वाले 7) राजा–महाराजा 8) सरस्वती 9) पानी 10) पिरोया जाना 11) धागा।

विनय पत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की थी। 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास ने अपने दैन्य भाव को व्यक्त किया है। ईश्वर दयालु है, वह पापियों का उद्धार करने वाला है। मुझ–सा कोई पापी नहीं है, इसलिए हे प्रभु तू मेरा उद्धार कर। यही भाव विनय पत्रिका में व्यक्त हुआ है। यहाँ विनय पत्रिका का एक पद वाचन के लिए दिया गया है:

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ–कृपाल–कृपा तें संत–सुभाव गहौंगे।। 1 ।।
जथालाभ संतोष सदा काहू सों कुछ न चहौंगो
परहित–निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो।।2।।

परुष[1] बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो
विगतमान[2] सम सीतल मन, परगुन, नहिं दोष कहौंगे।।3।।
परिहरि[3] देह जनित चिंता, दुख–सुख समबुद्धि सहौंगे
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अवचिल हरि भक्ति लहौंगो।।4।।

1) कठोर 2) मान का त्याग 3) छोड़ कर

गीतावली : 'गीतावली' की रचना तुलसीदास ने ब्रजभाषा में की है। यह सूरसागर की तरह गीति–काव्य है। इसमें तुलसीदास ने राम चरित से संबंधित विभिन्न मार्मिक प्रसंगों पर गीतों की रचना की है। राम कथा का एक महत्वपूर्ण प्रसंग है – युद्ध के दौरान मेघनाद के बाण से लक्ष्मण का घायल होना और लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम का विलाप करना। इस प्रसंग से संबंधित 'गीतावली' का एक पद वाचन के लिए दिया जा रहा है :

मेरो सब पुरुषारथ **थाको**[1]।
बिपति बँटावन बंधु–बाहु बिनु करौं भरोसो **काको**[2]।।1।।
सुनु सुग्रीव **साँचेहु**[3] मोपर फेर्यो बदन बिधाता
ऐसे समय समर–सङ्कट हौं तज्यो लषन–सो भ्राता।।2।।
गिरि, कानन जैहैं **साखामृग**[4] **हौं पुनि अनुज–संघाती**[5]
ह्वैहै, कहा विभीषन की गति रही सोच भरि छाती।।3।।
तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु–कपि सकल बिकल हिय हारे
जामवंत हनुमंत बोलि तब, औसर जानि प्रचारे।।4।।

1) थक गया 2) किसका 3) सचमुच 4) वानर 5) छोटे भाई का हत्यारा

6.3.2 भाव पक्ष

गोस्वामी तुलसीदास सिर्फ कवि नहीं थे। वे काव्य की रचना का उद्देश्य मनोरंजन को नहीं समझते थे। उनके विचार में वही कविता श्रेष्ठ होती है जिससे राम के निर्मल चरित्र का गुणगान किया गया हो। उनकी दृष्टि से राम परंब्रह्म थे जिन्होंने धर्म की रक्षा और असुरों का नाश करने के लिए नर रूप में अवतार लिया था।

राम–कथा का प्रणयन : तुलसीदास ने रामकथा का प्रणयन इसी भावना से किया है। उन्होंने राम के चरित्र को काव्य–ग्रंथों में प्रस्तुत किया है। रामचरित मानस महाकव्य है, जिसमें राम के जन्म से राम–राज्य तक की कथा कही गई है। तुलसी के राम, भक्ति के आधार हैं। रामचरित मानस में तुलसीदास की लोक–मंगल की भावना भी व्यक्त हुई है। उत्तरकांड में उन्होंने राम–राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार राम–राज्य में किसी को कोई शारीरिक, भौतिक और दैवीय कष्ट नहीं था। सभी अपने–अपने धर्म का पालन करते थे और सुख से रहते थे।

तुलसी के काव्योत्कर्ष का पता उन स्थलों पर लगता है, जो अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्त ने राम–कथा के निम्नलिखित मर्मस्पर्शी स्थल बताए हैं– राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। तुलसी ने इन प्रसंगों का अत्यंत भाव–प्रवण चित्रण किया है। विशेषतः 'गीतावली' और 'कवितावली' में ये प्रसंग अत्यंत सहृदयता के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

तुलसी ने राम–कथा के माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक संबंधों का आदर्श रूप भी प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा चित्रित भाई–भाई, पिता–पुत्र, माता–पुत्र, राजा–प्रजा, स्वामी–सेवक आदि विभिन्न संबंधों के परिप्रेक्ष्य में मानवीय भावना और कर्तव्यों की उत्कृष्टता देखी जा सकती है। इस दृष्टि से तुलसी के राम स्नेह, शील, नीति और त्याग के मूर्तिमान रूप हैं। 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने अपनी लोक मंगल की भावना को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

विनय भावना : भक्ति का एक प्रमुख तत्व है – ईश्वर की सामर्थ्य शक्ति का अनुभव। भक्त यह मानता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, सामर्थ्यवान–दयालु है, करुणा का सागर है। दूसरी ओर, भक्त अपनी दीनता और लघुता का बोध भी करता है। वह इसी दैन्य भाव से प्रेरित होकर ईश्वर से अपनी मुक्ति की प्रार्थना करता है। तुलसी की 'विनय पत्रिका' में भक्ति की इन्हीं भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है। तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' में राम के शील सौंदर्य और शक्ति का भी चित्रण किया है। उन्होंने अत्यंत करुण स्वर में अपनी लघुता और दीनता को भी व्यक्त किया है तथा राम से प्रार्थना की है कि मुझे इस पाप सागर से उबार लें।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी
ब्रह्म तू, हौं जीवन, तू ठाकुर, हौं चेरो
तात मात सखा गुरु तू, सब विधि हितु मेरो

'विनय पत्रिका' की रचना तुलसीदास ने एक प्रार्थना–पत्र या अर्जी के रूप में की है। इसमें अपने दुखों के साथ ही उन्होंने समाज में व्याप्त दुखों को दूर करने के लिए भगवान से निवेदन किया है। इसलिए इसमें तुलसीदास की भक्ति के साथ ही उनकी लोक–मंगल की कामना भी व्यक्त हुई है।

6.3.3 संरचना शिल्प

भक्त कवियों में तुलसीदास जैसी काव्य–प्रतिभा शायद किसी में नहीं थी। उन्होंने उस समय प्रचलित काव्य भाषाओं, छंदों और काव्य–रूपों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। भाषा और शैली, दोनों दृष्टियों से उनका काव्य अत्यंत उत्कृष्ट कोटि का है।

काव्य–रूप और शैली : गोस्वामी तुलसीदास ने उस समय प्रचलित प्रायः सभी काव्य–रूपों का प्रयोग किया है। 'रामचरित मानस' की रचना उन्होंने दोहा–चौपाई छंद में की है, जिसमें जायसी ने 'पद्मावत' की रचना की थी। कबीर के दोहे और पद शैली में 'दोहावली' और 'विनय पत्रिका', सूरदास और विद्यापति की लीला–गान विषयक गीति शैली में 'गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली', गंग आदि भाट कवियों की 'सवैया', 'कवित्त' शैली में 'कवितावली', रहीम की बरवै शैली में 'बरवै रामायण' की रचना कर तुलसीदास ने अपनी काव्य–रूप संबंधी निपुणता का परिचय दिया है। तुलसीदास ने शादी–विवाह आदि मंगल–अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों की शैली में 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' और 'रामलला नहछू' की रचना भी की। उन्होंने उन दिनों जनता में प्रचलित सोहर, नहछू, गीत, चांचर, बेली, बसंत आदि रागों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

काव्य भाषा : तुलसीदास के युग में ब्रज और अवधी, दोनों का काव्य–रचना के लिए प्रयोग होता था। जायसी ने 'पदमावत' की रचना अवधी में की थी और सूरदास ने

'सूरसागर' ब्रजभाषा में लिखा था। तुलसी ने अवधी और ब्रज, दोनों भाषाओं का उपयोग किया। 'रामचरित मानस' की रचना उन्होंने अवधी में की थी। 'गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली' की रचना उन्होंने ब्रजभाषा में की। 'कवितावली', 'दोहावली', 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण', 'रामलला नहछू' में ठेठ अवधी की मिठास है। 'विनय पत्रिका' की भाषा यद्यपि ब्रज है, लेकिन उस पर अवधी का भी असर है। तुलसी की भाषा की विशेषता यह है कि वह विषयानुकूल रूप धारण कर लेती है। 'रामचरित मानस' की भाषा प्रसंगों और चरित्रों के अनुसार परिवर्तित होती है। जहाँ आवश्यक होता है वहाँ वे तत्सम या तद्भव या लोकोक्ति मुहावरों आदि का प्रयोग करते हैं। तुलसीदास की भाषागत विशेषताओं को रेखांकित करने वाली एक मान्यता है –

तुलसी गंग दुवौ भये सुकबिन में सरदार।

जिनकी रचना में मिलै भाषा विविध प्रकार।।

अलंकार विधान : तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अलंकारों का अत्यंत सधा हुआ प्रयोग किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि साम्यमूलक अलंकारों के प्रयोग में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। उन्हें रूपक–सम्राट के सम्मान से सम्मानित किया जाता है। सांगरूपकों के अत्यधिक लम्बे प्रयोग में पूरे हिंदी काव्य–जगत में तुलसीदास अद्वितीय हैं। 'रामचरित मानस' में कविता–सरिता, आश्रम–सागर, भक्ति चिंतामणि–ज्ञानदीपक जैसे लम्बे सांग रूपकों की सटीक और कुशल योजना समूचे भारतीय काव्य में अप्राप्य है।

6.3.4 प्रतिपाद्य

'रामचरित मानस' में अपने प्रतिपाद्य का उल्लेख करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है

यहि मँह आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

अर्थात् तुलसीदास का उद्देश्य अपने प्रभु राम की भगवत्ता या उनके ब्रह्मत्व को प्रतिपादित करना था। अपनी समस्त रचनाओं में उन्होंने इस कार्य को अत्यंत सफलतापूर्वक संपादित किया है। लेकिन इस प्रतिपाद्य के पीछे उनकी लोकमंगल की प्रबल आकांक्षा निहित थी। 'रामचरित' के माध्यम से उन्होंने समाज और धर्म के क्षेत्र में फैली विषमताओं के बीच समन्वय करने का प्रयास किया। उनकी समन्वय की विराट योजना के कारण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें लोकनायक के पद से अलंकृत किया। अतःतुलसीदास द्वारा राम की भगवत्ता का प्रतिपादन राम–भक्ति के प्रचार–प्रसार के साथ ही लोकमंगल की भावना से प्रेरित है। इस महान लक्ष्य को ही उन्होंने अपना काव्यादर्श निर्धारित किया था –

कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहुँ हित होई।

अर्थात् यश (कीरति), कविता (भनिति), ऐश्वर्य (भूति) तभी अच्छा होता है जब वह गंगा (सुरसरि) के समान सबके लिए हितकारी हो। तुलसीदास का यह आदर्श भी उनके प्रतिपाद्य से ही जुड़ा हुआ है।

6.3.5 संदर्भ सहित व्याख्या

आपने तुलसीदास द्वारा रचित काव्य का वाचन और उनके काव्य की विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा। तुलसीदास के काव्य की व्याख्या कैसी करनी चाहिए इसके लिए हम 'विनय पत्रिका' के पद की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। आप अन्य अंशों की व्याख्या स्वयं करने का प्रयास कीजिए।

पद : कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

संदर्भ : यह गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखा हुआ पद है जो 'विनय पत्रिका' से उद्धृत किया गया है। इस पद में तुलसीदास ने इस प्रकार का जीवन जीने की कामना की है, जब वे श्री राम की कृपा से पूरी तरह संत का स्वभाव प्राप्त करेंगे।

व्याख्या : तुलसीदास कहते हैं कि क्या मैं ऐसा जीवन–यापन कर सकूँगा, क्या मैं कृपालु श्री रघुनाथजी की कृपा से संतों जैसा स्वभाव प्राप्त कर सकूँगा। क्या मुझे जो भी प्राप्त होगा, उसी से हमेशा संतुष्ट रहूँगा। किसी से भी किसी तरह की इच्छा नहीं रखूँगा। क्या मैं सदा दूसरों का हित करता रहूँगा? क्या मैं मन, वचन और कर्म से नियमों का पालन करूँगा। क्या मेरा ऐसा स्वभाव बन सकेगा कि मैं दूसरों के कठोर वचन सुनकर उसकी आग में नहीं जलूँगा। किसी से सम्मान पाने की इच्छा तो नहीं करूँगा। क्या अपने मन को मान अपमान से परे रहकर एक–सा और शीतल रख सकूँगा। हमेशा दूसरे के गुण ही देखूँगा और दोष नहीं कहूँगा। शारीरिक चिंताएँ छोड़कर सुख और दुख, दोनों को समान बुद्धि से सहूँगा और उनमें कोई भेद नहीं मानूँगा। तुलसीदास कहते हैं कि हे प्रभु! क्या मैं इस मार्ग पर चलकर हरि की भक्ति में अडिग रह सकूँगा?

विशेष :

1) इस पद में तुलसीदास ने ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और संतों जैसा जीवन जीने की इच्छा व्यक्त की है।

2) 'पर हित निरत निरंतर' में लोक–मंगल की भावना व्यक्त हुई है।

3) भावों की अभिव्यक्ति अत्यंत सहज एवं सरल है। उपर्युक्त आधार पर आप स्वयं तुलसीदास के अन्य काव्यांशों को समझने और उनकी व्याख्या करने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न

आपने तुलसीदास के काव्य का अध्ययन किया है। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :

5) 'मुझ सा कोई पापी नहीं, इसलिए हे प्रभु तू मेरा उद्धार कर।' इस कथन के संदर्भ में तुलसीदास के काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता बताइए।

   क) लोकरंजन

   ख) लोकमंगल

ग) विनय भावना

घ) भक्ति भावना ( )

6) 'रामरचित मानस' की रचना मुख्यतः निम्नलिखित छंदों में हुई।

क) दोहा–चौपाई

ख) कवित्त–सवैये

ग) वार्णिक छंद

घ) मुक्त छंद ( )

7) तुलसीदास किस भाव के उपासक थे?

क) दाम्पत्य भाव

ख) सख्य भाव

ग) निर्गुण भाव

घ) सेवक–सेव्य भाव ( )

8) क) तुलसीदास की दृष्टि में राम के अवतार का क्या कारण था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) तुलसीदास के 'रामराज्य' की विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ग) तुलसीदास की काव्य–भाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

घ) तुलसीदास की रूपक योजना की विशेषता दो पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

अभ्यास

3) 'कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहुँ हित होई।।' इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 मैथिलीशरण गुप्त

आधुनिक हिंदी काव्य : आधुनिक हिंदी काव्य की शुरुआत 19वीं सदी के अंतिम दशकों में हुई। आधुनिक काल से पहले हिंदी में कविता ब्रज, अवधी, राजस्थानी आदि बोलियों में होती थी, किंतु गद्य की तरह पद्य की भाषा भी आधुनिक युग में खड़ी बोली हो गई थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1885) के समय तक काव्य की भाषा प्रायः ब्रज ही बनी रही, किंतु उसके बाद धीरे–धीरे ब्रज का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। बीसवीं सदी की शुरुआत के आसपास हिंदी काव्य की जिस प्रवृत्ति का उदय हुआ, वह मध्ययुगीन हिंदी कविता से भाषा और शिल्प का दृष्टि से ही नहीं भाव और विचार की दृष्टि से भी काफी भिन्न थी। इस दौर की कविता में राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार के स्वर प्रमुख थे। इन्हीं से प्रेरित होकर इस दौर के कवियों ने काव्य रचना की थी। इनमें मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख थे।

जीवन परिचय एवं रचनाएँ : मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त, 1886 को चिरगांव, झाँसी में हुआ था। आरंभ से ही उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 1912 में 'भारत भारती' नामक काव्य की रचना की जो उस समय अत्यंत लोकप्रिय हुई। मैथिलीशरण गुप्त मानवतावादी कवि थे और इस दृष्टि से उन्होंने महान भारतीय चरित्रों को लेकर महाकाव्यों की रचना की जिनमें राम–कथा पर आधारित 'साकेत' और 'बुद्ध' के जीवन पर आधारित 'यशोधरा' अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त, उन्होंने कई प्रबंध और मुक्तक काव्य लिखे जिनमें 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'द्वापर', 'जयभारत' आदि प्रमुख हैं। मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र–कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई और वे राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत किए गए थे। सन 1964 में चिरगांव में ही उनका देहावसान हुआ।

6.4.1 काव्य–वाचन

श्री मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य 'साकेत' उनकी प्रसिद्ध रचना है। गुप्तजी ने 'साकेत' में राम–कथा को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया है। साकेत के नवें सर्ग में उन्होंने लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की विरह–जन्य पीड़ा को गीतात्मक अभिव्यक्ति दी है।

इस सर्ग की रचना उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से प्रेरित होकर की है। हम यहाँ वाचन के लिए इस सर्ग के कुछ अंश नीचे दे रहे हैं।

सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है।
सीस हिलाकर दीपक कहता –
"बंधु! वृथा ही तू क्यों दहता?"
पर पतंग पड़कर ही रहता!
कितनी विह्वलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बचकर हाय! पतंग मरे क्या?
प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या?
जले नहीं तो मरा करे क्या?
क्या यह असफलता है?
दोनों और प्रेम पलता है।
कहता है पतंग मन मारे –
तुम महान, मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे?
शरण किसे छलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
दीपक के जलने में **आली**[1]
फिर भी है जीवन की लाली
किंतु पतंग–भाग्य–लिपि काली
किसका वश चलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
जगती, **वाणिग्वृत्ति**[2] है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती,
काम नहीं, परिणाम निरखती
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

नवम सर्ग का एक और अंश, जिसमें उर्मिला की विरह वेदना व्यक्त हुई है देखिए –

सखि, **नीलनभस्सर**[3] में उतरा
यह **हंस**[4] अहा! तिरता तिरता,
अब **तारक–मौक्तिक**[5] शेष नहीं,
निकला जिनको चरता–चरता
अपने **हिम–बिंदु**[6] बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गड़ जायँ न कंटक भूतल के,
कर[7] डाल रहा डरता डरता।

1)सखी 2) व्यापार 3) नीला आकाश रूपी सरोवर 4) सूर्य के प्रतीक के रूप में 5) तारे रूपी मोती 6) ओस की बूंदें 7) हाथ (किरण)

6.4.2 भाव पक्ष

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने जब काव्य रचना आरंभ की, तब भारत पराधीन था। गुप्तजी की पहली काव्य–पुस्तक 'रंग में भंग' 1909 में प्रकाशित हुई थी। उस समय स्वतंत्रता–संघर्ष में जनता की व्यापक भागीदारी बढ़ रही थी। मैथिलीशरण गुप्त पर भी इस संघर्ष का प्रभाव पड़ा। उन्होंने 1912 में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर 'भारत भारती' जैसी अमर रचना दी। यह कृति सिर्फ राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर ही नहीं लिखी गई थी। बल्कि इसके माध्यम से वे जनता में अपने देश, उसकी संस्कृति और महान परंपरा के प्रति गौरव की भावना जगाना चाहते थे। उनमें वर्तमान की दुर्दशा का भी बोध था, इसलिए उन्होंने 'भारत भारती' में जहाँ अतीत का गौरव–गान किया, वहीं वर्तमान दुर्दशा का चित्र खींचते हुए उससे मुक्त होने का आह्वान भी किया था। मैथिलीशरण गुप्त यद्यपि धर्मपरायण व्यक्ति थे, लेकिन उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। उन्होंने प्रबंध काव्यों की रचना के लिए भारतीय इतिहास और पुराणों से कथाएँ और चरित्र लिए, लेकिन उन्हें वर्तमान के मानवीय धरातल पर ही प्रस्तुत किया। मानवीय दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने उर्मिला (लक्ष्मण की पत्नी), और यशोधरा (बुद्ध की पत्नी) की व्यथा को वाणी दी। नारी के प्रति उनमें विशेष सहानुभूति की भावना थी।

गुप्तजी आदर्शवादी थे। उनका आदर्शवाद सामाजिक और पारिवारिक संबंधों में समानता और त्याग की भावना पर टिका हुआ था। उन्होंने धार्मिक असहिष्णुता और साम्प्रदायिकता का सदैव विरोध किया। आस्थावादी होकर भी उनकी दृष्टि इस लोक पर ही टिकी रही। वे अतीत की महान उपलब्धियों के प्रशंसक थे, साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों के आलोचक भी थे। अपने काव्य की इन विशेषताओं के कारण ही वे राष्ट्र–कवि के रूप में मान्य हुए।

'साकेत' उनकी प्रख्यात रचना थी। यद्यपि 'साकेत' का आधार भी राम–कथा है लेकिन उन्होंने राम–कथा के केवल उन्हीं प्रसंगों को लिया है, जिनमें मानवीय संबंधों का उज्ज्वल पक्ष उजागर हो। उन्होंने राम के मानवत्व को 'साकेत' में प्रतिष्ठित किया है। राम–रावण के संघर्ष की कथा की बजाय 'साकेत' में राम कथा का पारिवारिक रूप अधिक उभरा है और यहाँ पर उनकी दृष्टि ऐसी पारिवारिक मर्यादा के पक्ष में रही है जहाँ नारी के सम्मान की पूरी रक्षा हो और उसे किसी भी तरह से लांछित या अधिकार–विहीन न बनाया जाए। उर्मिला के त्याग को इसीलिए वे सीता से बड़ा मानते हैं क्योंकि वह परिवार के लिए अपने वैयक्तिक सुखों (पति के साथ रहने का सुख) का परित्याग कर देती है। 'साकेत' में गुप्तजी ने लोकोन्मुख जीवन के चित्र प्रस्तुत किए हैं।

6.4.3 संरचना शिल्प

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली को उस समय काव्य–भाषा के रूप में प्रयुक्त किया जब हिंदी कविता में ब्रजभाषा का ही जोर था। गुप्तजी का प्रमुख योगदान यह था कि उन्होंने गद्य की भाषा को काव्य की भाषा बनाने का सफल प्रयास किया। हिंदी की सहजता और स्वाभाविकता उनकी काव्य–भाषा की प्रमुख विशेषता है, यद्यपि कहीं–कहीं उनमें गद्यात्मकता की झलक दिखाई दे जाती है। उन्होंने बोलचाल की

भाषा का ही प्रयोग किया है, किंतु तत्सम शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त है। उनका मुख्य झुकाव वस्तु के मूर्त चित्रण की ओर रहा है। द्विवेदी–युगीन व्यावहारिक भाषा के दबाव के कारण उनकी भाषा में वह कलात्मक सौंदर्य नहीं दिखाई देता जो बाद में छायावादी काव्य की विशेषता बनी।

गुप्तजी की प्रवृत्ति प्रबंध काव्य की ओर रही है। 'साकेत' और 'यशोधरा' महाकाव्यात्मक प्रबंध काव्य हैं। लेकिन महाकाव्यों में जो उदात्तता, संघर्ष और वीरोचित नायकत्व होता है, वह उनके महाकाव्यों में नहीं है। प्रबंध काव्य में भी उनकी प्रवृत्ति गीतात्मकता की ओर रही है। उनकी रुचि जीवन के सहज और भाव–प्रवण प्रसंगों की ओर ज़्यादा रही है। ऐसे प्रसंगों में जीवन–संघर्ष का गहन गांभीर्य कम होता है, जो महाकाव्यात्मकता के प्रतिकूल है। गुप्तजी ने काव्य में उन्हीं छंदों का प्रयोग किया जो खड़ी बोली हिंदी की प्रकृति के अनुकूल थे। उनके काव्य में रीतिवादी कवियों की तरह अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह नहीं है, न ही उन्होंने काव्य में चमत्कार पैदा करने की कोशिश की है। इस दृष्टि से भी उनके काव्य में सहजता दिखाई देती है।

6.4.4 प्रतिपाद्य

मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रवादी कवि थे। उनमें साहित्य रचना के पीछे राष्ट्रीय उत्थान की भावना प्रेरक रूप में मौजूद रही है। उन्होंने मध्ययुगीन काव्य–चेतना से मुक्त होते हुए कविता के केंद्र में धर्म की बजाय मानव को स्थापित किया। इसी मानव की सांस्कृतिक चेतना को वे काव्य में उतारना चाहते थे। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति उनके लिए आधार–भूमि का काम करती रही है। भारतीय इतिहास और पुराण कथाओं के विभिन्न चरित्रों के माध्यम से मानवीय संबंधों और मूल्यों को उन्होंने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उन्होंने 'राम' जैसे चरित्र को भी मानवीय धरातल पर उतारकर सहज मानव–संबंधों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। उन्होंने अतीत को अपने काव्य का आधार बनाया, लेकिन अपनी दृष्टि को अतीतोन्मुखी नहीं बनने दिया। उन्हें भारत के उज्ज्वल भविष्य पर गहरा विश्वास था। यह विश्वास उनकी कविताओं में बार–बार व्यक्त हुआ है। अतः नवजागरण के संदर्भ में राष्ट्रीय चेतना का उत्थान उनकी कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य माना जा सकता है।

6.4.5 संदर्भ सहित व्याख्या

मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य 'साकेत' के जो अंश वाचन के लिए दिए गए हैं, वे अत्यंत सरल और सहज ही समझ में आ जाने वाले हैं। आप स्वयं इन अंशों की व्याख्या करने का प्रयास कीजिए। इन अंशों की व्याख्या करने से पूर्व आप संभव हो तो 'साकेत' को पूरा पढ़ जाइए, जिससे आपको इन अंशों का सही संदर्भ मालूम हो जाएगा। फिर भी आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि इन काव्यांशों में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला अपनी विरह–वेदना व्यक्त कर रही हैं। उर्मिला की यह विरह वेदना सामान्य नारी की वेदना बनकर व्यक्त हुई है। ये काव्यांश गीतात्मक हैं और गीतों में रहने वाली भाव–प्रवणता इनमें भी मौजूद है। नारी की विरह भावना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने प्रायः परंपरागत शैली का ही प्रयोग किया है किंतु उसे भी नया रूप और नया अर्थ देने का प्रयास भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, दीपक और पतंग के प्रतीक बहुत पुराने हैं लेकिन यहाँ उर्मिला की विरह को वे एक नया अर्थ देते हैं। उर्मिला अपनी स्थिति को उस पतंग के रूप में देखती है, जिसका जलना अर्थहीन–सा लगता है।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

9) निम्नलिखित में से किस आधार पर गुप्तजी की रचना मध्ययुगीन काव्य से अलग होती है।

   क) उन्होंने काव्य में खड़ी बोली को स्वीकार किया।

   ख) उन्होंने धर्म की बजाय मानव को केंद्र में रखा।

   ग) उन्होंने काव्य में राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत किया।

   घ) उपर्युक्त तीनों आधारों पर। ( )

10) 'भारत–भारती' में किस भावना को केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ है।

   क) धर्म भावना

   ख) मानवीय भावना

   ग) राष्ट्रीय भावना

   घ) भक्ति भावना ( )

11) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

   क) गुप्तजी की अतीत के प्रति क्या दृष्टि थी? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....

   .....

   .....

   ख) 'साकेत' में उर्मिला के चरित्र को इतना महत्व क्यों दिया गया है? तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

   .....

   .....

   .....

   ग) गुप्तजी की काव्य–भाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

   .....

   .....

   .....

6.5 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

छायावाद : आधुनिक हिंदी काव्य–धारा का उत्कर्ष हमें छायावादी काव्य में नजर आता है। हिंदी में छायावादी काव्य का दौर 1917–18 से 1935–36 तक माना जाता है। छायावादी काव्य की राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से प्रेरित था। इस प्रवृत्ति के मूल में स्वतंत्रता की भावना अंतर्निहित थी। न केवल राष्ट्र की स्वतंत्रता, बल्कि रूढियों और गलत मान्यताओं से व्यक्ति की स्वतंत्रता भी इसमें निहित थी। इसलिए छायावादी

काव्य में राष्ट्रीय मुक्ति और वैयक्तिक स्वतंत्रता, दोनों का स्वर प्रमुख रहा है। छायावादी कवियों की उन्मुक्त चेतना प्रकृति से अंत्यत प्रभावित थी, क्योंकि प्रकृति की उन्मुक्तता में उन्हें अपने हृदय की उन्मुक्तता नज़र आती थी। छायावादी कवि के काव्य में भी मानव ही केंद्र में था, लेकिन इन कवियों का ध्यान गरीब, पद–दलित और शोषित सामान्य–जन की ओर भी जा रहा था। छायावादी कवियों ने खड़ी बोली हिंदी को पूरी तरह से काव्य–भाषा के अनुकूल बना लिया। अब वह सिर्फ वस्तु का वर्णन करने वाली भाषा नहीं रह गई थी, वरन् उसमें कल्पना की ऊँची उड़ान, मानसिक अंतर्द्वंद्व और गहन अनुभूति–जन्य जटिल बिंबों को प्रस्तुत किया जा सकता था। छायावादी कवियों ने खड़ी बोली हिंदी का सृजनात्मक संस्कार कर उसे छंद की रूढिबद्धता से मुक्त किया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा छायावाद के प्रमुख कवि हैं। हम यहाँ निराला की एक प्रसिद्ध रचना 'तोड़ती पत्थर' दे रहे हैं।

जीवन परिचय : श्री सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला' का जन्म बंगाल के महिषादल राज्य में बसंत पंचमी के दिन सन् 1896 में हुआ था। लेकिन उनके माता–पिता उत्तर प्रदेश के बैसवाड़ा क्षेत्र के रहने वाले थे। निराला ने काव्य–रचना 1915–16 के आसपास आरंभ की थी। उनकी पहली प्रसिद्ध काव्य–रचना 'जुही की कली' थी। निराला की कविताओं में आरंभ से ही प्रगतिशीलता का स्वर रहा है। उन्होंने भाव और भाषा – दोनों ही दृष्टियों से हिंदी कविता को समृद्ध किया। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोज स्मृति' नामक लंबी कविता, 'तुलसीदास' नामक खंड काव्य, 'बादल–राग', 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'जागो फिर एक बार' आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने काव्य के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं। उनके प्रसिद्ध काव्य–संग्रह हैं – 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'नये पत्ते', 'बेला'। निरालाजी को जीवन पर्यन्त आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन उनका साहित्य–सृजन फिर भी अनवरत जारी रहा। सन् 1961 में उनका देहांत हो गया।

18.5.1 काव्य–वाचन

निराला की कविताओं में 'छायावाद' की प्रायः सभी विशेषताएँ उन्नत रूप में व्यक्त हुई हैं। साथ ही उनमें आरंभ से ही प्रगतिशील कविता के तत्व भी मौजूद रहे हैं। प्रगतिशील कविता में मेहनतकश जनता के प्रति गहरी सहानुभूति होती है और समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक विषमता पर भी गहरी चोट होती है। निराला की 'तोड़ती पत्थर' कविता इसी दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी यह कविता 1935 में प्रकाशित हुई थी। उनके काव्य–संग्रह 'अनामिका' में यह संग्रहीत है।

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,

नत नयन, **प्रिय कर्म रत मन**[1]
गुरु[2] हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार
सामने **तरु मालिका**[3] अट्टालिका, **प्राकार**[4]।
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा[5] का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द[6] **चिनगी**[7] छा गयीं,
प्रायः हुई दोपहर
वह तोड़ती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक बार,
उस भवन की ओर देखा, **छिन्न तार**[8]।
देख कर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोयी नहीं।
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी **झंकार**[9]
एक क्षण के बाद वह काँपी **सुघर**[10]
ढुलक माथे से गिरे **सीकर**[11]
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा –
'मैं तोड़ती पत्थर'।

1) केवल कर्म को प्यार करने में मग्न 2) भारी 3) पेड़ों की कतार 4) चारदीवारी 5) सूर्य 6) धूलि 7) चिन्गारी 8) जिसका तार–तार बिखरा हो 9) ध्वनि 10) सुंदर 11) पसीने की बूंद

6.5.2 भाव पक्ष

निराला का जीवन अत्यंत संघर्षमय था। इसका प्रभाव उनकी काव्य–यात्रा पर भी पड़ा। निराला का काव्य उनके संघर्षमय जीवन का प्रतिबिंब कहा जा सकता है। उनकी जीवन–दृष्टि और काव्य–दृष्टि का निर्माण इसी संघर्ष के दौरान हुआ। उन्होंने जीवन और काव्य दोनों में सामाजिक–आर्थिक शोषण और रुढ़िगत मान्यताओं का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। इसी कारण छायावादी कवियों में सबसे मुखर विद्रोही स्वर निराला के काव्य में व्यक्त हुआ है। निराला के काव्य में भाव–बोध की विविधता नजर आती है, जिसमें जीवन का हर रंग मिलता है। उसमें उल्लास और अवसाद, शांति और क्रांति दोनों हैं। उन्होंने नारी सौंदर्य के चित्र खींचे हैं, प्रकृति का मनोरम अंकन

किया है, जीवन की उदासी और नैराश्य को कविता में बाँधा है तो सामाजिक क्रांति का स्वर भी उनमें अत्यंत प्रबलता से प्रस्तुत हुआ है। निराशा और अवसाद के बावजूद उनकी कविता में प्रबल जिजीविषा (जीने की इच्छा) मिलती है।

'तोड़ती पत्थर' सामाजिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करने वाली कविता है। यह निराला की अत्यंत प्रसिद्ध रचना है। इस कविता में जीवन–यथार्थ के दो विरोधी चित्र एक–साथ दिए गए हैं। एक ओर चिलचिलाती धूप में पत्थर तोड़ती मज़दूरिन है तो दूसरी ओर छायादार पेड़ों से घिरी विशाल अट्टालिकाएँ हैं। लेकिन कवि को महसूस होता है कि वह पत्थर नहीं तोड़ रही है, वरन् आर्थिक और सामाजिक विषमता की चट्टान को तोड़ रही है।

6.5.3 संरचना शिल्प

निराला का कला–बोध भी विविधता लिए हुए है। भाषा के जितने रूप उनके यहाँ मिलते हैं, उतने किसी अन्य कवि के यहाँ नहीं। उनकी आरंभिक कविताओं में संस्कृतनिष्ठ और समास–प्रधान भाषा दिखाई देती है, जिसका सर्वोतम उदाहरण उनकी पहली कविता 'जुही की कली' के साथ ही 'राम की शक्ति पूजा' है। लेकिन बाद में उनमें बोलचाल की भाषा का रंग नजर आने लगता है। बोलचाल की भाषा में भी वे कई तरह के प्रयोग करते हैं। 'तोडती पत्थर' की भाषा यद्यपि बिल्कुल बोलचाल की नहीं है, लेकिन उसमें शब्दों का प्रयोग अत्यंत कुशलता से किया गया है। शब्दों में व्यक्त कठोरता जीवन की कठोरता को प्रतिबिंबित करने लगती है। 'श्याम तन, भर बँधा यौवन' में पत्थर तोड़ती मजदूरिन का अत्यंत कर्मरत और जीवंत व्यक्तित्व साकार हुआ है।

निराला हिंदी के पहले कवि हैं जिन्होंने काव्य–शिल्प की चली आती रूढ़ियों से पूरी तरह मुक्त होने का प्रयास किया। उन्होंने हिंदी कविता को छंद के बंधन से मुक्त किया। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने छंदबद्ध कविता नहीं लिखी वरन् सच्चाई यह है कि परंपरागत छंदों में नए प्रयोग करके उन्हें नया निखार दिया और कई नए छंदों का निर्माण भी किया। अपनी मुक्त छंद की कविता में भी उन्होंने लय और संगीत का समुचित समावेश किया।

निराला के अपने शब्दों में कहा जाए तो उन्होंने भावों के साथ ही भाषा और छंद के प्रयोग में उल्टी गंगा बहाई है। कहने का तात्पर्य यह कि भाव–योजना के साथ ही संरचना–शिल्प के परंपरागत मानदण्डों का परित्याग कर कविता में उन्होंने सर्वाधिक प्रयोग किए हैं। इस प्रक्रिया में उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रायः बिंबों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। यह बिंबात्मकता उनके शिल्प की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है।

6.5.4 प्रतिपाद्य

निराला की कविताओं में जो सामाजिक और यथार्थ दृष्टि दिखाई देती है, वह उनके जीवन संघर्षों की ही देन है। निराला को जीवन–भर जो दुःख और अपमान झेलने पड़े, उनके कारण उनका स्वर सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण के विरुद्ध प्रबल वेग से उमड़ पड़ा। निराला यद्यपि सौंदर्य और प्रेम के भी कवि हैं और ऐसी कविताओं का अपना अलग आकर्षण है। लेकिन जीवन संघर्षों ने उन्हें समाज के प्रति अधिक सजग बनाया। निराला शुरू से ही मूलभूत परिवर्तनों के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने सन्

22–23 में अपनी 'बादल राग' शीर्षक कविताओं में ही शोषक और उत्पीड़क वर्ग पर आघात किया था और किसान को क्रांति का दूत कहा था। बाद में तो उनका स्वर शोषक वर्ग के प्रति अधिकाधिक कटु होता गया जो 'बेला' तथा 'नये पत्ते' की कविताओं में व्यंग्य बनकर उभरा।

6.5.5 संदर्भ सहित व्याख्या

निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' की चर्चा हम उपर्युक्त विवेचन में कर चुके हैं। आप स्वयं कविता का ध्यानपूर्वक वाचन कर उसकी व्याख्या कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

12) 'तोड़ती पत्थर' कविता का प्रतिपाद्य है।

क) सामाजिक वैषम्य
ख) प्रकृति सौंदर्य
ग) नारी–सौंदर्य
घ) आत्म–रांघर्ष ( )

13) निराला का काव्य–शिल्प की दृष्टि से प्रमुख योगदान है।

क) नए अलंकारों का प्रयोग
ख) छंद के बंधन से मुक्ति
ग) नए प्रतीकों का प्रयोग
घ) लय के बंधन से मुक्ति ( )

14) निराला के काव्य शिल्प की दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

अभ्यास

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार–बार प्रहार
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।

उपर्युक्त पंक्तियों की सरल भाषा में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

6.6 महादेवी वर्मा

छायावाद के कवियों में महादेवी वर्मा का नाम भी अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। महादवी वर्मा को 'आधुनिक मीरा' की संज्ञा दी गई है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि काव्य क्षेत्र में उनका स्थान कितना ऊँचा है। श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई. में फरुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने संस्कृत में एम.ए. किया और फिर जीवन–पर्यन्त प्राचार्य के रूप में शिक्षा के अवदान का कार्य किया। 11 सितम्बर, 1987 को उनका देहांत हो गया। 1983 में उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। महादेवी वर्मा ने कविताओं के अतिरिक्त रेखाचित्र और संस्मरण भी लिखे थे। कविताओं की तरह उनके रेखाचित्र और संस्मरण भी अत्यंत उच्च–कोटि के हैं। महादेवी जी की प्रमुख काव्य पुस्तकें हैं: 'निहार (1930), 'रश्मि' (1932), 'नीरजा' (1934), 'सांध्य गीत' (1936) और 'दीपशिखा' (1942), 'प्रथम आयाम' (1984), 'यामा' (1936) में उनके आरंभिक संग्रहों की कविताएँ हैं। गद्य कृतियों में 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'क्षणदा' आदि प्रमुख हैं।

6.6.1 काव्य–वाचन

महादेवी जी अपने गीतों के लिए विशेष रूप से प्रख्यात हैं। यहाँ हम वाचन के लिए उनका एक प्रसिद्ध गीत दे रहे हैं।

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पंदन[1] में चिर **निस्पंदन**[2] बसा,
क्रंदन[3] में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में **निर्झरिणी**[4] मचली!
मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न–पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते **दुकूल**[5]
छाया में **मलय–बयार**[6] पली!
मैं **क्षितिज–भृकुटि**[7] पर घिर धूमिल
चिंता का भार बनी अविरल,
रज–कण पर जल–कण हो बरसी,
नवजीवन–अंकुर बन निकली!
पथ को न मलिन करता आना,
पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे **आगम**[8] की जग में,
सुख की सिहरन हो अंत खिली!
विस्तृत नभ का कोई कोना;
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!

1) कंपन 2) अचल (कंपन रहित) 3) विलाप 4) झरने से निकलने वाली छोटी नदी 5) रेशमी वस्त्र 6) दक्षिण की ओर से आने वाली हवा 7) भौं 8) आना

6.6.2 भाव पक्ष

महादेवी वर्मा की कविताएँ छायावाद के अन्य कवियों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उनमें उनका निजी संसार ही ज्यादा व्यक्त हुआ है। महादेवी जी के काव्य में वस्तुगत संसार बहुत सीमित है। वे प्रायः अपने मन की पीड़ा और वेदना को ही विभिन्न रूपों में व्यक्त करती हैं। इसके लिए वे प्रकृति का सहारा लेती हैं और उन्हें प्रतीक रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के विभिन्न चित्र मिलते हैं, लेकिन वे उनके हृदय के मनोभावों की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। प्रकृति चित्र को वह एक दार्शनिक आवरण कभी दे देती हैं। वह लौकिक भावनाओं को ऐसी शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं, जिनसे उनमें आध्यात्मिकता का आभास होने लगता है। इससे उनकी कविता में रहस्य भावना का समावेश हो गया है।

वस्तुतः महादेवी की कविताओं में भी मुक्ति की आकांक्षा ही पृष्ठभूमि में विद्यमान है। लेकिन छायावाद के अन्य कवियों से भिन्न वे मुक्ति की इच्छा को सीधे व्यक्त नहीं करतीं। इसका कारण संभवतः उनका स्त्री होना है, जिसे बाह्य दबावों में अधिक जीना पड़ता है। यही कारण है कि उनमें अकेलेपन और वेदना दोनों की अभिव्यक्ति ज्यादा है। प्रिय के प्रति चाह, मिलन की आकांक्षा और न मिल पाने की पीड़ा ही महादेवी की कविताओं का भाव–संसार है। लेकिन प्रिय कौन है और क्या है, यह कहीं स्पष्ट नहीं होता, इसी से रहस्यात्मकता का समावेश हुआ है। उपर्युक्त गीत में भी महादेवी जी का निज दुख ही व्यक्त हुआ है। लेकिन वह निज का दुख संसार की कल्याण–कामना से भी प्रेरित दिखाई देता है।

6.6.3 संरचना शिल्प

महादेवी वर्मा के काव्य में शिल्पगत विविधता भी कम है। उनका झुकाव गीतों की ओर ही रहा है। चूंकि उनकी प्रवृत्ति अंतर्मुखी भावनाओं को व्यक्त करने की ओर रही है, और ऐसी भावनाएँ गीतों में अधिक तन्मयता और तीव्रता से व्यक्त हो सकती हैं, इसलिए उन्होंने गीतों की ही रचना अधिक की है। महादेवी के गीतों में वेदना की गहराई, अनुभूति की सघनता और हृदय की तरलता का आभास मिलता है। गीतों में प्रकृति चित्रण करते हुए नारी हृदय की सुकुमारता और विरह–जन्य वेदना का आभास धूमिल नहीं होता।

महादेवीजी की भाषा में मधुरता है। उनके यहाँ प्रेमानुभूति और विरहानुभूति दोनों को व्यक्त करने वाले शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रेम, विरह और अकेलेपन की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए वह दीपक, शलभ, चातक, प्रातः, संख्या, रजनी, बादल, पथ जैसे प्रतीकों का प्रयोग करती हैं। इस दृष्टि से उनके प्रतीकों में जटिलता नहीं है और उनके माध्यम से व्यक्त भाव आसानी से खुल जाते हैं। लेकिन जब वे प्रतीकों को आध्यात्मिक चेतना से जोड़ती हैं, तब भाषा में जटिलता का समावेश हो जाता है और प्रतीक भी दुरूह हो जाते हैं। 'सुधि मेरे आगम की जग में सुख की सिहरन हों अंतखिली' जैसी पंक्ति इसका प्रमाण है।

उपर्युक्त कविता भी दो स्तरों पर अर्थ व्यक्त करती है। एक तो प्रकृति चित्र के रूप में। दूसरे कवयित्री की निजी पीड़ा की अभिव्यक्ति के रूप में। इस दूसरे अर्थ पर वे रहस्य

का आवरण भी डाल देती हैं। 'क्रंदन में आहत विश्व हँसा' के माध्यम से वे बदली के कल्याण–कार्य को संकेतित करती हैं। या 'क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल' में रहस्य भावना का आभास है तो दूसरी ओर विस्तृत नभ का कोई कोना/मेरा न कभी अपना होना' जैसी पंक्तियाँ स्वयं उनकी अपनी पीड़ा को व्यक्त करती हैं।

महादेवी के गीतों में प्रकृति–सौंदर्य की अद्‌भुत छटा है। प्रकृति का यही वह वैविध्य उनके यहाँ नहीं है जो निराला और सुमित्रानंदन पंत के यहाँ है, लेकिन उनके प्रकृति के चित्रों में सौंदर्य और माधुर्य दोनों है। रहस्यवादी आग्रह के कारण उनकी कविताओं में ऐसे प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है जिनसे बिंबों में प्रकृति की विराटता का भी बोध होता है। प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति उनमें बहुत अधिक है। यह पूरा गीत मानवीकरण का उदाहरण है।

6.6.4 प्रतिपाद्य

महादेवी वर्मा की कविता में यद्यपि नारी हृदय की पीड़ा ही अधिक व्यक्त हुई है, लेकिन उसमें व्यक्त अनुभूति की सच्चाई और तीव्रता ने उसे अत्यंत संवेदनीय बना दिया है। महादेवी जी के गीतों में व्यक्त नारी हृदय की पीड़ा मिथ्या या रहस्यवादी नहीं है। उसमें अपने जीवन का सच्चाई है। बाह्य दबावों के बीच हृदय की मुक्ति की इच्छा को जिन प्रतीकों और रूपों में नारी व्यक्त करती है, शायद वही पद्धति महादेवी के गीतों में भी दिखाई देती है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में नारी जाति में जो मुक्ति की छटपटाहट प्रकट हो रही थी, उसका आभास हम उनके गीतों में देख सकते हैं। महादेवी जी के गीतों को हमें इसी संदर्भ में समझने का प्रयास करना चाहिए।

6.6.5 संदर्भ सहित व्याख्या

महादेवी वर्मा का उपर्युक्त गीत अत्यंत प्रभावशाली है। गीत के कठिन शब्दों के अर्थ साथ ही दे दिए गए हैं तथा गीत के भाव और शिल्प की विशेषताएँ उपर्युक्त विश्लेषण में स्पष्ट की जा चुकी हैं। इस आधार पर आप स्वयं कविता को समझने की कोशिश कीजिए।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

15) महादेवी जी के गीतों की केंद्रीय विशेषता एक पंक्ति में बताइए।

.....

.....

16) महादेवी जी के काव्य में व्यक्त रहस्य भावना का अर्थ तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

17) महादेवी जी की काव्य–भाषा की दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

6.7 सारांश

आपने इस इकाई का अध्ययन ध्यानपूर्वक किया होगा। इस इकाई में हमने निम्नलिखित बिंदुओं की चर्चा की थी –

- साहित्य की एक प्रमुख विधा, कविता से आपका परिचय कराया गया है और हिंदी के पाँच प्रतिनिधि कवियों की कुछ कविताओं का वाचन किया गया है। इससे आपको हिंदी काव्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त हुआ है। अब आप पठित कवियों की काव्य प्रवृत्तियों की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- पठित कवियों का जिन काव्य–धाराओं से संबंध था, उनकी विशेषताओं का भी इकाई में उल्लेख किया गया है। अब आप भक्ति काव्य, द्विवेदी–युगीन काव्य और छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ बता सकते हैं।
- पठित कवि सूरदास, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला एवं महादेवी वर्मा के काव्य के विभिन्न पक्षों का संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है। अब आप स्वयं संक्षेप में इन कवियों की काव्यगत विशेषताएँ बता सकते हैं।
- उपर्यक्त कवियों की पठित कविताओं की व्याख्या कर सकते हैं एवं उनकी विशेषताएँ बता सकते हैं।

6.8 उपयोगी पुस्तकें

गुप्त, मैथिलीशरण, साकेत, **साहित्य सदन, चिरगांव (झाँसी)।**

शुक्ल, रामचन्द्र, त्रिवेणी, **नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।**

तिवारी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक हिंदी कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

अभ्यास

1) क) सूरदास के पद की पंक्ति : (ईश्वर की कृपा से) बहरा व्यक्ति सुन सकता है और गूँगा पुनः बोलना शुरू कर सकता है। ग़रीब आदमी भी सिर पर छत्र धारण करके (राजा की तरह) चल सकता है अर्थात् गरीब भी राजा बन सकता है।

ख) सूरदास का पद : सूरदास कहते हैं कि बालक कृष्ण जिनके गाल सुंदर हैं और आँखें चचंल हैं, उन्होंने सिर पर गोरोचन का तिलक लगा रखा है।

ग) सूरदास का पद : सूरदास जी कहते हैं िकवे धन्य हैं जिन्हें इस एक पल का सुख की प्राप्ति हुई है। इसके बिना सौ कल्प तक जीना भी निरर्थक है।

2) क) सूरदास पंक्तियों में अनुप्रास की छटा है। अनुप्रास अलंकार वहाँ होता है जहाँ वर्ण (अक्षर) की आवृत्ति होती है। इन पंक्तियों में कृष्ण के बाल सौंदर्य का अत्यंत मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है।

ख) इस पंक्ति में सूरदास ने उद्धव की मनोदशा का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक ढंग से किया है। 'ठगा–सा रहना' मुहावरा है और 'मति नासी' कहने में उद्धव की मानसिक स्थिति का संकेत मिलता है।

3) अपने काव्यादर्श पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास ने कहा है कि यश, काव्य और ऐश्वर्य वही भला होता है जो गंगा की भाँति सबके लिए समान रूप से कल्याणकारी हो।

4) यह पंक्तियाँ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'तोड़ती पत्थर' से उद्धृत हैं। इस कविता में पत्थर तोड़ती एक मज़दूरिन का चित्र है। निराला कहते हैं कि वह पत्थर तोड़ने वाली स्त्री जहाँ बैठी है वहाँ कोई छाया देने वाला पेड़ भी नहीं है लेकिन वह स्थिति को स्वीकार किए बैठी है। उसका रंग यद्यपि साँवला है, लेकिन पूर्ण युवा है। उसमें चांचल्य नहीं है। वह आँखें झुकाए पूरी लगन से अपने प्रिय कर्म को करने में व्यस्त है, उसके हाथ में भारी हथौड़ा है, जिससे वह बार–बार पत्थरों पर प्रहार कर रही है। उसके सामने पेड़ों की कतार में घिरी भव्य इमारत है। यहाँ कवि दो विरोधी स्थितियों का चित्रण करता है। एक ओर धूप में बैठी पत्थर तोड़ती स्त्री है तो दूसरी ओर पेड़ों की कतार के बीच भव्य अट्टालिका है। इस भव्य अट्टालिका (जो यहाँ शोषक वर्ग की संपन्नता का प्रतीक है) पर ही जैसे वह मज़दूरिन हथौड़े द्वारा बार–बार प्रहार कर रही है।

5) गीतात्मकता और समुचित अलंकार विधान सूरदास की शैली संबंधी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं।

बोध प्रश्न

1) क) भक्ति ख) निर्गुण मार्ग ग) प्रेममार्गी काव्य

2) भक्त जब ईश्वर के प्रति अपनी दीनता अभिव्यक्त करता है और उनसे कृपा की आकांक्षा करता है तो उसे दैन्य भक्ति कहते हैं।

3) सूरदास का उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का गायन कर अपनी भक्ति को व्यक्त करना था। उनके काव्य में कृष्ण का ऐसा रूप उभरता है जो अपनी लीलाओं से लोक–रंजन करता है।

4) क) ब्रजभाषा

ख) भाषा में लोक–तत्व

5) घ)

6) क)

7) घ)

8) क) तुलसीदास का मानना था कि राम परब्रह्म थे, जिन्होंने धर्म की रक्षा और असुरों का नाश करने के लिए नर रूप में अवतार लिया था।

ख) तुलसीदास के अनुसार रामराज्य में किसी को कोई शारीरिक और भौतिक कष्ट नहीं था। सभी अपने–अपने कार्य करते थे और सुख से रहते थे।

ग) विषयानुकूल तथा चरित्रों और प्रसंगों के अनुसार भाषा।

घ) लंबे सांगरूपक के कुशल प्रयोग के कारण तुलसीदास को रूपक–सम्राट कहा जाता है।

9) घ)

10) ग)

11) क) गुप्तजी लोगों में राष्ट्रीय प्रेम और अपनी परंपरा के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न करना चाहते थे। वे अतीत की महान उपलब्धियों पर गर्व करते थे, लेकिन समाज में व्याप्त बुराइयों के कटु आलोचक भी थे।

ख) लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला का त्याग सीता से इस अर्थ में अधिक श्रेष्ठ था क्योंकि वन के कष्टों के बावजूद सीता अपने पति के साथ थी, जबकि उर्मिला अपने पति से दूर चौदह साल विरह में जलती रही और अपनी वेदना चुपचाप सहती रही।

ग) खड़ी बोली हिंदी की सहजता और स्वाभाविकता। भाषा में व्यावहारिकता के दबाव के कारण कलात्मक सौंदर्य का अभाव।

12) क)

13) ख)

14) क) मुक्त छंद में काव्य–रचना

ख) बिंबात्मकता

15) महादेवी जी के गीतों में निज मन की पीड़ा व्यक्त हुई है।

16) प्रिय के प्रति चाह, मिलन की आकांक्षा और न मिल पाने की पीड़ा महादेवी के काव्य का भाव–संसार है, लेकिन महादेवी जी यह नहीं बतातीं कि यह 'प्रिय' कौन है। वह प्रिय और प्रेम दोनों पर आध्यात्मिकता का झीना आवरण डाल देती हैं। इसी रूप में उनकी रहस्य भावना व्यक्त हुई है।

17) महादेवीजी की भाषा में माधुर्य है। शब्दों में कोमलता और संगीतात्मकता है। प्रकृति के प्रतीकों का प्रयोग अधिक है।

शब्दावली

यहाँ इस खंड के कुछ कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं।

अंक विभाजन : अंक, नाटक के खंड को कहते हैं जिनमें कई दृश्य हो सकते हैं। नाटककार कथा की आवश्यकतानुसार, नाटक को एक से अधिक अंकों में विभाजित करता है। इसे ही अंक–विभाजन कहते हैं।

अंतर्विरोध : भीतरी विरोध। समाज में कई वर्ग होते हैं। इन वर्गों का पारस्परिक विरोध सामाजिक अंतर्विरोध कहलाएगा। समाज में इस दृष्टि से कई हो सकते हैं। समाज के दो प्रमुख वर्गों के पारस्परिक विरोध को समाज का मुख्य अंतर्विरोध कहा जाता है।

अद्वैतवाद : भारतीय दर्शन का एक सिद्धांत। अद्वैतवाद के अनुसार केवल ईश्वर ही सत्य है, शेष सब मिथ्या है। आद्य शंकराचार्य को इस सिद्धांत का प्रणेता माना जाता है।

अन्योक्ति : यह एक अलंकार है। इसमें जो प्रसंग का विषय नहीं होता ऐसे अर्थ से, वह अर्थ निकलता है जो प्रसंग का विषय होता है।

अभिजात : उच्च कुल में उत्पन्न।

अवतारवाद : इस बात में विश्वास करना कि ईश्वर मनुष्य रूप धारण करता है। जैसे, राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानना।

आदर्शवाद : साहित्य में यथार्थ की बजाय आदर्शों को प्रमुखता देना आदर्शवाद कहलाता है।

आर्यावर्त : आर्यों का देश, भारत।

अलंकार : जिसके कारण काव्य की शोभा बढ़ती है।

आलंकारिक : अलंकार से युक्त।

उत्प्रेक्षा : अलंकार का एक प्रकार। जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु की संभावना की जाए तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

उपमा : कोई प्रसिद्ध वस्तु जिसके समान उस वस्तु को बताया जाए, जिसकी उपमा देनी हो।

कवित्त : छंद का एक प्रकार। यह वार्णिक छंद है और इसमें प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं।

काव्यशास्त्र : ज्ञान का वह क्षेत्र जिसमें काव्य के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

किंवदंती : ऐसी बात जिसके सही होने का कोई प्रमाण न हो लेकिन जिसे समाज में प्रचार मिल गया हो।

खलनायक : दुष्ट प्रकृति का वह पात्र जिसका नायक से सीधा टकराव हो।

गांधार : भारत वर्ष का एक प्राचीन जनपद। पेशावर से कंधार तक का प्रदेश। यह क्षेत्र अब पाकिस्तान और अफगानिस्तान में है।

चौपाई : एक प्रकार का छंद। यह मात्रिक छंद है और इसके दो चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ होती हैं।

छंद : छंद युक्त रचना को पद्य या काव्य कहा जाता है। पद्य या छंदोमयी रचना अनेक चरणों में विभक्त होती है और प्रत्येक चरण में वर्णों (अक्षरों) या मात्राओं की एक निश्चित संख्या होती है।

छंदमुक्त : वह पद्य रचना जो किसी छंद से बंधी न हो।

छंदोबद्ध : वह पद्य रंचना जो किसी छंद या छंदों से बंधी हो।

तत्सम : संस्कृत भाषा के शब्द जो हिंदी में उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं।

तद्भव : संस्कृत भाषा के वे शब्द जो हिंदी में भिन्न रूप में प्रयुक्त होते हैं।

देशज : देश से उत्पन्न। यहाँ तात्पर्य उन शब्दों से है जो किसी क्षेत्र–विशेष में प्रयुक्त होते हों और वे वहाँ की लोकभाषा के अपने शब्द होते हैं।

दृश्य योजना : नाटक के अंकों के वे विभाजन जिसमें नाटक की कथा–वस्तु में स्थान, समय या कार्य–व्यापार की दृष्टि से परिवर्तन होने से पर्दा गिराकर अंतराल देना पड़ता है। इन्हें ही दृश्य कहते हैं। नाटक में विभिन्न दृश्यों को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए की जाने वाली तैयारी दृश्य–योजना कही जाती है।

दोहा : मात्रिक छंद का एक प्रकार। इसमें चार चरण होते हैं और इसके विषम चरण में 13 मात्राएँ और सम चरण में 11 मात्राएँ होती हैं।

द्विवेदी युग : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जाना जाने वाला आधुनिक हिंदी साहित्य का वह युग जब द्विवेदी जी सरस्वती का संपादन कर रहे थे। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह समय लगभग 1900 से 1920 के बीच माना जाता है।

नाद सौंदर्य : नाद का अर्थ वर्ण या शब्द की ध्वनि से है। वर्गों के विशेष ढंग से उच्चारण करने से जो सौंदर्य उत्पन्न होता है, उसे नाद सौंदर्य कहते हैं।

पंचनद : पाँच नदियों वाला देश, अर्थात् पंजाब।

परिमार्जित : दोष दूर किया हुआ।

प्रतिपाद्य : जिसको प्रमाणित या स्पष्ट किया जाए। यहाँ पर उद्देश्य से तात्पर्य है।

प्रतीक : किसी वस्तु या विषय को किसी अन्य वस्तु या विषय के रूप में वर्णन करना या मानना।

बिंब : शब्दों द्वारा किसी वस्तु, दृश्य या भाव का प्रतिरूप निर्मित करना।

भौतिक : भूत संबंधी अर्थात् जगत के विभिन्न पक्षों के संबंध में।

मगध : भारत वर्ष का एक प्राचीन जनपद और वर्तमान बिहार राज्य।

मालव : मध्य प्रदेश का एक क्षेत्र।

युगांतरकारी : ऐसा व्यक्ति जो समय में आमूल परिवर्तन कर दे।

रस : काव्य (कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) के पढ़ने–सुनने या उसका अभिनय देखने से जो आनंद आता है, उसे रस कहते हैं।

रूपक : एक अलंकार। जब एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाए तो वहाँ रूपक अलंकार होता है।

लक्षणा : शब्द का अर्थ प्रकट करने की शक्ति को शब्द–शक्ति कहते हैं। इसक तीन भेद होते हैं। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना

जहाँ शब्द का लोक प्रसिद्ध अर्थ लिया जाए वहाँ अभिधा शक्ति होती है। जहाँ शब्द का कोई अन्य अर्थ लिया जाए वहाँ लक्षणा होती है। जहाँ अभिधा और लक्षणा से परे एक तीसरे अर्थ की प्रतीति हो उसे व्यंजना कहते हैं।

लीला : खेल, ईश्वर के वे कार्य जिन्हें मनुष्य नहीं समझ सकता।

लोकतत्व : लोक (जन) से संबंधित पक्ष।

लोकभाषा : सामान्य जनता द्वारा प्रयुक्त भाषा।

वर्गीय चरित्र : समाज कई वर्गों (चरित्रों) में बँटा है। प्रत्येक वर्ग की अपनी विशिष्ट पहचान होती है। रचना का कोई पात्र किसी वर्ग–विशेष की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता हो तो वह वर्गीय–चरित्र कहा जाएगा।

वर्णाश्रम धर्म : चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) और चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वनवास एवं संन्यास) की हिंदू धर्म आधारित व्यवस्था।

विदुषी : शिक्षित महिला।

विधा : कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि साहित्य के विभिन्न रूप साहित्य की विभिन्न विधाएँ हैं।

विधिनिषेध : कोई काम करने या न करने का शास्त्रीय निर्देश।

व्यंजना : वह शब्द–शक्ति जिसमें शब्द के वाच्यार्थ और लाक्षणिक अर्थ से परे एक तीसरे अर्थ की प्रतीति हो। जैसे पाँच बज गया।

शमन : शांति, दूर करना।

शील : चरित्र

शैली : साहित्य की किसी रचना की अभिव्यक्ति का विशेष ढंग।

शृंगार : स्त्री–पुरुष से संबंधित भावनाओं की अभिव्यक्ति।

संकलन त्रय : पाश्चात्य नाट्य शैली के अनुसार नाटक में समय, स्थान और कार्य की एकता होनी चाहिए। अर्थात् नाटक में समय का विस्तार इतना नहीं होना चाहिए कि नाटक अस्वाभाविक लगे। स्थान इतना ही विस्तृत हो जो मंच के आकार के अनुसार स्वाभाविक लगे। कार्य–व्यापार में परस्पर एकता और संगति हो। यह संकलन त्रय कहलाता है।

समानतावादी : जो किसी तरह के भेदभाव में विश्वास न करता हो तथा सभी मनुष्यों को समान समझता हो।

सवैया : वार्णिक छंद का एक प्रकार।

सादृश्यमूलक अर्थालंकार : अलंकार के शब्द और अर्थ की दृष्टि से दो भेद किए जाते हैं। जहाँ शब्द में अलंकार हो, शब्दालंकार और जहाँ शब्द के अर्थ में अलंकार हो अर्थालंकार कहते हैं। सादृश्यमूलक अर्थालंकार में एक वस्तु और दूसरी वस्तु में सादृश्य (समानता) दिखाया जाता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार हैं।